

रसूल हमज़ातोव · मेरा दाग़िस्तान



रसूल हमज़ातोव

मेरा दाग़िस्तान

रादुगा प्रकाशन · मास्को

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर-302001

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

अनुवादक : डॉ० मदनलाल 'मधु'

चित्रकार : न० एल्कोनीना

Р. Гамзатов

МОЙ ДАГЕСТАН

На языке хинди

R. Gamzatov

MY DAGISTAN

In Hindi

सोवियत संघ में प्रकाशित

ISBN 5-05-002451-X

ISBN 5-05-003216-4

छोटी-सी चाबी से बड़ा सन्दूक़ खोला जा सकता है—मेरे पिता जी कभी-कभी ऐसा कहा करते थे। अम्मां तरह-तरह के क़िस्से-कहानियां सुनाया करती थीं—"सागर बड़ा है न? हां, बड़ा है। कैसे बना सागर? छोटी-सी चिड़िया ने अपनी और भी छोटी चोंच ज़मीन पर मारी—चश्मा फूट पड़ा। चश्मे से बहुत बड़ा सागर बह निकला।"

अम्मां मुझसे यह भी कहा करती थीं कि जब काफ़ी देर तक दौड़ लो—तो दम लेना चाहिये, बेशक तब तक, जब तक कि हवा में ऊपर को फेंकी गयी टोपी नीचे गिरती है। बैठ जाओ, सांस ले लो।

आम किसान भी यह जानते हैं कि अगर एक खेत में, वह चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, जुताई पूरी कर दी गयी है और दूसरे खेत में जुताई शुरू करनी है तो ज़रूरी है कि इसके पहले मेड़ पर बैठकर अच्छी तरह से सुस्ता लिया जाये।

दो पुस्तकों के बीच का विराम—क्या ऐसी ही मेड़ नहीं है? मैं उसपर लेट गया, लोग क़रीब से गुज़रते थे, मेरी ओर देखते और कहते थे—हलवाहा हल चलाते-चलाते थक गया, सो गया।

मेरी यह मेड़ दो गांवों के बीच की घाटी या दो घाटियों के बीच टीले पर बसे गांव के समान थी।

मेरी मेड़ दाग़िस्तान और बाक़ी सारी दुनिया के बीच एक हद की तरह थी। मैं अपनी मेड़ पर लेटा हुआ था, मगर सो नहीं रहा था।

मैं ऐसे लेटा हुआ था, जैसे पके बालोंवाली बूढ़ी लोमड़ी उस समय लेटी रहती है, जब थोड़ी ही दूरी पर तीतर के बच्चे दाना-दुनका चुग रहे होते हैं। मेरी एक आंख आधी खुली हुई थी और दूसरी आधी बंद थी। मेरा एक कान पंजे पर टिका हुआ था और दूसरे पर मैंने पंजा रख लिया था। इस पंजे को मैं जब-तब ज़रा ऊपर उठा लेता था और कान लगाकर सुनता था। मेरी पहली पुस्तक लोगों तक पहुंच गयी या नहीं? उन्होंने उसे पढ़ लिया या नहीं? वे उसकी चर्चा करते हैं या नहीं? क्या कहते हैं वे उसके बारे में?

गांव का मुनादी करनेवाला, जो ऊंची छत पर चढ़कर तरह-तरह की घोषणायें करता है, उस वक़्त तक कोई नयी घोषणा नहीं करता, जब तक उसे यह यक़ीन नहीं हो जाता कि लोगों ने उससे पहलेवाली घोषणा सुन ली है।

गली में से जाता हुआ कोई पहाड़ी आदमी अगर यह देखता है कि किसी घर में से कोई मेहमान नाक-भौंह सिकोड़े, नाराज़ और झल्लाया हुआ बाहर आता है तो क्या वह उस घर में जायेगा?

मैं पुस्तकों के बीच की मेड़ पर लेटा हुआ था और यह सुन रहा था कि मेरी पहली पुस्तक के बारे में अलग-अलग लोगों की अलग-अलग प्रतिक्रिया हुई है।

यह बात समझ में भी आती है–किसी को सेब अच्छे लगते हैं और किसी को अख़रोट। सेब खाते वक़्त उसका छिलका उतारा जाता है और अख़रोट की गिरियां निकालने के लिये उसे तोड़ना पड़ता है। तरबूज़ और ख़रबूज़े या सरदे में से उनके बीज निकालने पड़ते हैं। इसी तरह विभिन्न पुस्तकों के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण होना चाहिये। अख़रोट तोड़ने के लिये खाने की मेज़ पर काम आनेवाली छुरी नहीं, मुंगरी की ज़रूरत होती है। इसी तरह कोमल और महकते सेब को छीलने के लिये मुंगरी से काम नहीं लिया जा सकता।

किताब पढ़ते हुए हर पाठक को उसमें कोई न कोई ख़ामी,

कोई त्रुटि मिल जाती है। कहते हैं कि खामियां-कमियां तो मुल्ला की बेटी में भी होती हैं, फिर मेरी किताब की तो बात ही क्या की जाये।

खैर, मैंने थोड़ा-सा दम ले लिया और अब मैं अपनी दूसरी किताब लिखना शुरू करता हूं। कितने पाठकों के लिये मैं इसे लिखने जा रहा हूं, मुझे मालूम नहीं। इसकी कितनी प्रतियां छपेंगी, इससे तो कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। ऐसी पुस्तकें हैं जिनकी एक-एक लाख प्रतियां छपी हैं, मगर उन्हें कोई नहीं पढ़ता, वे किताबों की दुकानों और पुस्तकालयों के ताकों पर या अलमारियों में पड़ी रहती हैं। लेकिन किसी दूसरी किताब की केवल एक ही प्रति होती है और वह लगातार एक पाठक से दूसरे पाठक के हाथ में जाती रहती है और उसे अनेक लोग पढ़ते हैं। मुझे तो न पहली चीज़ की ज़रूरत है और न दूसरी की। अगर एक पाठक भी मेरी पुस्तक को पढ़ लेगा तो मुझे खुशी होगी। मैं इस पाठक को अपने छोटे-से, साधारण और गर्वीले देश के बारे में बताना चाहता हूं। यह बताना चाहता हूं कि यह देश कहां है, इसके निवासी कौन-सी भाषा बोलते हैं, किन बातों की चर्चा करते हैं और कैसे गीत गाते हैं।

मैं सब कुछ तो नहीं बता सकता। बड़े-बूढ़ों ने हमें यह सीख दी थी – "सभी कुछ तो केवल सभी बता सकते हैं। लेकिन तुम वह बताओ, जो बता सकते हो और तब सभी कुछ बता दिया जायेगा। हर किसी ने अपना घर बनाया और नतीजा यह हुआ कि गांव बन गया। हर किसी ने अपना खेत जोता और नतीजे के तौर पर सारी पृथ्वी ही जोती गयी।"

तो मैं तड़के ही उठ गया। आज मैं पहली हल-रेखा बनाऊंगा। नये खेत में नयी हल-रेखा। प्राचीन परम्परा के अनुसार एक ही अक्षर से शुरू होनेवाली सात चीजें मेज़ पर होनी चाहिये। मैं अपनी मेज़ पर नज़र दौड़ाता हूं और मुझे सातों चीजें वहां दिखाई देती हैं। ये हैं वे चीजें –

१. कोरा काग़ज़।

२. अच्छे ढंग से गढ़ी हुई पेंसिल।
३. मां का फ़ोटो।
४. देश का नक़्शा।
५. दूध के बिना तेज़ कॉफ़ी।
६. उच्चतम कोटि की दाग़िस्तानी ब्रांडी।
७. सिगरेटों का पैकेट।

अगर अब भी मैं अपनी किताब नहीं लिख सकूंगा तो कब लिखूंगा?

चूल्हा गर्म हो गया है। उसपर रखी हुई देग़ची में से भाप निकलने लगी है। बाहर हल्की-हल्की और विरली बूंदा-बांदी में से सूरज की किरणें छन रही हैं। कहते हैं कि ऐसे दिन पहाड़ों में सभी जानवर रज्जुनटों की तरह सतरंगे इन्द्रधनुष पर नाचते हैं। जब कभी ऐसे दिन आते थे तो अम्मां कहा करती थीं कि आसमान बारिश के धागों से कढ़ा हुआ है और सूरज की किरणें सुइयां हैं।

आज पहाड़ों में वसन्त है, वसन्त का पहला दिन है। मेरी तरह वह भी आज पहली हल-रेखा बनाना शुरू कर रहा है।

"दाग़िस्तान के वसन्त, यह बताओ कि तुम्हारे पास ऐसे कौन-से सात उपहार हैं जो एक ही अक्षर से शुरू होते हों?"

"मेरे पास ऐसे उपहार हैं," वसन्त ने उत्तर दिया, "दाग़िस्तान ने ही उन्हें मुझे भेंट किया है। मैं अपनी भाषा में इन उपहारों के नाम लूंगा और तुम उंगलियों पर उन्हें गिनते जाना।

१. त्सा—आग। ज़िन्दगी के लिये। प्यार और नफ़रत के लिये।

२. त्सार—नाम। इज़्ज़त के लिये। बहादुरी के लिये। किसी को नाम से पुकारने के लिये।

३. त्साम—नमक। ज़िन्दगी के ज़ायके के लिये, जीवन की मर्यादा के लिये।

४. त्स्वा – सितारा। उच्चादर्शों और आशाओं के लिये। उज्ज्वल लक्ष्यों तथा सीधे मार्ग के लिये।

५. त्सूम – उक़ाब। उदाहरण और आदर्श के लिये।

६. त्स्मूर – घण्टी, बड़ा घण्टा, ताकि सभी को एक जगह पर एकत्रित किया जा सके।

७. त्सल्कू – छाज, छलनी, ताकि अनाज के अच्छे दानों को निकम्मी और हल्की भूसी-करकट से अलग किया जा सके।"

दाग़िस्तान! ये सात चीज़ें – तुम्हारे मज़बूत जड़ोंवाले वृक्ष की सात शाखायें हैं। इन्हें अपने सभी बेटों को बांट दो, मुझे भी दे दो। मैं आग और नमक, उक़ाब और सितारा, घण्टा और छाज-छलनी बनना चाहता हूं। मैं ईमानदार आदमी का नाम पाना चाहता हूं।

मैं नज़र ऊपर उठाकर देखता हूं और वहां मुझे सूरज और बारिश, आग और पानी से बुना हुआ आसमान दिखाई देता है। अम्मां हमेशा कहा करती थीं कि सपने के समय ही आग और पानी से दाग़िस्तान बनाया गया था।

आग पिता, पानी मां

– आग के साथ खिलवाड़ नहीं करो –
मेरे पिता जी कहा करते थे।
– पानी में कंकड़-पत्थर नहीं फेंको –
अम्मां अनुरोध किया करती थीं।

विभिन्न लोगों को उनकी मां विभिन्न रूपों में याद आती है। मैं अपनी मां को सुबह, दुपहर और शाम को याद करता हूं।

सुबह को वह पानी से भरा हुआ घड़ा लेकर चश्मे से लौटती थीं। वह बहुत ही क़ीमती चीज़ की तरह उसे लेकर आती थीं। वह पत्थर की सीढ़ियां चढ़तीं, घड़े को ज़मीन पर रख देतीं और

चूल्हे में आग जलाने लगतीं। आग भी वह बहुत ही क़ीमती चीज़ की तरह जलातीं। वह कभी चिन्ता तो कभी मुग्ध भाव से उसकी ओर देखती। आग के अच्छी तरह से जल जाने तक अम्मां पालना झुलाती रहतीं। उसे भी किसी बहुत ही क़ीमती चीज़ की तरह झुलातीं। दुपहर के वक़्त अम्मां खाली घड़ा लेकर पानी लाने को चश्मे पर जातीं। इसके बाद आग जलातीं, इसके बाद पालना झुलातीं। शाम को अम्मां घड़े में पानी लातीं, पालना झुलातीं, आग जलातीं।

वह वसन्त, गर्मी, पतझर और जाड़े में हर दिन ऐसा ही करतीं। वह धीरे-धीरे, बड़ी गम्भीरता से ऐसा करतीं जैसे कि कोई अत्यधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण काम कर रही हों। वह पानी लाने जातीं, पालना झुलातीं, आग जलातीं। आग जलातीं, पानी लाने जातीं, पालना झुलातीं। पालना झुलातीं, आग जलातीं, पानी लाने जातीं। मेरे मन में मेरी मां की स्मृति इसी रूप में अंकित है। पानी लाने के लिये जाते वक़्त वह हमेशा मुझसे कहती थीं – "आग का ध्यान रखना।"

आग की चिन्ता करते हुए मुझे नसीहत देती थीं – "इसे बुझने नहीं देना, पानी नहीं गिराना।" मुझे लोरी देते हुए वह यह भी कहा करती थीं – "दाग़िस्तान के लिये आग पिता है, पानी मां है।"

हमारे पर्वत तो सचमुच अश्मीभूत आग जैसे लगते हैं। तो आइये आग की चर्चा करें।

पत्थर से पत्थर टकराओ – निकलेगी उनसे चिंगारी।
दो चट्टानों को टकराओ – निकलेगी उनसे चिंगारी।
करतल से करतल टकराओ – निकलेगी उनसे चिंगारी।
शब्द-शब्द को यदि टकराओ – निकलेगी उनसे चिंगारी।
ज़ुरने के तारों को छेड़ो – निकलेगी उससे चिंगारी।
वादक, गायक की आंखों में
झांको, पाओगे चिंगारी।

मेमने की खाल से सिली हुई पहाड़ी आदमी की टोपी से

भी चिंगारियां निकलती हैं, ख़ास तौर पर जब उसे हाथ से सहलाया जाता है।

पहाड़ी आदमी समूर की ऐसी टोपी पहने हुए जब अपने घर की छत पर आता है तो पड़ोस के पहाड़ पर बर्फ़ पिघलने लगती है।

ख़ुद बर्फ़ में से भी आग की चिंगारियां निकलती रहती हैं। पौ फटने के वक़्त पहाड़ की चोटी पर खड़े पहाड़ी बकरे के सींग पर भी आग चमकती होती है। सूर्यास्त के समय पहाड़ी चट्टानें भी लाल-लाल आग में पिघलती होती हैं।

पहाड़ी कहावत और पहाड़ी औरत के आंसू में भी आग होती है। बन्दूक़ की नली के सिरे और म्यान से निकाले गये ख़ंजर की धार में भी आग होती है। किन्तु सबसे अधिक दयालु और स्नेहपूर्ण आग मां के हृदय और हर घर के चूल्हे में होती है।

पहाड़ी आदमी जब अपने बारे में कुछ अच्छे शब्द कहना चाहता है या केवल अपनी डींग हांकना चाहता है तो कहता है—"मुझे किसी से आग मांगने के लिये तो अब तक जाना नहीं पड़ा।"

पहाड़ी आदमी जब किसी बुरे, किसी अप्रिय व्यक्ति के बारे में कुछ कहना चाहता है तो कहता है—"उसकी चिमनी से निकलनेवाला धुआं चूहे की पूंछ से बड़ा नहीं है।"

जब दो पहाड़ी बुढ़ियां एक-दूसरी से झगड़ती हैं तो उनमें से एक चिल्लाकर कहती है—"तुम्हारे चूल्हे में कभी आग न जले।"—"तुम्हारे चूल्हे में वह आग बुझ जाये जो जल रही है," दूसरी जवाब देती है।

किसी बहादुर-दिलेर आदमी की चर्चा करते हुए पहाड़ी लोग कहते हैं—"वह तो आदमी नहीं, आग है।"

एक नौजवान की नीरस और ऊबभरी कवितायें सुनने के बाद मेरे पिता जी बोले—"इन कविताओं में एक तरह से सब कुछ है। लेकिन ऐसा भी होता है कि घर है, चूल्हा है, लकड़ी है, देग़ची है और देग़ची में गोश्त भी है, मगर आग नहीं। घर में

ठण्डक है, देगची में कुछ उबलता नहीं, गोश्त ज़ायक़ेदार नहीं। आग नहीं – ज़िन्दगी नहीं! इसलिये तुम्हारी कविताओं को आग की ज़रूरत है!"

शामील* से एक बार पूछा गया – "इमाम, यह बताओ, भला यह कैसे हुआ कि छोटा-सा और अधभूखा दाग़िस्तान सदियों तक बड़े-बड़े शक्तिशाली राज्यों के विरुद्ध जूझता और उनका मुक़ाबला करता रहा? कैसे वह पूरे तीस सालों तक बहुत ही शक्तिशाली गोरे ज़ार के विरुद्ध संघर्ष करता रहा?"

शामील ने जवाब दिया – "अगर दाग़िस्तान की छाती में प्यार और नफ़रत की आग न जलती होती तो वह कभी भी ऐसा संघर्ष न कर पाता। इसी आग ने चमत्कार किये और बहादुरी के कारनामे कर दिखाये। यह आग ही दाग़िस्तान की आत्मा यानी ख़ुद दाग़िस्तान है।

"मैं स्वयं भी कौन हूं," शामील कहता गया, "गीमरी नाम के एक दूरस्थ गांव के माली का बेटा। दूसरे लोगों के मुक़ाबले में मैं न तो लम्बा और न चौड़ी छातीवाला हूं। बचपन में मैं तो बहुत कमज़ोर और दुबला-पतला लड़का था। मुझे देखकर वयस्क लोग अफ़सोस से सिर हिलाते थे और कहते थे – बहुत दिनों तक ज़िन्दा नहीं रहेगा यह। शुरू में मेरा नाम आली था। जब मैं बीमार रहता तो यह उम्मीद करते हुए कि पुराने नाम के साथ मेरी बीमारी भी ख़त्म हो जायेगी, मेरा नाम बदलकर शामील रख दिया गया। मैंने बड़ी दुनिया नहीं देखी थी, बड़े शहरों में मेरा लालन-पालन नहीं हुआ था। मेरे पास ज़्यादा धन-दौलत नहीं थी। अपने गांव के मदरसे में मैंने तालीम हासिल की। मेरे माता-पिता गधे पर गीमरी के आड़ू लादकर मुझे तेमीरख़ान-शूरा मंडी में बेचने के लिये भेजते थे। बहुत समय तक मैं गधे को हांकते हुए पहाड़ी पगडंडियों पर आता-जाता रहा। एक दिन मेरे

* शामील (१७९६–१८७१) – दाग़िस्तान का वीर-नेता, जिसने दाग़िस्तान की आज़ादी के लिये बरसों तक ज़ारशाही के विरुद्ध संघर्ष किया। – सं०

साथ एक घटना हुई। यह बहुत पुरानी बात है, मगर मैं इसे भूल नहीं सकता और भूलना भी नहीं चाहता। वह इस कारण कि उसी वक़्त मेरी हिम्मत, मेरे अन्दर आग जागी। उसी वक़्त मैं शामील बना।

"तेमीरखान-शूरा मंडी के नज़दीक, एक गांव के छोर पर मुझे कुछ शरारती लड़के मिले जिन्होंने मेरा मज़ाक़ उड़ाना चाहा। एक छोकरे ने मेरे सिर से समूरी टोपी उतारी और उसे लेकर भाग गया। जब तक मैं इस शैतान को पकड़ने के लिये उसके पीछे भागता रहा, इसी बीच दूसरे लड़के मेरे गधे पर से फलों की टोकरियां उतारने लगे। मेरी असहाय और रोनी-सी सूरत देखकर वे सभी ठहाके लगाते थे, खूब मज़े लेते थे। उनके ये मज़ाक़ मुझे अच्छे नहीं लगे और मेरे भीतर वह आग जल उठी जिससे मैं अभी तक अनजान था। मैंने हड्डी के सफ़ेद हत्थेवाला खंजर म्यान से बाहर निकाल लिया। उस लड़के को, जो मेरी समूरी टोपी लेकर भागा था, मैंने गांव के फाटक पर जा पकड़ा। उसे गन्दी नाली में गिराकर मैंने उसके गले पर तेज़ खंजर रख दिया। उसने माफ़ी मांगी।

"'तुम आग के साथ खिलवाड़ नहीं करो।'

"इस शरारती छोकरे को गन्दी नाली में ही छोड़कर मैंने इधर-उधर नज़र दौड़ाई। मेरे आड़ुओं को जहां-तहां बिखरानेवाले विभिन्न दिशाओं में भाग गये। तब मैं एक घर की छत पर चढ़कर चिल्लाया –

"'अरे, कान खोलकर सुनो! अगर मेरे खंजर की आग से अपने पेट नहीं जलाना चाहते तो सब कुछ वैसे ही कर दो, जैसे था।'

"मज़ाक़ करनेवाले इन छोकरों ने मुझे दूसरी बार अपने शब्द दोहराने को मजबूर नहीं किया।

"उसी दिन मैंने बड़े-बूढ़ों को मंडी में यह कहते सुना – 'यह लड़का अभी बहुत कुछ करके दिखायेगा।'

"मैंने अपनी समूरी टोपी को भौंहों तक नीचे खींच लिया और अपने अच्छे गधे को हांकते हुए आगे चल दिया। क्या मैंने

शोर-शराबा और लड़ाई-झगड़ा चाहा था? उन्होंने ही मेरे सब्र का प्याला छलका दिया था, मेरे दिल की आग को बाहर आने के लिये मजबूर कर दिया था।

"इसके बाद कई साल बीत गये। एक सुबह को मैं बाग़ में काम कर रहा था। आस्तीनें चढ़ाकर मैं उपजाऊ मिट्टी को नीचे से ऊपर ले जा रहा था और उसे हर पेड़ के इर्द-गिर्द डाल रहा था। मैं पुरानी समूरी टोपी में मिट्टी भर-भरकर ले जाता था। इस वक़्त तक मेरे बदन पर कई घाव हो चुके थे। ये घाव विभिन्न मुठभेड़ों में मेरे जिस्म पर हुए थे। तो दूसरे गांवों के, बहुत दूर के गांवों के हमारे पहाड़ी लोग मेरे पास आये और बोले कि मैं अपने घोड़े पर ज़ीन कस लूं तथा हथियार बांध लूं। मैं हथियार बांधना नहीं चाहता था, मैंने इन्कार कर दिया, क्योंकि लड़ाई के मुक़ाबले में मुझे बाग़बानी कहीं ज़्यादा पसन्द थी।

"तब विभिन्न गांवों से आनेवाले ये पहाड़िये मुझसे बोले –

"'शामील! पराये घोड़े हमारे चश्मों से पानी पीते हैं, पराये लोग हमारे चिराग़ बुझाते हैं। तुम ख़ुद घोड़े पर सवार होते हो या हम तुम्हारी मदद करें?'

"और मेरे दिल में उसी तरह से आग भड़क उठी, जैसे उस वक़्त भड़की थी, जब लड़कों ने मेरे सिर पर से समूरी टोपी उतारकर और आड़ू बिखराकर मेरे दिल को ठेस लगायी थी। उसी तरह, बल्कि उससे भी ज़्यादा ज़ोर से मेरे दिल में आग भड़क उठी। मुझे अपने बाग़ और दुनिया की किसी चीज की सुध-बुध न रही। वह आग, जो पच्चीस सालों से मुझे पहाड़ों में जहां-तहां ले जा रही है, उसे न तो बारिश, न हवा और न ठण्ड ही बुझा सकती है। गांव धू-धू जल रहे हैं, जंगलों से धुआं उठ रहा है, लड़ाई के वक़्त धुएं में से आग की लपटें चमकती हैं, पूरा काकेशिया ही जल रहा है। तो ऐसी चीज़ है आग!"

हमारे लोग सुनाते हैं कि पुराने वक़्तों में अगर दुश्मन दाग़िस्तान की सीमा में घुस आते थे तो सबसे ऊंचे पहाड़ पर मीनार जितनी ऊंची आग जला दी जाती थी। इसे देखते ही सभी गांव अपने अलाव जला लेते थे। यही वह ज़ोरदार पुकार होती थी जो पहाड़ी लोगों को अपने जंगी घोड़ों पर सवार होने को प्रेरित करती थी। हर घर से घुड़सवार रवाना होते थे, हर गांव से तैयार दस्ते रवाना होते थे। आग के आह्वान पर घुड़सवार और पैदल लोग दुश्मन से लोहा लेने को चल पड़ते थे। जब तक पहाड़ों पर अलाव जलते रहते थे, गांवों में पीछे रह जानेवाले बूढ़ों, औरतों और बच्चों को यह मालूम होता था कि दुश्मन अभी दाग़िस्तान की सीमाओं में ही है। अलाव बुझ जाते तो इसका मतलब होता कि खतरा टल गया है और पूर्वजों की धरती पर फिर से शान्ति का समय आ गया है। सदियों के लम्बे इतिहास में पहाड़ी लोगों को बहुत बार पहाड़ों की चोटियों पर लड़ाई का संकेत देनेवाली इस तरह की आग जलानी पड़ी है।

इस तरह की आग लड़ाई का झण्डा भी होती थी और उसका आदेश भी। पहाड़ी लोगों के लिये यह आधुनिक तकनीकी साधनों – रेडियो, तार और टेलीफ़ोन – का काम देती थी। पहाड़ी ढालों पर अभी भी ऐसी वनहीन जगहें देखी जा सकती हैं, जहां ऐसा लगता है मानो विराटकाय भैंसे लेटे हुए हों।

पहाड़ी लोगों का कहना है कि खंजर के लिये सबसे ज़्यादा भरोसे की जगह म्यान है, आग के लिये – चूल्हा और मर्द के लिये – घर। लेकिन अगर आग चूल्हे से बाहर आकर पहाड़ों की चोटियों पर भड़कने लगती है तो म्यान में चैन से पड़ा रहनेवाला खंजर खंजर नहीं और घर के चूल्हे के क़रीब बैठा रहनेवाला मर्द – मर्द नहीं।

दाग़िस्तान के चरवाहों के कर्त्तव्य बड़ी कड़ाई से विभाजित होते हैं। कुछ चरवाहे दिन को भेड़ें चराते हैं, दूसरे रात के वक़्त उनकी जगह ड्यूटी ले लेते हैं और भेड़ों के रेवड़ों की भेड़ियों से

रक्षा करते हैं। किन्तु उनके बीच एक ऐसा भी आदमी होता है जो न तो भेड़ों और न भेड़ियों से उन्हें बचाने की ही चिन्ता करता है। उसका काम आग की रक्षा करना, उसे जलाये रखना, उसे बुझने न देना होता है। उसे अग्नि-रक्षक, आग को जलाये रखनेवाला कहा जाता है। ऐसा कहना ठीक नहीं होगा कि किसी एक आदमी को विशेष रूप से यही काम सौंप दिया जाता है, कि यह आदमी सिर्फ़ आग की ही रक्षा करता है। किन्तु रात होने से पहले चरवाहे अवश्य ही एक ऐसे आदमी को चुन लेते हैं और उसे आग की चिन्ता करने का काम सौंप देते हैं।

यह बहुत ज़रूरी और मुश्किल काम है! खाना पकाना, गर्माहट पाना, गीले कपड़ों को सुखाना, प्रकाश, अच्छी बातचीत तथा पुरुषों की गम्भीर बातचीत के समय अत्यधिक आवश्यक धूम्रपान को जारी रख सकना—यह सभी कुछ आग पर निर्भर करता है।

चरवाहों के झोंपड़ों में चूल्हे नहीं होते। आग बाहर जलती रहती है और उसके लिये खास दौड़-धूप तथा चिन्ता की आवश्यकता होती है। हथेलियों, समूरी टोपी, लबादे के पल्ले से आग को बुरे मौसम—बारिश, बर्फ़ और बर्फ़ के तूफ़ान से बचाना पड़ता है।

क्या बहादुरों, कवियों, गीतकारों, कथाकारों, नर्तकों और संगीतज्ञों-स्वरकारों को अग्नि-रक्षक कहना ठीक नहीं होगा? हमारे यहां बहुत-से ऐसे लोग हैं, जिनके दिलों में कविता, समर्पण और मातृभूमि के प्रति प्यार की शाश्वत आग जलती है, जो उसे सहेजते हैं और दूसरे लोगों तक पहुंचाते हैं।

मैं भी अपने हृदय में इस शाश्वत आग को अनुभव करता हूं। मैं भी इसे अपना कर्त्तव्य मानता हूं कि इस चिंगारी को बुझने न दूं। इसे और अधिक तेज़ होने और ज्यादा रोशनी और गर्माहट देने के लिये मजबूर करना मेरा फ़र्ज़ है ताकि मेरे पीछे-पीछे आनेवाला व्यक्ति इस मशाल को मेरे हाथ से लेकर इसे आगे ले जाये।

अपने दिल में आग को उसी तरह से सहेजना चाहिये, जैसे हम बाहर की आम आग से अपने को सहेजते और बचाते हैं।

किसी जशन के मौक़े पर गांव में गाने के बाद हमेशा हंसी-मज़ाक़ होता है, संगीत और नाच के बाद–बातचीत होती है। समारोही शब्दों में अग्नि का गुणगान करने के बाद लोग यह सुनाते हैं कि कैसे हमारे दाग़िस्तान में हिम-मानव की खोज की गयी।

मैं खुद उस बहुत बड़े तमाशे का साक्षी रहा हूं, जो हिम-मानव की खोज करने के लिये हमारे यहां आनेवाले कुछ वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं के समय पहाड़ी लोगों ने देखा था।

अवार जाति के लोगों ने उनसे कहा–"आप दारगीनों के यहां जायें, शायद वह, जिसे आप खोज रहे हैं, उनके वहां रहता हो।"

दारगीनों ने उन्हें लाक्तियों के यहां भेज दिया, लाक्तियों ने लेज़्गीनों के यहां, लेज़्गीनों ने कुमिकों के यहां, कुमिकों ने स्तेपी में रहनेवाले नोगाइयों के यहां, नोगाइयों ने ताबासारान्सियों के यहां। ये वैज्ञानिक कार्यकर्त्ता सारे दाग़िस्तान में भटकते रहे। बुरी तरह से थक-हारकर वे किकूनी गांव में आकर ठहरे, जहां हमारा महाबली ओसमान अब्दुर्रहमानोव रहता है। मुमकिन है कि इन पंक्तियों को पढ़नेवाले कुछ लोगों ने ओसमान को 'खज़ानों का द्वीप' फ़िल्म में देखा हो। वहां वह तीन आदमियों को एकसाथ ही पकड़कर जहाज़ के डेक से सागर में फेंक देता है।

कुछ ऐसा हुआ कि इन वैज्ञानिक कार्यकर्त्ताओं की कार किकूनी गांव के नज़दीक एक छोटी-सी नदी में फंस गयी। वैज्ञानिक उसे आगे-पीछे धकेलते रहे, मगर कार को नदी से निकाल नहीं पाये।

इस वक़्त ओसमान अपने घर की छत पर बैठा था। उसने देखा कि कैसे असहाय लोग परेशान होते हुए कार के आस-पास कुछ कर रहे हैं। वह नीचे उतरा और महाबली की धीमी-धीमी

चाल से उनके क़रीब गया। उसने उस तिलचटे की तरह, जो चर्बी पुते मिट्टी के प्याले से बाहर निकलने में असमर्थ हो, कार को ऊपर उठाया और तट पर ले जाकर रख दिया।

वैज्ञानिक आपस में खुसर-फुसर और कानाफूसी करने लगे कि कहीं हिम-मानव ही तो उनकी मदद को नहीं आया है? लेकिन ओसमान उनकी बातचीत समझ गया और बोला—

"व्यर्थ ही आप लोग उसे यहां ढूंढ़ते फिर रहे हैं। हम पहाड़ी लोग हिम के नहीं, बल्कि आग के बने हुए हैं। अगर मेरे भीतर आग न होती तो आपकी कार को मैं कीचड़ में से कैसे बाहर निकाल ले जाता?"

इसके बाद उसने बड़े इतमीनान से सिगरेट लपेटी, चैन से चक़मक़ निकाला, उससे चिंगारी पैदा करके सिगरेट जलायी और मुंह से धुएं का बादल निकाला। तब धुएं के साथ ओसमान की चौड़ी छाती से बादल की गड़गड़ाहट जैसा ठहाका गूंज उठा। पहाड़ों में चट्टान के टूटकर गिरने पर ऐसी आवाज़ होती है, पत्थरों को लुढ़काता हुआ पानी ऐसा शोर पैदा करता है, पहाड़ों को झकझोरता हुआ भूकम्प ऐसी गरज उत्पन्न करता है।

इस क़िस्से को सुनकर अबुतालिब ने इतना और कह दिया—"व्यर्थ के ऐसे कामों में उलझनेवाले लोगों की कारें कीचड़ में फंसे बिना नहीं रह सकतीं।"

मैं रोशनियों के त्योहार (दीवाली) के अवसर पर भारत गया था। कितनी अच्छी बात है कि लोगों के यहां ऐसे पर्व-त्योहार भी हैं! मुझे वहां जलता हुआ दीपक भेंट किया गया और मैं उसे अपने पहाड़ी क्षेत्र के प्रति दूरस्थ देश के अभिवादन के रूप में अपने साथ ले आया। रूसी तथा हमारी कई अन्य भाषाओं में हम अक्सर कहते हैं—"दहकता अभिवादन! उनका दहकता हुआ अभिवादन करें!" शायद कभी ऐसा भी वक़्त रहा हो जब अभिवादन को शब्द के रूप में अभिव्यक्त करने के बजाय अग्नि, ज्वाला या मशाल भेजी जाती हो। शान्तिपूर्ण ज्वाला। भस्म करनेवाली आग और लड़ाई की ज्वाला नहीं, बल्कि चूल्हे

की आग, गर्माहट और प्रकाश की आग।

हमारे यहां एक परम्परा है—जाड़े के पहले दिन की शाम को (कभी-कभी वसन्त के पहले दिन की शाम को भी) पहाड़ी गांवों में चट्टानों पर अभिवादन करनेवाले अलाव जलाये जाते हैं। हर गांव एक अलाव जलाता है। ये अलाव दूर तक दिखाई देते हैं। खड्डों, खाइयों और चट्टानों के बीच से गांव एक-दूसरे को जाड़े या वसन्त के आगमन की बधाई देते हैं। अग्निरूपी अभिवादन, अग्निरूपी शुभ कामनायें भेजते हैं! खुद मैंने भी हमारे त्सादा गांव के ऊपर खड़ी खामीरखो चट्टान पर अनेक बार ऐसा अलाव जलाया है।

यह संयोग की बात नहीं है कि दाग़िस्तान के पहले कारखाने को 'दाग़िस्तान के दीपक' नाम दिया गया था। अब अलावों के अतिरिक्त अनेक अन्य नये प्रकाश-स्रोत सामने आ गये हैं। बिजली के खम्भों पर पक्षी वैसे ही साधारण ढंग से बैठते हैं, जैसे वृक्षों पर। चट्टानों के ऊपर जलती बिजली की रोशनियों से कबूतर ज़रा नहीं डरते हैं।

एक बार मैंने कास्पी सागर को जलते देखा। पूरे एक हफ़्ते तक लहरें उसे बुझा नहीं पायीं। यह इज़्बेरबाश नगर के क़रीब की बात है। आखिर जब आग बुझने लगी और धीरे-धीरे बुझ गयी तो उसने डूबते हुए जहाज़ की याद ताज़ा कर दी।

सागर की आग बुझ सकती है, मगर दाग़िस्तान के दिल में दहकती आग कभी नहीं बुझ सकती। क्या आदमी के दिल में दहकती आग पानी से डरती है? वह तो पानी को ढूंढ़ती है, पानी मांगती है। भीतर की आग से सूखने, फटने, दहकने और जलनेवाले होंठ क्या यह नहीं फुसफुसाते—"पानी, पानी!"

इसका मतलब यह है कि पानी और आग के बीच चोली और दामन का साथ है।

मेरी मां कहा करती थीं कि चूल्हा घर का दिल है और चश्मा गांव का दिल है।

पहाड़ों को आग चाहिये और घाटियों को पानी।

2—1165

दाग़िस्तान – वहां तो पहाड़ भी हैं और घाटियां भी, उसे आग भी चाहिये और पानी भी।

अगर कोई आदमी सफ़र के लिये रवाना होते वक़्त या लौटते समय गांव के छोर पर एक दर्पण की तरह चश्मे में झांक लेता है तो इसका अर्थ होता है कि इस व्यक्ति के हृदय में प्यार है, आग है। पहाड़ी लोग ऐसा मानते हैं।

किन्तु क्या सारा दाग़िस्तान ही कास्पी सागर के उजले दर्पण में अपने आपको नहीं देखता है? क्या वह अभी-अभी पानी में से बाहर आनेवाले सुघड़-सुडौल और उत्साही तरुण जैसा नहीं है?

मेरा दाग़िस्तान कास्पी सागर के ऊपर ऐसे झुका हुआ है जैसे पहाड़ी आदमी चश्मे के ऊपर। वह अपनी पोशाक ठीक-ठाक करता है, मूंछों पर ताव देता है।

पहाड़ी लोग एक बददुआ यह देते हैं – "जो आदमी चश्मे को गन्दा करता है, उसका घोड़ा मर जाये।" एक अन्य शाप यह है – "तुम्हारे घर के आस-पास सारे चश्मे सूख जायें।" प्रशंसा करते हुए पहाड़िये कहते हैं – "शायद इस गांव के वासी अच्छे हैं – यहां चश्मा और क़ब्रिस्तान अच्छी हालत में हैं, साफ़-सुथरे हैं।"

हमारे यहां वीरगति को प्राप्त हुए लोगों के सम्मान में अनेक चश्मे और कुएं खोदे गये हैं, उन्हें तो उनके नाम भी दिये गये हैं – अली का चश्मा, ओमार का चश्मा, हाजी-मुरात का कुआं, महमूद का चश्मा।

युवतियां जब कन्धों पर घड़े रखकर चश्मों की ओर जाती हैं तो युवक भी उन्हें देखने और अपने लिये दुलहन चुनने की ख़ातिर यहां आते हैं। न जाने कितनी प्रेम-भावनायें जागी हैं इन चश्मों के पास, न जाने कितने भावी परिवारों के प्रणय और सम्बन्ध-सूत्र यहां बने हैं!

नहीं तुम्हें मालूम कि किसके बारे में यह गीत रचा?
चश्मे पर आकर खुद देखो, कौन गीत में छिपा हुआ।

हमारे शायर महमूद ने ऐसा लिखा है।

एक बार पर्वत की ओर जाते हुए मैं गोत्साल्ल गांव के चश्मे के क़रीब रुका। मैंने क्या देखा कि एक राहगीर चश्मे पर झुका हुआ चुल्लू भर-भरकर निर्मल जल पी रहा है और कहता जा रहा है –

"ओह, मज़ा आ गया!"

"मग ले लीजिये," मैंने प्रस्ताव किया।

"मैं दस्ताने पहनकर खाना नहीं खाता हूं," राहगीर ने जवाब दिया।

पिता जी को यह कहना अच्छा लगता था – बारिश तथा नदी के शोर से अधिक मधुर और कोई संगीत नहीं होता। बहते पानी की कल-छल सुनते और उसे देखते हुए कभी मन नहीं भरता।

वसन्त में जब पहाड़ों में बर्फ़ पिघलने लगती थी तो मेरी अम्मां घाटी में तेज़ी से बहती आनेवाली जल-धाराओं को घण्टों तक देखती रह सकती थीं। वह तो जाड़े में ही लकड़ी के पीपे तैयार करने लगती थीं, ताकि गर्मियों में उन्हें परनालों के नीचे रखकर बारिश का पानी जमा कर सकें।

मेरा सबसे प्यारा शौक़ तो बारिश के पानी से भरे डबरों में नंगे पांव छपछप करते फिरना था। बारिश से ज़रा भी डरे बिना हम जल-धाराओं को रोकनेवाले बांध खड़े करते थे और इस तरह छोटे-छोटे ताल बनाते थे।

मैं कल्पना कर सकता हूं कि परिन्दे जब पथरीले प्यालों से बारिश का पानी पीते हैं तो उन्हें कैसा आनन्द प्राप्त होता होगा!

शामील अपने सूरमाओं से कहा करता था – "कोई बात नहीं कि दुश्मन ने हमारे सारे गांव, हमारे सारे खेतों पर क़ब्ज़ा कर लिया। लेकिन चश्मा तो अभी हमारे पास है, हम जीतेंगे।"

दुश्मनों का हमला होने पर कठोर इमाम शामील सबसे पहले तो गांव के चश्मे की रखवाली करने का हुक्म देता था। जब खुद

दुश्मनों पर हमला करता था तो सबसे पहले गांव के चश्मे पर क़ब्ज़ा करने का आदेश देता था।

पुराने वक़्तों में अगर कोई आदमी अपने जानी दुश्मन को नदी में नहाते देखता था तो उसके पानी से बाहर आ जाने और अपने हथियार बांध लेने से पहले वह कभी उसपर वार नहीं करता था।

किन्तु अक्सर ही मुझे एक अत्यधिक शान्तिपूर्ण प्रथा की याद आती है और वह भी पानी से ही सम्बन्ध रखती है। इसे "नन्हा बारिशी गधा" कहा जाता था।

"दाग़िस्तानी घाटी की जलती दोपहरी में"* – यह योंही नहीं लिखा गया है। दुपहर की गर्मी हमारे यहां बड़ी भयानक और सब कुछ सुखा देनेवाली होती है। गर्मी से धरती फट जाती है, चट्टानों से धधकती हुई भट्ठी की तरह गर्म हवा के लहरे आते हैं। वृक्षों की शाखायें झुक जाती हैं, खेत सूख जाते हैं, सभी कुछ – पेड़-पौधे, पक्षी, भेड़ें और निश्चय ही लोग भी आसमान के पानी यानी बारिश के लिये तरसते हैं। उस समय गांव के किसी छोकरे को पकड़कर धूप में मुरझायी तरह-तरह की घासों की पोशाक पहनाकर रेड इंडियन-सा बना देते हैं। यही है "नन्हा बारिशी गधा"। उस बालक के समान दूसरे बालक उसे रस्सी बांधकर गांव में घुमाते हैं और यह भजन या प्रार्थना-गीत गाते हैं –

"अल्ला, अल्ला, जल्दी से बारिश भेजो
आसमान से धरती तक पानी कर दो!
परनालों में बारिश, जल का शोर मचे
पानी बरसाओ, हर कोई यही कहे।
बादल और घटाओ, नभ में छा जाओ
पानी की नदियां बन धरती पर आओ!
प्यारी, प्यारी, सारी धरती धुल जाये
खेतों में फिर से हरियाली छा जाये!

---

* लेर्मोन्तोव की एक कविता की पहली पंक्ति। – सं०

गांव के बालिग लोग बाहर गली में आ जाते हैं, "नन्हे बारिशी गधे" पर घड़े या चिलमची से पानी डालते हैं और बच्चों के उक्त गीत को दोहराते हुए "अमीन! अमीन!" कहते हैं।

एक बार मैं भी "नन्हा बारिशी गधा" बना। मुझपर इतना पानी उंडेला गया जो सचमुच आधी बारिश के लिये काफ़ी होता।

किन्तु अल्ला या आसमान हमारे ऐसे गानों को बहुत कम ही सुनते थे। सूरज आग बरसाता रहता था। वह हमारे दाग़िस्तान पर मानो गर्म इस्तरी फेरता रहता था। वह दुख-कष्ट देता था। हम उसे दुखदायी सूरज ही कहते थे। सैकड़ों, हज़ारों सालों तक धरती दुखदायी सूरज की आग के नीचे झुलसती रही। अगर यूरोप को ध्यान में रखा जाये तो सबसे ज़्यादा धूपवाले दिन दाग़िस्तान के गुनीब गांव के ही हिस्से आते हैं। मेरा त्सादा गांव भी उससे कुछ पीछे नहीं है। बाक़ी गांवों के बारे में भी यही कहा जा सकता है। व्यर्थ ही तो इन्हें "पानी के प्यासे" नहीं कहा जाता।

मुझे अम्मां का थका हुआ चेहरा याद आता है, जब वह पानी से भरा घड़ा पीठ पर लादे और गागर हाथ में लिये हुए लौटती थीं। पानी हमारे गांव से तीन किलोमीटर दूर था।

मुझे अम्मां का खुशी से खिला हुआ चेहरा याद आता है, जब बारिश होती थी, धरती भीग जाती थी और परनालों के नीचे रखे पीपों में पानी गिरता था, वे पानी से भर जाते थे और उनके किनारों से पानी छलककर नीचे गिरने लगता था।

मुझे याद आती है अपने गांव की बूढ़ी, झुकी पीठवाली हबीबात की। हर सुबह को कंधे पर फावड़ा रखकर वह गांव की सीमा से परे जाती और जहां-तहां जमीन खोदने लगती। उसके दिमाग़ में पानी ढूंढ़ने की सनक थी और वह लगातार उसे खोजती रहती थी।

सभी यह जानते थे कि वह व्यर्थ ही कोशिश करती है,

लेकिन कोई भी उससे कभी कुछ नहीं कहता था। सिर्फ़ मैंने, नादान छोकरे ने ही एक बार उससे कहा–

"मौसी हबीबात, आप बेकार ही मेहनत करती रहती है, यहां पानी नहीं है।"

इस बात को लेकर मेरे पिता जी मुझपर बहुत बिगड़ उठे।

"लेकिन वहां तो पानी है ही नहीं।"

"ऐसा भी होता है कि लोगों के पास रोटी नहीं होती। लेकिन क्या उनपर हंसा जाये? मेरे बेटे, इस बात को याद कर लो कि ग़रीबी और उन लोगों की कभी खिल्ली नहीं उड़ानी चाहिये जो पानी खोजते हैं।"

"किन्तु आपने तो स्वयं ही इस बारे में एक विनोदपूर्ण कविता रची थी कि कैसे इन्क्वाचूलीनियों ने इस उद्देश्य से पुल को लम्बा करने की कोशिश की थी कि उन्हें ज्यादा पानी मिल सके।"

"इस मज़ाक़ में तो आंसू मिले हुए हैं। जवान लोग इसे नहीं समझ सकते। तुम अभी यह नहीं जानते कि दाग़िस्तान के लिये पानी का क्या महत्त्व है। तुम सोचो कि मौसी हबीबात के मन में कितनी तीव्र इच्छा होगी कि वह उस जगह पानी ढूंढ़ रही है जहां वह नहीं है। लेकिन ख़ैर, अब यही अच्छा होगा कि तुम चुप रहो–बारिश आ रही है।"

इस समय वास्तव में ही हल्की-हल्की, सरसराती फुहार पड़ने लगी थी।

–किसलिये ख़ामोश हो तुम भोर से ही पक्षियो?
–हो रही बारिश, उसे हम सुन रहे!
–किसलिये ख़ामोश हो तुम शायरो, कवियो सभी?
–हो रही बारिश, उसे हम सुन रहे!

पिता जी हमेशा यह कहा करते थे कि उनके जीवन में सबसे अधिक ख़ुशी का दिन वह था, जब दूरस्थ पर्वत से पाइपों में बहता पानी उनके गांव में आया। इसके पहले पिता जी हर दिन

कुदाल लेकर अन्य सभी लोगों के साथ पानी का नल बनाने के लिये काम करते रहते थे। हमारे गांव में पानी आने का यह दिन मुझे बहुत अच्छी तरह से याद है। जब पानी बहने लगा तो पिता जी ने उसमें फूल तक डालने से मना कर दिया।

गांववालों ने सौ वर्षीया एक बुढ़िया को पानी का पहला घड़ा भरने के लिये चुना। बुढ़िया ने घड़ा भर लिया और उसमें से पानी का पहला मग भरकर वह उसे मेरे पिता जी के पास ले गयी।

तमग़ों और पदकों से सम्मानित पिता जी ने कहा कि इतना क़ीमती पुरस्कार उन्हें पहले कभी नहीं मिला था। उसी दिन उन्होंने पानी के बारे में एक कविता रची। इस कविता में उन्होंने पक्षियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि वे अब अपनी डींग नहीं हांकें, कि उनकी तुलना में अब हम भी कुछ बुरा पानी नहीं पीते हैं। उन्होंने कहा कि किसी शादी और किसी भी जशन के मौक़े पर उन्होंने पानी की कल-कल से ज़्यादा मधुर और प्यारा संगीत नहीं सुना। उन्होंने विश्वास दिलाया कि क़दम-क़दम चलनेवाला कोई घोड़ा या कोई जवान घोड़ी अब पानी लाने के लिये जानेवाली औरत की चाल से मुक़ाबला नहीं कर सकती। उन्होंने कुदाल और फावड़े तथा नल को धन्यवाद दिया। उन्होंने उस समय की याद दिलायी, जब पानी जमा करने के लिये चूल्हों के क़रीब बर्फ़ पिघलायी जाती थी। तब हर दिन पानी से भरे भारी घड़े लाने के कारण हमारी पहाड़ी औरतों की वक़्त से पहले ही कमर झुक जाती थी। हां, पिता जी के लिये यह महान दिन था!

मुझे मख़ाचकला में जुलाई की भयानक गर्मी भी याद आ रही है। पिता जी सख़्त बीमार थे, डाक्टरों और दवाइयों से घिरे रहते थे। वह बोले – "मुझे बहुत तकलीफ़ हो रही है। दसियों चिमटियां और संडसियां मेरे बदन को विभिन्न दिशाओं में खींच रही हैं।"

वह यह मानते हुए कि दवाइयां पीने के मामले में बहुत देर

हो चुकी है और उनसे कोई फ़ायदा नहीं होगा, अब उन्हें नहीं पीते थे। वह तो तकिया ठीक करने में भी कोई तुक न देखते हुए उसे भी ठीक नहीं करने देते थे। जब उनकी तबीयत बहुत ही ज़्यादा ख़राब हो गयी तो उन्होंने मुझे अपने पास बुलाकर कहा –

"एक ऐसी दवाई है जिसे पीने से मेरी तबीयत बेहतर हो जायेगी।"

"कौन-सी?"

"बुत्सराब खड्ड में एक छोटा-सा कुआं है... एक चश्मा है... मैंने ही उसे ढूंढ़ा था... वहां से एक घूंट पानी मंगवा दो..."

अगले दिन एक पहाड़ी औरत उस चश्मे से पानी ले आयी। पिता जी ने आंखें मूंदकर उसे छककर पिया।

"शुक्रिया, मेरे डाक्टर।"

हमने उनसे यह नहीं पूछा कि उन्होंने किसे डाक्टर कहा था – पानी को, पानी लानेवाली पहाड़ी औरत को, दूर खड्ड के चश्मे या उस चश्मे को जन्म देनेवाली अपनी सारी मातृभूमि को।

अम्मां मुझसे कहा करती थीं – हर किसी का वांछित स्रोत होना चाहिये। वह यह भी कहा करती थीं कि अगर खेत के क़रीब ठण्डे पानी का चश्मा बहता हो तो फ़सल काटनेवाली औरत कभी नहीं थकेगी।

एक क़िस्सा आज तक सुनने को मिलता है कि जवानी के दिनों में ही शामील और उसके उस्ताद काज़ी-मुहम्मद गीमरी खड्ड की एक बुर्जी में दुश्मनों से घिर गये थे। शामील दुश्मनों की संगीनों के बीच बुर्जी से नीचे कूद गया और उसने ख़ंजर चलाते हुए अपने निकल जाने का रास्ता बना लिया। तब उसके बदन पर उन्नीस घाव हुए थे, फिर भी वह बच निकला था, पहाड़ों में भाग गया था। पहाड़ी लोगों का ख़्याल था कि वह मर गया। जब वह गांव में लौटा तो उसकी मां ने, जो मातमी पोशाक पहन चुकी थी, हैरान और ख़ुश होते हुए पूछा –

"शामील, मेरे बेटे, तुम जिन्दा कैसे बच गये?"

"ऊपर पहाड़ों में मुझे एक चश्मा मिला था," शामील ने जवाब दिया।

और जब पहाड़ी लोगों ने यह सुना कि उनका इमाम, उनका बूढ़ा शामील अरबी रेगिस्तान में ऊंट से गिरकर मर गया तो अपने गांवों में घरों की दहलीजों पर बैठे हुए उन्होंने कहा—

"अफ़सोस, पास में कोई दाग़िस्तानी चश्मा नहीं था।"

नूहा में मैं हाजी-मुरात की क़ब्र पर हो आया हूं, मैंने क़ब्र पर लगे पत्थर और उसपर लिखे हुए ये शब्द भी पढ़े हैं—"यहां दाग़िस्तान का शेर बबर दफ़न है।" मैंने इस शेर बबर का कटा हुआ सिर भी देखा है।

"अरे सिर, तुम बदन से अलग कैसे हो गये?"

"दाग़िस्तान, अपनी मातृभूमि, अपने चश्मे का रास्ता भूल गया था, भटक गया था।"

मेरा गांव पहाड़ के दामन में बसा हुआ है। उसके सामनें समतल पठार है, जहां काफ़ी दूरी पर ख़ूंज़ह दुर्ग नज़र आता है। दुर्ग के सभी ओर ख़ासी दूरी पर बसे गांव उसे घेरे हुए हैं। सभी दिशाओं में दुर्ग से गोलियां चलाने के लिये उसमें बनाये गये छेद नज़र आते हैं—दुर्ग धमकाता-डराता, आगे बढ़ने से रोकता और सब कुछ देखता प्रतीत होता है। दुर्ग के छेदों में से चैन न जानने और किसी के सामने न झुकनेवाले पहाड़ी लोगों पर अक्सर गोलियां चली हैं। मेरे त्सादा गांव के कबूतर इस दुर्ग की गोलियों की आवाज़ के कारण बहुत बार डरकर उड़े हैं और गांव के ऊपर चक्कर काटते रहे हैं। "किसकी सबसे ख़तरनाक नज़र और ऊंची आवाज़ है?" पहाड़ी लोग पूछा करते थे। "ख़ूंज़ह दुर्ग की।"

किन्तु मेरे ज़माने में ख़ूंज़ह दुर्ग की रौद्रता केवल क़िस्से-कहानियों में रह गयी है। गोलियां चलाने के लिये बनाये गये उसके छेदों में से हम स्कूल के छात्र एक-दूसरे पर सेबों के टुकड़े या बर्फ़ के गोले फेंका करते थे अथवा बिगुल बजाया करते थे और ऐसा करते हुए हम भी इर्द-गिर्द की चट्टानों से कबूतरों

को उड़ने के लिये विवश कर दिया करते थे। हां, खूंजह दुर्ग को स्कूल बना दिया गया था जहां मैंने सात साल तक तालीम हासिल की।

अब मैं कहीं भी क्यों न जाऊं, किसी भी जगह पर क्यों न होऊं, सिम्फ़ोनी की ज़ोरदार गूंज और नाच की धुनों में मुझे अपने बचपन का मधुर संगीत सुनायी देता है, स्कूल की घण्टी की प्यारी टनटन सुनायी देती है, ख़ास तौर पर उस घण्टी की सुखद आवाज़ जो पाठों की समाप्ति की सूचना देती थी। मैं अब भी उसे सुन रहा हूं और वह मुझे दालान या गली की ओर नहीं, बल्कि, इसके विपरीत, स्कूल की ओर, कक्षा और छात्रावास की ओर बुलाती है।

हमारी कक्षा में हम तीस छात्र थे। महीने में एक बार हममें से हर किसी को पढ़ाई से मुक्त कर दिया जाता था और उसे पानी लाने का काम करना पड़ता था। सज़ा के रूप में दो दिन तक भी यह ड्यूटी बजानी पड़ सकती थी। वैसे मैं तो किसी अपराध के दण्ड के बिना भी हमेशा लगातार दो दिन तक पानी लाता था। वह इसलिये कि मेरा एवज़ी अब्दुलगफ़ूर युसूपोव उसकी बारी आने पर हमेशा ही बीमार हो जाता था। मुझे याद आ रहा है कि हमेशा हर महीने की सातवीं-आठवीं तारीख़ों को ही मेरी बारी आती थी।

पानी का चश्मा दुर्ग से बाहर था। वहां जाना तो आसान होता था—सबसे पहले तो इसलिये कि बालटी ख़ाली होती थी, दूसरे इसलिये कि पगडंडी सीधी नीचे जाती थी। यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि लौटते वक़्त सब कुछ बेहद बदल जाता था। इसके अलावा एक तंग-सी गली में एल्युमीनियम के मग हाथों में लिये छात्रों की भीड़ मेरा इन्तजार करती होती थी। वे पानी पीना चाहते थे। वे मेरी बालटी पर टूट पड़ते थे, आधा पानी पी जाते थे, आधा छलका देते थे—उनसे बचना आसान नहीं होता था। लेकिन मेरे लिये स्कूल तक पानी पहुंचाना जरूरी होता था।

इस चश्मे के बारे में बहुत से क़िस्से-कहानियां हैं। उनमें से

एक क़िस्सा मैं यहां उस रूप में दे रहा हूं जिस रूप में मेरे पिता जी ने सुनाया था।

इस दुर्ग की दीवारें गोलियों के निशानों से छलनी हुई पड़ी हैं। इसकी बुर्जियों पर कई बार झण्डे बदले हैं। गृह-युद्ध के दिनों में इस दुर्ग पर रह-रहकर क़ब्ज़ा बदलता रहा था–कभी सफ़ेद गार्ड तो कभी लाल सैनिक इसपर अधिकार कर लेते थे। छापेमारों ने छः महीनों तक इस दुर्ग की शत्रुओं से रक्षा की। किन्तु हर दिन दो घण्टों के लिये गोलाबारी बन्द कर दी जाती थी। इन दो घण्टों के दौरान दुर्ग-रक्षकों की पत्नियां पानी लाने के लिये दुर्ग से बाहर जाती थीं। एक दिन कर्नल अलीख़ानोव ने कर्नल जफ़ारोव से कहा–

"आओ, हम औरतों को चश्मे पर जाने से रोक दें। अतायेव के दस्ते को प्यास से मरने दिया जाये।"

कर्नल जफ़ारोव ने जवाब दिया–

"अगर हम पानी लाने के लिये जानेवाली औरतों पर गोलियां चलायेंगे तो सारा दाग़िस्तान हमसे मुंह फेर लेगा।"

तो इस तरह जब तक औरतें चश्मे से पानी लेकर वापस नहीं चली जाती थीं, दोनों पक्ष किसी समझौते के बिना शान्ति बनाये रहते थे।

जब मेरी अम्मां को, जो उस वक़्त बीमार थीं, यह बताया गया कि उनके बेटे को लेनिन पुरस्कार दिया गया है तो उन्होंने आह भरी और बोलीं–"अच्छी ख़बर है। किन्तु मुझे यह सुनकर ज़्यादा ख़ुशी होती कि मेरे बेटे ने किसी ग़रीब आदमी या यतीम की मदद की है। मैं तो यही चाहती हूं कि वह पानी के लिये तरस रहे किसी गांव में पानी पहुंचाने की ख़ातिर यह रक़म दे दे। लोग उसकी तारीफ़ करेंगे। उसके पिता जी को जब पुरस्कार मिला था तो उन्होंने उसकी सारी रक़म नये चश्मों की तलाश के लिये दे दी थी। जहां चश्मा है, वहां पगडंडी है, जहां पगडंडी है, वहां रास्ता है। और रास्ते की सभी लोगों को, हर किसी को ज़रूरत है। रास्ते के बिना आदमी अपना घर नहीं ढूंढ़ पायेगा, किसी खड्ड-खाई में लुढ़क जायेगा।"

मेरे पिता जी हमेशा दोहराया करते थे कि मेरा उस साल में जन्म हुआ था, जब दाग़िस्तान में पहली नहर खोदी गयी थी। उसे सुलाक से मख़ाचकला तक बनाया गया था। "पानी नहीं, ज़िन्दगी नहीं"—प्लाईवुड की तख़्ती पर लिखा हुआ यह नारा नहर खोदनेवाले अपने साथ लेकर आये थे।

पानी! लीजिये, अब चट्टानों से पानी बहता है मानो किसी का शक्तिशाली हाथ उन्हें निचोड़ रहा हो। लीजिये, जल-धारायें बड़ी तेज़ी से पर्वत से नीचे बहती हैं, पत्थरों के बीच से छलांगें लगाती हैं, चट्टानों से नीचे कूदती हैं, ज़ख़्मी दरिन्दे की तरह दर्रों में गरजती-दहाड़ती हैं और हरी-भरी घाटियों में मेमने की तरह उछलती-कूदती हैं।

मेरे दाग़िस्तान के गिर्द चार रुपहली पेटियां बंधी हुई हैं, चार कोइसू नदियां उसके गिर्द बहती हैं। सुलाक और सामूर नगर सगी बहनों की तरह उनका स्वागत करते हैं। इसके बाद ये सभी—दाग़िस्तान की नदियां—सागर की गोद में चली जाती हैं।

आग और पानी—जनगण का भाग्य हैं, आग और पानी—दाग़िस्तान के माता-पिता हैं, आग और पानी—वे ख़ुरजियां हैं जिनमें हमारी सारी दौलत जमा है।

हमारे दाग़िस्तान में बुज़ुर्ग और एकाकी लोगों के पास युवक-युवतियां आते हैं, ताकि घर-गिरस्ती के काम-काज में उनकी कुछ मदद कर दें। सबसे पहले वे क्या करते हैं? आग जलाने के लिये लकड़ी चीरते हैं और घड़ों में पानी लाते हैं। काले कौवे न जाने यह कैसे अनुभाव कर लेते हैं कि किस पहाड़ी घर में आग बुझ गयी है। वे फ़ौरन उड़कर वहां जा बैठते हैं और कांय-कांय करने लगते हैं।

आग और पानी—ये दो हस्ताक्षर, दो प्रतीक हैं जो दाग़िस्तान की रचना के समझौते के नीचे अंकित हैं।

दाग़िस्तान की आधी लोक-कथायें उस दिलेर नौजवान के बारे में हैं जो अजगर की हत्या करके आग लाता है ताकि गांव में गर्माहट और रोशनी हो।

दाग़िस्तान की लोक-कथाओं का दूसरा भाग – उस समझदार लड़की के सम्बन्ध में है जो चालाकी से अजगर को सुलाकर पानी लाती है ताकि गांव के लोग जी भरकर पानी पी सकें और खेत सींचे जा सकें।

साहसी नौजवान और समझदार युवती द्वारा मारा गया अजगर पर्वत और कत्थई रंग के पर्वत-शृंगों में बदल गया।

दाग़ का अर्थ है पर्वत और स्तान का अर्थ है देश। दाग़िस्तान का मतलब है पर्वत का देश, पर्वत-देश, पहाड़ी मुल्क, गर्वीला देश – दाग़िस्तान।

हिज्जे जोड़-जोड़कर जैसे
पढ़ता है बालक,
उसी तरह से मैं दोहराऊं
कभी न कहता थक पाऊं –
दाग़िस्तान, दाग़िस्तान!

कौन और क्या? दाग़िस्तान।
किसके बारे में मैं गाऊं? केवल उसके बारे में।
और सुनाऊं यह मैं किसको? उसको, दाग़िस्तान को।

हमारे छोटे-से जनगण को इस हेतु कि उसके पास हमेशा आग और पानी हो, अनेक अजगरों को जीतना पड़ा। नदियां अब प्रकाश देती हैं, पानी आग का रूप लेता है। अनादिकाल के ये दो प्रतीक अब एक में बदल गये हैं।

चूल्हा और चश्मा – पहाड़ी लोगों के लिये ये दो शब्द सबसे प्यारे हैं। दिलेर आदमी के बारे में कहा जाता है – "वह आदमी नहीं, आग है।" गुणहीन, नालायक़ आदमी के बारे में कहा जाता है – "बुझा हुआ दीपक है।" बुरे आदमी के सम्बन्ध में कहा जाता है – "वह उनमें से है जो चश्मे या स्रोत में थूक सकते हैं।"

मदिरा से भरा हुआ जाम हाथ में लेकर हम भी यही कहेंगे –

चूल्हा, चश्मा – दो अनादि आधारों का
जो गुणगान करें, हो उनकी कीर्ति अमर
अधिक बढ़े यश उनका, थैली एक जला दें जो केवल
और फावड़ा खोद सके जिनका निर्झर।

एक बुज़ुर्ग पहाड़ी आदमी ने जवान पहाड़िये से पूछा –

"तुमने अपनी ज़िन्दगी में आग देखी है, कभी उसमें से गुज़रे हो?"

"मैं उसमें ऐसे कूदा था जैसे पानी में।"

"बर्फ़ जैसे ठण्डे पानी से कभी तुम्हारा वास्ता पड़ा है, कभी उसमें कूदे हो?"

"जैसे आग में।"

"तब तुम बालिग हो चुके पहाड़ी आदमी हो। अपने घोड़े पर ज़ीन कसो, मैं तुम्हें पहाड़ों में ले चलता हूं।"

दो पहाड़ी आदमियों के बीच झगड़ा हो जाने पर एक ने दूसरे से कहा –

"क्या मेरे घर की छत के ऊपर तुम्हारे घर की छत की तुलना में कम घना धुआं है? क्या मैं कभी किसी से पानी मांगने गया हूं? अगर तुम ऐसा समझते हो तो आओ, उस पहाड़ी के पीछे चलें और मामला तय कर लें।"

दरवाज़ों पर मैंने यह लिखा देखा है – "चूल्हे में आग जल रही है, मेहमान भीतर आने की मेहरबानी करें।" बड़े अफ़सोस की बात है कि दाग़िस्तान में ऐसे फाटक नहीं हैं जिनपर ये शब्द लिखे जा सकें – "चूल्हे में आग जल रही है, मेहमान भीतर आने की मेहरबानी करें।"

आग तो सचमुच जल रही है। केवल कहने के लिये, सुन्दर शब्दाडम्बर के रूप में ही आपको आने की दावत नहीं दी जा रही है – शर्माइये नहीं, भीतर आइये, चूल्हे में आग जल रही है और चश्मों में निर्मल जल है, स्वागत है आपका!

घर

अवार भाषा के 'रीग' शब्द के दो भिन्न अर्थ हैं–'उम्र' और 'घर'। मेरे लिये ये दोनों अर्थ एक में ही घुल-मिल जाते हैं। उम्र–घर। उम्र हो गयी तो अपना घर भी होना चाहिये। अगर अवार भाषा की इस कहावत का उच्चारण किया जाये (हमारे यहां एक ऐसी कहावत है) तो ऐसा शब्द-खिलवाड़ सामने आता है जिसका अनुवाद सम्भव नहीं–'रीग–रीग', उम्र–घर।

तो ऐसा माना जा सकता है कि दाग़िस्तान बहुत पहले ही बालिग़ हो चुका है और इसलिये इस दुनिया में उसका यथोचित और ठोस स्थान है।

मैं अक्सर अम्मां से पूछा करता था–

"दाग़िस्तान कहां है?"

"तुम्हारे पालने में," मेरी समझदार अम्मां जवाब देतीं।

"तुम्हारा दाग़िस्तान कहां है?" आंदी गांव के एक व्यक्ति से किसी ने पूछा।

उसने चकराते हुए अपने इर्द-गिर्द देखा।

यह टीला–दाग़िस्तान है, यह घास–दाग़िस्तान है, यह नदी–दाग़िस्तान है, पर्वत पर पड़ी हुई बर्फ़–दाग़िस्तान है, सिर के ऊपर बादल, क्या यह दाग़िस्तान नहीं है? तब सिर के ऊपर सूरज भी क्या दाग़िस्तान नहीं है?

"मेरा दाग़िस्तान–हर जगह है!" आंदी गांव के वासी ने उत्तर दिया।

गृह-युद्ध के बाद, १९२१ में हमारे गांव तबाहहाल थे, लोग भूखे रहते थे और नहीं जानते थे कि आगे क्या होगा। उसी वक़्त तो पहाड़ी लोगों का एक प्रतिनिधिमण्डल लेनिन से मिलने गया। लेनिन के कमरे में जाकर दाग़िस्तान के ये प्रतिनिधि कुछ भी कहे बिना दुनिया का एक बहुत बड़ा नक़्शा खोलने लगे।

"यह नक़्शा आप किसलिये लाये हैं?" लेनिन ने हैरान होते हुए पूछा।

"आपको अनेक जनगण की बहुत-सी चिन्तायें हैं, आप यह याद नहीं रख सकते कि कौन लोग कहां रहते हैं। इसलिये हम आपको यह दिखाना चाहते हैं कि दाग़िस्तान कहां पर है।"

लेकिन हमारे पहाड़ी लोग चाहे कितना ही क्यों न खोजते रहे, अपने क्षेत्र को ढूंढ़ नहीं पाये, बड़े नक़्शे के गड़बड़-झाले में फंस गये, अपने छोटे से देश को खो बैठे। तब लेनिन ने किसी तरह की खोज-तलाश किये बिना फ़ौरन ही पहाड़ी लोगों को वह दिखा दिया जो वह ढूंढ़ रहे थे।

"यही तो है आपका दाग़िस्तान," और वह चहकते हुए हंस पड़े।

"इसे कहते हैं दिमाग़," हमारे पहाड़ियों ने सोचा और लेनिन को बताया कि उनके पास आने के पहले वे जन-कमिसार के यहां गये थे और वह लगातार उनसे यही बताने को कहता रहा था कि दाग़िस्तान कहां है। जन-कमिसार के सहकर्मी तरह-तरह के अनुमान-अटकलें लगाते रहे थे। एक ने कहा कि वह कहीं जार्जिया में है, दूसरे ने कहा कि तुर्किस्तान में। एक सहकर्मी ने तो यह दावा भी किया कि वह दाग़िस्तान में ही बसमाचियों* से लोहा लेता रहा है।

लेनिन तो और भी ज़्यादा ज़ोर से हंस पड़े–

"कहां, कहां, तुर्किस्तान में? बहुत खूब। यह तो कमाल ही हो गया।"

लेनिन ने उसी वक़्त टेलीफ़ोन का रिसीवर हाथ में लिया और उस जन-कमिसार को यह स्पष्ट किया कि तुर्किस्तान कहां है, दाग़िस्तान कहां है, बसमाची और म्युरीद कहां हैं।

क्रेमलिन में लेनिन के कमरे में अभी तक काकेशिया का बहुत बड़ा नक़्शा लटका हुआ है।

---

* बसमाची – मध्य एशिया में क्रान्ति-विरोधी धनी ज़मींदारों और उनके अनुयायियों के गिरोह। – सं०

अब दाग़िस्तान – एक जनतन्त्र है। वह छोटा है या बड़ा, इस चीज़ का कोई महत्त्व नहीं। वह वैसा ही है, जैसा होना चाहिये। हमारे सोवियत देश में तो शायद अब कोई यह नहीं कहेगा कि दाग़िस्तान तुर्किस्तान में है, लेकिन दूर-दराज़ के किसी देश में तो मुझे स्पष्टीकरण देनेवाली इस तरह की बातचीत अवश्य करनी पड़ती है –

"आप कहां से हमारे यहां आये हैं?"

"दाग़िस्तान से।"

"दाग़िस्तान ... दाग़िस्तान ... यह कहां है?"

"काकेशिया में।"

"पूरब में या पश्चिम में?"

"कास्पी सागर के तट पर।"

"अच्छा, बाक़ू?"

"अजी बाक़ू नहीं। कुछ उत्तर की तरफ़।"

"आपकी सीमायें किससे मिलती हैं?"

"रूस, जार्जिया और आज़रबाइजान से ..."

"लेकिन क्या वहां पर चेर्केस नहीं रहते? हमने तो सोचा था कि वहां चेर्केस रहते हैं।"

"चेर्केस तो चेर्केसिया में रहते हैं और दाग़िस्तान में दाग़िस्तानी रहते हैं। तोलस्तोय ... हाजी-मुरात ... तोलस्तोय की यह रचना पढ़ी है? बेस्तूजेव-मारलीन्स्की* ... या फिर लेर्मोन्तोव: 'दाग़िस्तानी घाटी की जलती दोपहरी में' पढ़ी है?.."

"क्या यह वहीं है जहां एलब्रूस है?"

"एलब्रूस तो काबारदीनो-बल्कारिया में है, कज़्बेक – जार्जिया में और हमारे यहां ... गुनीब गांव है, त्सादा गांव है।"

दूर-दराज़ के किसी देश में मुझे कभी-कभी यह सब कहना

---

* बेस्तूजेव-मारलीन्स्की (१७६७–१८३७) – दिसम्बरवादी, स्टाफ़-कप्तान, लेखक। २० साल का कारावास मिला, १८२६ से काकेशिया में सैनिक के रूप में सेवा करता रहा था। – सं०

पड़ता है। यह तो सभी जानते हैं कि पुत्र-वधू को इशारे से कोई बात समझाने के लिये बिल्ली को डांटा-डपटा जाता है। शायद हमारे देश में भी कोई ऐसा छिछला आदमी मिल जाये जो अभी तक ऐसा सोचता है कि दाग़िस्तान में चेर्केस रहते हैं या शायद ऐसा कहना और ज़्यादा सही होगा कि वह कुछ भी न सोचता हो।

मुझे बहुत दूर के देशों में जाने का मौक़ा मिला है, मैंने विभिन्न सम्मेलनों, कांग्रेसों और परिगोष्ठियों में भाग लिया है।

विभिन्न महाद्वीपों – एशिया, यूरोप, अफ़्रीका, अमरीका और आस्ट्रेलिया से लोग जमा होते हैं। वहां, जहां सभी चीज़ों की महाद्वीपों के स्तर पर चर्चा की जाती है, मैं तो वहां भी यही कहता हूं कि मैं दाग़िस्तान से आया हूं।

"आप एशिया या यूरोप के प्रतिनिधि हैं, यह स्पष्ट करने की कृपा कीजिये," मुझसे अनुरोध किया जाता है। "आपका दाग़िस्तान किस महाद्वीप में है?"

"मेरा एक पांव एशिया में है और दूसरा यूरोप में। कभी-कभी ऐसा होता है कि दो मर्द एकसाथ घोड़े की गर्दन पर अपने हाथ रख देते हैं – एक मर्द एक तरफ़ से और दूसरा दूसरी तरफ़ से। ठीक इसी तरह से दाग़िस्तान के पहाड़ों की चोटी पर दो महाद्वीपों ने एकसाथ अपने हाथ रख दिये हैं। मेरी धरती पर उनके हाथ मिल गये हैं और मुझे इस बात की बड़ी ख़ुशी है।"

परिन्दे और नदियां, पहाड़ी बकरे और लोमड़ियां तथा बाक़ी सब जानवर भी एकसाथ यूरोप और एशिया के हैं। मुझे ऐसा लगता है कि उन्होंने यूरोप और एशिया की एकता की समिति बनायी है। अपनी कविताओं के साथ मैं बड़ी ख़ुशी से ऐसी समिति का सदस्य बनने को तैयार हूं।

फिर भी कुछ लोग मानो मेरा मुंह चिढ़ाते हुए जान-बूझकर ही मुझसे यह कहते हैं – "तुमसे कोई कहे भी तो क्या – तुम एशियाई ठहरे।" या इसके विपरीत, एशिया के किसी दूरस्थ स्थान पर मुझसे ऐसा कहा जाता है – "तुमसे कोई दूसरी उम्मीद

ही क्या की जा सकती है–तुम यूरोपीय आदमी जो हो।" मैं न तो पहले और न दूसरे लोगों की बात का खण्डन करता हूं। दोनों ही सही हैं।

जब कभी मैं किसी औरत के प्रति अपनी प्रेम-भावना प्रकट करने लगता हूं तो वह सन्देहपूर्वक अपना सिर हिलाकर कहती है–

"ओह, यह चालाकी और मक्कारी से भरा पूरब!"

जब कभी मेरे यहां दाग़िस्तानी मेहमान आते हैं, मेरी गति-विधि में उन्हें कोई अजीब बात दिखाई देती है तो वे अपने सिर हिलाते हैं और कह उठते हैं–

"ओह, ये यूरोपीय अन्दाज़!"

हां, दाग़िस्तान पूरब को प्यार करता है, मगर पश्चिम भी उसके लिये पराया नहीं है। वह तो उस पेड़ की तरह है जिसकी जड़ें एकसाथ दो महाद्वीपों की धरती में हैं।

क्यूबा में मैंने फ़िडेल कास्त्रो को दाग़िस्तानी लबादा भेंट किया।

"इसमें बटन क्यों नहीं है?" फ़िडेल कास्त्रो ने हैरान होते हुए पूछा।

"इसलिये कि ज़रूरत होने पर इसे झटपट कन्धे से उतार फेंका जाये और हाथ में तलवार ली जा सके।"

"असली छापेमारों की पोशाक है," छापेमार फ़िडेल कास्त्रो ने सहमति प्रकट की।

दूसरे देशों के साथ दाग़िस्तान की तुलना करने में कोई तुक नहीं है। वह जैसा है, वैसा ही अच्छा है। उसकी छत से पानी नहीं चूता है, उसकी दीवारें टेढ़ी-मेढ़ी नहीं हैं, दरवाज़े चरमर नहीं करते हैं, खिड़कियों से तेज़ हवा नहीं आती है। पहाड़ों में जगह तंग है, मगर दिल बड़े हैं।

"तुम्हारा कहना है कि मेरी धरती छोटी और तुम्हारी बड़ी है?" आंडी गांव के एक वासी ने किसी आदमी से चुनौती के अन्दाज़ में कहा। "तो आओ, इस चीज़ का मुक़ाबला करें कि

हम किसकी धरती का जल्दी से पैदल चक्कर लगाते हैं, तुम मेरी धरती का और मैं तुम्हारी का? मैं भी देखूंगा कि कैसे तुम हमारी पहाड़ी चोटियों पर चढ़ोगे, चौपायों की तरह हाथों-पैरों के बल कैसे चट्टानों पर ऊपर जाओगे, हमारे खड्डों में कैसे रेंगोगे, हमारी खोहों-खाइयों में कैसे कलाबज़ियां करोगे!"

मैं दाग़िस्तान की सबसे ऊंची पहाड़ी चोटी पर चढ़ जाता हूं और वहां से सभी ओर नज़र दौड़ाता हूं। दूर-दूर तक रास्ते दिखाई देते हैं, दूर-दूर तक रोशनियां झिलमिलाती नज़र आती हैं और अधिक दूरी पर कहीं घण्टियां बजती सुनायी देती हैं, धरती नीले-नीले धुएं की चादर में लिपटी हुई है। अपने पैरों के नीचे अपनी मातृभूमि को अनुभव करते हुए मेरे लिये दुनिया पर नज़र दौड़ाना अच्छा है।

आदमी जब इस दुनिया में जन्म लेता है तो वह अपनी मातृभूमि चुनता नहीं—जो भी मिल जाती है, सो मिल जाती है। मुझसे भी किसी ने यह नहीं पूछा कि मैं दाग़िस्तानी बनना चाहता हूं या नहीं। बहुत सम्भव है कि अगर मैं दुनिया के किसी दूसरे भाग में जन्म लेता, मेरे दूसरे ही माता-पिता होते तो मेरे लिये उस धरती से ज़्यादा प्यारी और कोई धरती न होती, जहां मैं पैदा हुआ होता। मुझसे इसके बारे में पूछा नहीं गया। लेकिन अगर अब पूछा जाता है तो मैं क्या उत्तर दूं?

दूरी पर मुझे पन्दूरा बजता सुनायी दे रहा है। धुन जानी-पहचानी है, शब्द भी जाने-पहचाने हैं।

नद-नाले तो सदा तड़पते, सागर से मिल जायें
नद-नालों के बिना चैन पर, सागर भी कब पायें?
दो हाथों में दिल को ले लें, ऐसा तो है मुमकिन
किन्तु समा लें दिल में दुनिया, यह तो है नामुमकिन।
और देश दुनिया के अच्छे, सभी देश हैं सुन्दर
प्यारा दाग़िस्तान मुझे है, वह ही अंकित दिल पर।

पन्दूरा बजाकर गानेवाला नहीं, बल्कि अपने मुंह से खुद दाग़िस्तान यह कहता है—

मुझे देखकर जो भी नाक चढ़ाये
अच्छा है, वह वापस घर जाये।

हमारे यहां एक पुरानी परम्परा है – जाड़े की लम्बी रातों में नौजवान लोग किसी बड़े घर में जमा होते हैं और तरह-तरह के खेल खेलते हैं। मिसाल के तौर पर किसी लड़के को कुर्सी पर बिठा दिया जाता है। उसके गिर्द एक लड़की चक्कर काटती हुई कुछ गाती है। लड़के को भी गाने में ही उसके सवालों का जवाब देना होता है। इसके बाद लड़की को कुर्सी पर बिठा दिया जाता है और लड़का उसके गिर्द चक्कर काटता हुआ गाता है। ये गाने पूरी तरह से रूसी भाषा में प्रचलित चतुष्पदियों जैसे तो नहीं होते, लेकिन उनमें कुछ समानता ज़रूर होती है। इस तरह जवान लोगों के बीच एक प्रकार का वार्तालाप होने लगता है। तीखे-चुभते शब्द के जवाब में और भी अधिक तीखा-चुभता शब्द कहा जाना चाहिये, नपे-तुले सवाल का नपा-तुला जवाब होना चाहिये। इस प्रतियोगिता में जो भी जीत जाता है, उसे सींग से बनाया गया जाम शराब से भरकर दिया जाता है।

इस तरह के खेल हमारे घर की पहली मंज़िल पर भी खेले जाते थे। मैं तब छोटा था, खेलों में हिस्सा नहीं लेता था, इस बैंतबाज़ी को सिर्फ़ सुना करता था। मुझे याद है कि चूल्हे के क़रीब फेनिल सुरा और घर में बनायी गयी तली हुई सासेजें रखी रहती थीं। कमरे के बीचोंबीच तीन टांगोंवाली कुर्सी रख दी जाती थी। लड़के और लड़कियां बारी-बारी से इस कुर्सी पर बैठते रहते थे। गानों के वार्तालापों में उनके बीच तरह-तरह की बातें होती रहती थीं, किन्तु वार्तालाप का अन्तिम भाग दाग़िस्तान को समर्पित होता था। ऐसे प्रश्नों का कमरे में उपस्थित सभी लोग मिलकर जवाब देते थे।

"तुम कहां हो, दाग़िस्तान?"
"ऊंची चट्टान पर, कोइसू नदी के तट पर।"
"तुम क्या कर रहे हो, दाग़िस्तान?"

"मूंछों पर ताव दे रहा हूं।"
"तुम कहां हो दाग़िस्तान?"
"घाटी में मुझको ढूंढो।"
"तुम क्या कर रहे हो, दाग़िस्तान?"
"जौ की बालों का पूला बनकर खड़ा हूं।"
"तुम कौन हो, दाग़िस्तान?"
"मैं—खंजर पर चढ़ाया गया गोश्त हूं।"
"तुम कौन हो, दाग़िस्तान?"
"खंजर, जो अपने फल पर गोश्त को चढ़ाये है।"
"तुम कौन हो, दाग़िस्तान?"
"नदी से पानी पीनेवाला हिरन।"
"तुम कौन हो, दाग़िस्तान?"
"हिरन को पानी पिलानेवाली नदी।"
"तुम कैसे हो, दाग़िस्तान?"
"मैं छोटा-सा हूं, मुट्ठी में समा सकता हूं।"
"तुम किधर चल दिये, दाग़िस्तान?"
"अपने लिये कुछ बड़ा ढूंढ़ने को।"

तो युवक-युवतियां एक-दूसरे को जवाब देते हुए ऐसे गाते थे। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि मेरी सारी किताबों में इसी तरह के सवाल-जवाब हैं। सिर्फ़ कुर्सी पर बैठी हुई वह लड़की नहीं है जिसके गिर्द मैं चक्कर काटता रहता। खुद ही सवाल करता हूं, खुद ही जवाब देता हूं। अगर कोई बढ़िया जवाब सूझ जाता है तो कोई भी मुझे शराब से भरा हुआ सींग पेश नहीं करता है।

"तुम कहां हो, दाग़िस्तान?"
"वहां, जहां मेरे सभी पहाड़ी लोग हैं।"
"तुम्हारे पहाड़ी लोग कहां हैं?"
"ओह, अब वे कहां नहीं हैं!"
"दुनिया—बहुत बड़ी तश्तरी है और तुम छोटा-सा चम्मच। क्या इतनी बड़ी तश्तरी के लिये वह बहुत ही छोटा नहीं है?"

मेरी अम्मां कहा करती थीं कि छोटा मुंह भी बड़ा शब्द कह सकता है।

मेरे पिता जी कहा करते थे कि छोटा-सा पेड़ भी बड़े बाग़ की शोभा बढ़ाता है।

शामील भी कहा करता था कि छोटी-सी गोली बड़े जहाज़ में छेद कर देती है। अपनी कविताओं में तुमने तो ख़ुद ही यह कहा है कि छोटे से दिल में विराट संसार और बहुत बड़ा प्यार समा जाता है।

"जाम उठाते हुए तुम हमेशा यह क्यों कहते हो—'नेकी के लिये?!'"

"क्योंकि ख़ुद नेकी की तलाश में हूं।"

"तुम पत्थरों और चट्टानों पर क्यों घर बनाते हो?"

"इसलिये कि नर्म धरती पर तरस आता है। वहां मैं थोड़ा-सा अनाज उगाता हूं। मैं तो समतल छतों पर भी अनाज उगाता हूं। चट्टानों पर मिट्टी ले जाता हूं और वहां अपना अनाज उगाता हूं। ऐसा ही है मेरा अनाज।"

दाग़िस्तान के तीन ख़ज़ाने

हमारे पहाड़ी लोग—चिर पथिक हैं। उनमें से कुछ धन-दौलत के लिये यात्रा पर जाते हैं, दूसरे नाम कमाने के लिये और तीसरे सचाई की खोज में।

और लीजिये, वे, जो धन-दौलत कमाने के लिये गये थे, उसे प्राप्त करके वापस आ गये और अब अपनी यात्रा के फलों से आनन्दित हो रहे हैं।

और ये रहे वे, जो नाम कमाने के लिये गये थे, उन्होंने मशहूरी हासिल कर ली और अब यह समझते हुए ज़िन्दगी बिता रहे हैं कि इसकी दो कौड़ी भी क़ीमत नहीं और व्यर्थ ही इसके लिये इतनी दौड़-धूप की।

किन्तु जो सचाई की खोज में निकले थे, उनका रास्ता सबसे लम्बा और अन्तहीन रहा। सचाई की खोज करनेवाले ने अपने भाग्य को शाश्वत मार्ग को समर्पित कर दिया।

कोई पहाड़ी आदमी जब कहीं जाता है तो वह अपने गधे को अवश्य ही अपने साथ ले जाता है। इस दयालु जानवर की पीठ पर हमेशा तीन चीजें लदी दिखाई देती हैं—किसी चीज़ से भरी हुई बड़ी बोरी, उसके क़रीब ही खाल का बना शराब का छोटा-सा थैला और उसके पास ही गगरी।

सैकड़ों साल से पहाड़ी आदमी यात्रा कर रहा है, एक गांव से दूसरे गांव और एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाता है। उसके आगे-आगे अनिवार्य रूप से उसका गधा चलता है और गधे की पीठ पर बोरी, खाल का बना शराब का छोटा-सा थैला और गगरी होती है।

एक समृद्ध प्रदेश में पहाड़ी आदमी के गधे से कहीं दूर हट जाने पर अच्छे खाते-पीते निकम्मे लोगों ने बेचारे जानवर को तंग करना शुरू कर दिया। वह उसके बदन पर नुकीले डंडे और कांटे चुभोने लगे तथा उसे दुलत्ती चलाने को मजबूर करने लगे। इन बेहूदा लोगों को ऐसा प्रतीत हुआ कि गधा उनके द्वारा चुभोये जानेवाले इन कांटों के कारण उछलता-कूदता है।

पहाड़ी आदमी ने देखा कि उसके वफ़ादार दोस्त यानी गधे की खिल्ली उड़ायी जा रही है और उसने खंजर निकाल लिया।

"पहाड़ी आदमी को चिढ़ाने के बजाय तुम किसी भालू को चिढ़ाते तो तुम्हारे लिये यह ज़्यादा अच्छा होता," उसने कहा।

लेकिन ये जवान काहिल लोग डर गये, उन्होंने माफ़ी मांगी, तरह-तरह के मीठे शब्द कहे और इस प्रकार पहाड़ी आदमी को खंजर म्यान में रखने को राजी कर लिया। जब शान्तिपूर्ण बातचीत शुरू हुई तो जवान लोगों ने पूछा—

"तुम्हारे गधे पर यह क्या बंधा हुआ है? तुम इसे हमें बेच दो।"

"तुम लोगों के पास इसे ख़रीदने के लिये न तो सोना और न चांदी ही काफ़ी होगी।"

"तुम अपनी क़ीमत बताओ और फिर देखा जायेगा।"

"इसकी कोई क़ीमत नहीं हो सकती।"

"तुम्हारी बोरियों में ऐसा क्या है जिसकी कोई क़ीमत ही नहीं हो सकती?"

"मेरा वतन, मेरा दाग़िस्तान।"

"गधे की पीठ पर वतन लदा हुआ है!" जवान लोग ठठाकर हंस पड़े। "तो ज़रा दिखाओ तो अपना वतन!"

पहाड़ी आदमी ने बोरी खोली और लोगों को उसमें आम मिट्टी दिखाई दी।

लेकिन यह आम मिट्टी नहीं थी। उसमें तीन-चौथाई कंकड़-पत्थर थे।

"बस, यही है इसमें?! यही तुम्हारा ख़ज़ाना है?"

"हां, यह मेरे पहाड़ों की मिट्टी है। यह मेरे पिता जी की पहली प्रार्थना है, मेरी मां का पहला आंसू है, मेरी पहली क़सम है, मेरे दादा द्वारा छोड़ी गयी अन्तिम चीज़ है, वह आखिरी चीज़ है जो मैं अपने पोते के लिये छोड़ दूंगा।"

"और यह दूसरी क्या चीज़ है?"

"पहले तो मुझे अपनी बोरी बांध लेने दो।"

बोरी बांधकर और उसे गधे की पीठ पर टिकाकर पहाड़ी आदमी ने गगरी का ढक्कन उतारा। सभी लोगों ने देखा कि उसमें मामूली पानी है। इतना ही नहीं, यह पानी तो कुछ-कुछ नमकीन भी था।

"तुम ऐसा पानी अपने साथ लिये घूमते हो जिसे पीना भी सम्भव नहीं!"

"यह कास्पी सागर का पानी है। कास्पी सागर में एक दर्पण की तरह दाग़िस्तान प्रतिबिम्बित होता है।"

"और खाल के इस थैले में क्या है?"

"दाग़िस्तान के तीन हिस्से हैं: पहला – धरती, दूसरा – सागर

और तीसरा – बाक़ी सब कुछ।"

"मतलब यह कि खाल के इस थैले में बाक़ी सब कुछ है?"

"हां, सब कुछ है।"

"किसलिये तुम यह बोझ अपने साथ लिये फिरते हो?"

"इसलिये कि मेरी मातृभूमि, मेरा वतन हमेशा मेरे साथ रहे। अगर कहीं रास्ते में ही मुझे मौत आ जाये तो मेरी क़ब्र पर यह मिट्टी डाल दी जाये और क़ब्र के ऊपर लगाये जानेवाले पत्थर को सागर के पानी से धो दिया जाये।"

पहाड़ी आदमी ने अपने वतन की चुटकी भर मिट्टी ली, उसे उंगलियों से मला और फिर उंगलियों को सागर के पानी से धो दिया।

"किसलिये तुमने ऐसा किया है?"

"इसलिये कि जिन हाथों का निकम्मे और काहिल लोगों के हाथों से स्पर्श हुआ हो, उन्हें इसी तरह से धोना चाहिये।"

पहाड़ी आदमी आगे चल दिया। उसका सफ़र अभी भी जारी है।

इस तरह दाग़िस्तान के तीन खज़ाने हैं–पर्वत, सागर और बाक़ी सब कुछ।

पहाड़ी लोगों के तीन ही गीत हैं। प्रार्थना करनेवालों की तीन ही प्रार्थनाएं हैं। पथिक के तीन ही उद्देश्य हैं–धन-दौलत, मशहूरी और सचाई।

बचपन में अम्मां मुझसे कहा करती थीं–दाग़िस्तान–यह एक पक्षी है और उसके पंखों में तीन बहुमूल्य रोयें हैं।

पिता जी कहा करते थे–तीन कारीगरों ने तीन मूल्यवान वस्तुओं से हमारा दाग़िस्तान बनाया है।

किन्तु वास्तव में तो जिन चीज़ों और पदार्थों से दाग़िस्तान की रचना हुई है, उनकी संख्या कहीं अधिक है। एक कटु अनुभव के आधार पर मुझे इसका विश्वास हुआ।

कोई पच्चीस साल पहले मुझे दाग़िस्तान के बारे में एक पटकथा लिखने को कहा गया और मैंने उसे लिखा। उसपर

विचार-विमर्श होने लगा। उस वक़्त बहुत-से लोगों ने अपने विचार प्रकट किये।

कुछ ने कहा कि फूलों की चर्चा नहीं की गयी है, दूसरों ने आपत्ति की कि मधुमक्खियों का उल्लेख नहीं हुआ, कुछ अन्य ने मत प्रकट किया कि पेड़ों का ज़िक्र नहीं है। हर वक्ता ने किसी न किसी चीज़ की कमी का ज़िक्र किया। यह कहा गया कि अतीत पर कम रोशनी डाली गयी है तो यह भी कहा गया कि वर्तमान पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला गया। आख़िर बात यहां आकर ख़त्म हुई कि पटकथा में गधे तथा गधी को जगह नहीं दी गयी और इनके बिना दाग़िस्तान की कल्पना ही कैसे की जा सकती है।

अगर फ़िल्म में वह सब कुछ दिखाया जाता जिसकी उस वक़्त चर्चा की गयी थी तो फ़िल्म की शूटिंग अब तक जारी रही होती।

फिर भी दाग़िस्तान के तीन ही भाग हैं—पर्वत (धरती), सागर (कास्पी) और अन्य सभी कुछ।

हां, धरती का मतलब है—पर्वत, खड्ड, पहाड़ी पगडंडियां और चट्टानें। फिर भी यह हमारी मातृभूमि है, हमारे पूर्वजों के ख़ून-पसीने से सींची हुई। यह कहना कठिन है कि यहां पसीना ज़्यादा बहा है या ख़ून। लम्बे युद्ध, छोटी-छोटी लड़ाइयां-मुठभेड़ें और ख़ून का ख़ून से बदला लेने की प्रथा... पहाड़ी लोगों की बग़ल में केवल सुन्दरता के लिये ही सदियों तक ख़ंजर नहीं लटकता रहा है।

एक लोक-गीत में ऐसा कहा गया है—

अन्न जहां पर तीन किलो पैदा होता
दसियों वीरों का उस भू पर ख़ून बहा,
पन्द्रह किलो उगाया जाये अन्न जहां
वहां सैकड़ों ही वीरों का अन्त हुआ।

मेरे पिता जी ने हमारी धरती के बारे में यह लिखा था—

बहुत बड़ी संख्या में मुर्दे दफ़न यहां
मरे हुओं से मारे गये कहीं ज्यादा।

भूगोल की पाठ्यपुस्तक में सूचना देनेवाला यह आंकड़ा छपा हुआ है कि हमारी धरती का एक-तिहाई भाग बंजर चट्टानों का है।

मैंने भी इसके बारे में यह लिखा है—

धूमिल-धुंधली वहां घाटियां
पेड़ सींग से फलों बिना,
ऊंट पीठ से ऊंचे पर्वत
झरझर झरने बहें जहां,
मानो शेर दहाड़ रहे हों
गरजें यों पर्वत-नदियां,
जल-प्रपात मानो अयाल-से
विहग-नयन-से स्रोत वहां,
खड़ी हुई चट्टानों से ज्यों
पथ निकले पाषाणों से
और गीत गूंजे टीले से
छू ले दिल इन्सानों के।

सुबह को रेडियो पर मौसम का हाल सुनते हुए यह पता चलता है कि खूंज़ह में बर्फ़ गिर रही है, आख़्ता में बारिश हो रही है, देर्बेन्त में ख़ूबानियों के पेड़ों पर बौर आ रहा है और कुमुख़ में सख़्त गर्मी है।

छोटे-से दाग़िस्तान में एक ही वक़्त में जाड़ा, पतझर, वसन्त और गर्मी होती है। पथरीले, शान्त, गड़गड़ाते और ऊंचे-ऊंचे पर्वत माल के इन मौसमों को एक-दूसरे से अलग करते हैं।

अवार भाषा के "मेएर" शब्द के दो अर्थ हैं—पर्वत और नाक।

मेरे पिता जी ने इन दोनों अर्थों के बीच इस तरह मेल बिठाया—पर्वत विश्व की हर घटना और मौसम के हर परिवर्तन की गंध लेते हैं।

मैदान यह देखने के लिये अपने पिछले पैरों पर खड़े हो गये

कि कौन उनकी ओर आ रहा है। ऐसे पर्वतों का जन्म हुआ। हाजी-मुरात ऐसा कहा करता था।

अम्मां मेरे पालने के ऊपर फुसफुसाकर कहा करती थीं कि मैं पर्वत की तरह बड़ा हो जाऊं।

कैसे बुद्धू पर्वत-नदिया के पानी
नमी बिना चट्टानें यहां चटकती हैं,
क्यों तुम जल्दी-जल्दी उधर बहे जाते
लहरें बिना तुम्हारे जहां मचलती हैं?
बड़ी मुसीबत हो तुम मेरे दिल पागल
जो प्यारे हैं, उनको प्यार नहीं करते
खिंचे चले जाते हो तुम उस ओर सदा
जहां न नयन तुम्हारी राह कभी तकते।

मेरी अम्मां जब कभी बल्हार जाति के लोगों को घड़े, मिट्टी के बर्तन और रकाबियां बेचते हुए देखतीं तो हमेशा यह कहतीं–"इतनी मिट्टी बरबाद करते हुए क्या इन्हें अफ़सोस नहीं हुआ? मिट्टी बेचनेवाले तो मुझे फूटी आंखों नहीं सुहाते!"

इसमें तो ज़रा भी शक नहीं कि बल्हार लोग अपने फ़न के बड़े माहिर हैं। किन्तु पहाड़ों में, जहां इतनी कम मिट्टी है, हमेशा यह माना जाता रहा है कि बल्हारों के घड़ों के मुक़ाबले में मिट्टी ज़्यादा क़ीमती है।

पुराने ज़माने की बात है कि एक हरकारा सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ गांव में आया। उस वक़्त सभी मर्द मसजिद में नमाज़ पढ़ रहे थे। घुड़सवार, जो चरवाहा था, जूते पहने हुए ही मसजिद में घुस गया।

"अरे बुद्धू, ओ काफ़िर," मुल्ला ने चिल्लाकर कहा, "क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि मसजिद में दाखिल होने से पहले जूते उतारने चाहिये?"

"मेरे जूतों पर लगी मिट्टी मेरी प्यारी घाटी की धूल है। वह इन क़ालीनों से ज़्यादा क़ीमती है, क्योंकि इस मिट्टी पर दुश्मन टूट पड़ा है।"

पहाड़ी लोग भागकर मसजिद से बाहर आये और अपने घोड़ों को सरपट दौड़ाने लगे।

"दूर से आनेवाला मेहमान ज़्यादा प्यारा होता है," अबुतालिब को ऐसा कहना अच्छा लगता है। दूर-दराज़ से आनेवाला मेहमान बड़ी ख़ुशी, बड़ा प्यार या बड़ा दुख-ग़म लेकर आता है। कोई उदासीन व्यक्ति दूर से नहीं आयेगा।

ऐसी परम्परा भी है—अगर मेहमान को तुम्हारे घर में कोई चीज़ पसन्द आ जाती है और वह उसकी प्रशंसा करता है तो बेशक तुम्हें आंसू बहाने पड़ें, लेकिन तुम वह चीज़ उसे भेंट कर दो। कहते हैं कि एक नौजवान ने अपनी मंगेतर तक, जिसपर गांव के चश्मे के क़रीब उसके दोस्त की नज़र टिक गयी थी, उसे भेंट कर दी। किन्तु यही मानना चाहिये कि वह नौजवान दो सौ प्रतिशत, उच्चतर पहाड़ी था।

बेहया क़िस्म का मेहमान हमेशा ही हमारे पुराने रीति-रिवाजों से फ़ायदा उठा सकता है। लेकिन पहाड़ी लोग भी अब ज़्यादा समझदार हो गये हैं—सुन्दर चीज़ों को मेहमानों की नज़रों से दूर हटा देते हैं।

तो बहुत पहले एक बार ऐसा हुआ कि कुमुख़ से एक मेहमान आया और सभी चीज़ों की तारीफ़ करने लगा। वे सारी चीज़ें ही, जिन्हें उसने ललचायी नज़रों से देखा, उसे भेंट कर दी गयीं। किन्तु विदा करने के पहले उसे अपने बूटों पर से मिट्टी झाड़ने को मजबूर किया गया।

"मिट्टी भेंट नहीं की जाती," पहाड़ी लोगों ने उससे यह भी कह दिया, "मिट्टी की तो ख़ुद हमारे यहां भी कमी है। लोग बूटों पर सारी मिट्टी ले जायेंगे तो हम अनाज कहां बोयेंगे।"

एक विदेशी ने हमारी धरती को पथरीले बोरे की संज्ञा दी।

हां, हमारी धरती में कोमलता की कमी है। पहाड़ों पर पेड़ भी अक्सर नज़र नहीं आते। हमारे पहाड़ मुरीदों के मुंडे सिरों, हाथियों के सपाट, चिकने कन्धों जैसे हैं। बुवाई के लिये ज़मीन

थोड़ी है, उससे हासिल होनेवाली फ़सल भी बहुत कम होती है।

कभी हमारे यहां कहा जाता था – "इस बेचारे की फ़सल तो पड़ोसी के नथुनों में ठोंसने के लिये भी काफ़ी नहीं होगी।"

हां, हमारे पहाड़ी लोगों की नाकें भी ख़ूब बड़ी-बड़ी, बहुत ग़ज़ब की हैं। दुश्मन खर्राटों की आवाज़ सुनकर ही बहुत दूर से यह जान जाते थे कि पहाड़ी लोग सो रहे हैं और इसी निशानी से कभी-कभी अचानक हमला कर देते थे।

किसी के चेहरे पर चेचक के ढेर सारे निशान देखकर अबुतालिब ने कहा – मेरे पिता जी के खेत में उगे अनाज के सारे दाने इस बेचारे के चेहरे पर जा चिपके ताकि उसपर अपने निशान छोड़ दें।

पहाड़ी लोगों के पास ज़मीन कम और कम उपजाऊ भी है। इसके बारे में एक क़िस्सा है जिसे शायद कई बार सुना गया हो, क्योंकि वह बहुत अरसे से एक भाषा से दूसरी भाषा में और एक सपाट छत से दूसरी सपाट छत तक सुनाया जाता रहा है। बेशक वे लोग मुझे कोसें जो इसे पहले सुन चुके हैं, फिर भी मैं उसे सुनाये बिना नहीं रह सकता।

किसी पहाड़िये ने अपना खेत जोतने का इरादा बनाया। उसका खेत गांव से दूर था। वह शाम को ही वहां चला गया ताकि तड़के काम में जुट जाये। यह पहाड़ी आदमी वहां पहुंचा, उसने अपना लबादा वहां बिछाया और सो गया। वह सुबह ही जाग गया, ताकि खेत जोतना शुरू करे, लेकिन खेत तो कहीं था ही नहीं। उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई, मगर खेत कहीं दिखाई नहीं दिया। गुनाहों की सज़ा देने के लिये क्या अल्लाह ने उसे छीन लिया या ईमानदार आदमी की खिल्ली उड़ाने के लिये शैतान ने उसे कहीं छिपा दिया।

कोई चारा नहीं था। पहाड़ी आदमी मन ही मन दुखी होता रहा और आखिर उसने घर लौटने का फ़ैसला किया। उसने ज़मीन पर से लबादा उठाया और – हे भगवान! – यह रहा लबादे के नीचे उसका खेत!

पहाड़ी लोगों के लिये ऊंची पहाड़ी जमीन बहुत मूल्यवान है, यद्यपि वहां उनकी जिन्दगी खासी मुश्किल है। राहगीर पर्वतों की ढालों और कभी-कभी तो चट्टानों पर खेतों के इन टुकड़ों, पत्थरों के बीच उगाये गये बाग-बगीचों और खड्ड के ऊपर पगडंडी पर जाती हुई भेड़ों को देखकर हैरान रह जाते हैं, जो रज्जुनटों की कुशलता-फुर्ती से खड़े गड्ढों-खड्डों को लांघती हैं।

यह सब देखने में तो असाधारण रूप से सुन्दर है, इसलिये बनाया गया है कि कविताओं में इसका गुणगान किया जाये, किन्तु यहां काम करना और जीना कठिन है।

इसके बावजूद अगर किसी पहाड़ी आदमी को मैदानों में जाकर बसने को कहा जाये तो वह ऐसे प्रस्ताव को अपना अपमान मानेगा। लोग बताते हैं कि एक पहाड़ी आदमी का बेटा शहर से आया और अपने बूढ़े बाप को शहर चलने के लिये मनाने लगा।

"ऐसे शब्दों से मेरा दिल दुखाने के बजाय यही बेहतर होता कि तुम खंजर मारकर मेरा पेट चीर डालते," बूढ़े पहाड़िये ने जवाब दिया।

यह समस्या विद्यमान है और काफ़ी जटिल है। बहुत साल पहले ही पहाड़ी गांवों में बहुत प्रभावपूर्ण यह नारा लगाया गया था—"हम पथरीले बोरों से निकलकर फूलोंवाले मैदानों में जा बसेंगे।"

"पहाड़ों में धुएंवाले चूल्हे के क़रीब मैदान की बढ़िया भट्ठी से कहीं ज़्यादा मज़ा है।" "जिसे पेट की चिन्ता है, वह बेशक वहां चला जाये और जिसे दिल की चिन्ता है, वह यहां रहेगा।" "हमने किसी की हत्या नहीं की, किसी के घर नहीं जलाये तो फिर किसलिये हमें जलावतन किया जा रहा है।" "मशीनें तो यहां भी काम कर सकती हैं।" "खम्भों पर बत्तियां तो यहां भी लटक सकती हैं।" "तार तो यहां से भी चला जायेगा।" "मच्छरों और मक्खियों का पेट भरने के लिये हमने जन्म नहीं लिया है।" "पेट्रोल की गन्ध से उपले का धुआं कहीं बेहतर

है।" "पहाड़ी फूल ज़्यादा चटकीले हैं।" "नल के पानी से चश्मे का पानी कहीं ज़्यादा मीठा है।" "हम यहां से कहीं नहीं जायेंगे!"

"हम पथरीले बोरों से निकलकर फूलोंवाले मैदानों में जा बसेंगे", इस नारे का हर पहाड़ी आदमी ने अपने ढंग से ऐसे जवाब दिया।

पहाड़ी लोग इसी सिलसिले में सलाह लेने के लिये मेरे पिता जी के पास भी आये कि वे कहीं दूसरी जगह जा बसें या यहीं रहें। कोई निश्चित जवाब देते हुए पिता जी ने झिझक महसूस की।

"अगर यहीं रहने की सलाह दे दूंगा और बाद में इन्हें पता चलेगा कि मैदानों में ज़िन्दगी बेहतर है तो मुझे भला-बुरा कहेंगे। अगर यह सलाह देता हूं कि नीचे जा बसें और वहां ज़िन्दगी किसी काम की नहीं होगी तो भी मुझे कोसेंगे।"

"ख़ुद ही तय कीजिये," मेरे पिता हम्ज़ात त्सादासा ने तब उन्हें जवाब दिया।

वक़्त बदलता है और उसके साथ ज़िन्दगी भी। सिर की टोपियां ही नहीं बदलीं, (फ़र की टोपियों की जगह छज्जेदार हल्की टोपियां) बल्कि टोपियों के नीचे जवान लोगों के दिमाग़ों में विचार भी बदल गये हैं। तरह-तरह की जातियों, क़बीलों और जनगण का आपस में मेल हो रहा है। हमारे बेटों की क़ब्रें पिताओं के गांवों से अधिकाधिक दूर होती जा रही हैं... पत्थर, सिलें, बड़े-बड़े पत्थर, छोटे-छोटे कंकड़, गोल पत्थर, नुकीले पत्थर। इन पत्थरों पर कुछ उगाने के लिये पहाड़ के दामन से टोकरियां भर-भरकर मिट्टी ऊपर ढोयी जाती है। पतझर और जाड़े में घास से ढकी ढालों को जलाया जाता था ताकि ज़्यादा अच्छी घास उगे। पहाड़ों में इन अनेक ज्वालाओं की मुझे याद है। पहली हल-रेखा के पर्व की भी मुझे याद है। वसन्त। तब बूढ़े एक-दूसरे पर मिट्टी के गोले फेंकते थे।

काम-काजी आदमी के बारे में हमारे यहां कहा जाता

4 1165

है–"बहुत-से पर्वत और चोटियां लांघी हैं उसने।"

निकम्मे आदमी के बारे में कहा जाता है–"उसने तो पत्थर पर एक बार भी कुदाल नहीं चलायी।"

"आपके खेत में फ़सलों की इतनी अधिक बालें हों कि उनके लिये जगह काफ़ी न रहे," पहाड़ी लोगों की यह सबसे अच्छी शुभकामना होती है।

"तुम्हारी ज़मीन सूख जाये, बंजर हो जाये," सबसे बड़ा शाप होता है।

"इस धरती की क़सम," सबसे पक्की क़सम यही होती है।

किसी पराये खेत में आ जानेवाले गधे की हत्या की जा सकती थी और इसके लिये कोई सज़ा नहीं होती थी। एक पहाड़ी आदमी चिल्लाकर कहता रहा था–"अगर हाजी-मुरात का गधा भी मेरी धरती पर आ जायेगा–तो उसकी भी खैर नहीं!"

हर गांव के अपने नियम थे। किन्तु सभी जगहों पर खेत या धरती को हानि पहुंचाने के लिये सबसे बड़ा जुर्माना वसूल किया जाता था।

सन् १८५९ के अगस्त महीने में गुनीब पर्वत पर इमाम शामील अपने जंगी घोड़े से नीचे उतरा और उसने एक महान बन्दी के रूप में खुद को प्रिंस बर्यातीन्स्की* के सामने पेश किया। बायें पांव को थोड़ा आगे बढ़ाकर और उसे एक पत्थर पर टिकाकर तथा दायें हाथ को तलवार की मूठ पर रखकर और इर्द-गिर्द के पहाड़ों पर धुंधली-सी नज़र डालकर शामील ने कहा–

"हुज़ूर! इन पहाड़ों और इन पहाड़ी लोगों की इज़्ज़त बचाते हुए मैं पच्चीस साल तक लड़ता रहा। मेरे उन्नीस घाव टीसते हैं और वे कभी नहीं भरेंगे। अब मैं क़ैदी के तौर पर अपने को पेश करता हूं और अपनी धरती को आपके हवाले करता हूं।"

---

* बर्यातीन्स्की आ० अ० (१८१५–१८७९)–प्रिंस, रूसी जनरल-फ़ील्ड-मार्शल। १८५६-६२ के काकेशियाई युद्ध में रूसी सेनाओं का कमांडर। शामील को बन्दी बनाया।–सं०

"इसके लिये बहुत दुखी होने की क्या ज़रूरत है। ख़ूब है तुम्हारी यह धरती भी – सिर्फ़ चट्टानें और पत्थर ही तो हैं!"

"हुज़ूर, यह बतायें कि हमारी इस जंग में कौन ज्यादा सही था – हम, जो इस धरती को शानदार मानते हुए इसके लिये अपनी जानें क़ुर्बान करते रहे या आप लोग, जो इसे बुरी मानते हुए इसकी ख़ातिर मरते रहे?"

क़ैदी शामील को एक महीने तक का रास्ता तय करके पीटर्सबर्ग ले जाया गया।

पीटर्सबर्ग में सम्राट ने उससे पूछा –

"तुम्हें रास्ता कैसा लगा?"

"बड़ा मुल्क है। बहुत बड़ा मुल्क है।"

"इमाम, यह बताओ कि अगर तुम्हें यह पता चल जाता कि मेरा राज्य इतना बड़ा और इतना शक्तिशाली है तो क्या तुम इसके विरुद्ध इतनी देर तक लड़ते रहते या समझदारी दिखाते हुए ठीक वक़्त पर ही हथियार डाल देते?"

"लेकिन आप भी तो यह जानते हुए कि हमारा देश इतना छोटा और कमज़ोर है, इतनी देर तक हमारे ख़िलाफ़ लड़ते रहे!"*

मेरे पिता जी के पास शामील का एक पत्र, अधिक सही तौर पर उसका विदा-पत्र सुरक्षित रहा है। यह है वह पत्र –

"मेरे पहाड़ी लोगो! अपनी नंगी और वीरान चट्टानों को प्यार करो! वे बहुत कम दौलत लायी हैं तुम्हारे लिये, लेकिन इन चट्टानों के बिना तुम्हारी धरती तुम्हारी धरती जैसी नहीं होगी और धरती के बिना बेचारे पहाड़ी लोगों के लिये आज़ादी नहीं होगी। इन चट्टानों के लिये जूझो, इनकी रक्षा करो। यही

---

* काकेशियाई युद्ध (१८१७–१८६४) से अभिप्राय है। ज़ारशाही सरकार पहाड़ी दाग़िस्तान और उत्तरी-पश्चिमी काकेशिया के विरुद्ध यह युद्ध लड़ती रही। – सं०

कामना है कि तुम्हारी तलवारों की टंकार मेरी क़ब्र की नींद को मधुर बना दे।"

शामील ने पहाड़ी लोगों की तलवारों की टंकार और आवाज़ अनेक बार सुनी, यद्यपि पहाड़ी लोग अब एक अन्य ध्येय के लिये जूझते थे। दाग़िस्तानियों की मातृभूमि अब बड़ी हो गयी है। उनकी क़ब्रें उक्रइना, बेलोरूस, मास्को के उपान्त, हंगरी, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, कार्पेथिया तथा बाल्कान और बर्लिन के निकट तक बिखरी हुई हैं।

"एक गांव के लोग पहले किस चीज़ के लिये लड़ते-भिड़ते थे?"

"दो पहाड़ी लोगों के खेतों के बीच की बालिश्त भर ज़मीन, छोटी-सी ढाल और पत्थर के लिये।"

"दो पड़ोसी गांवों के लोग पहले किसलिये लड़ते-भिड़ते थे?"

"गांवों के खेतों के बीच बालिश्त भर ज़मीन के लिये।"

"दाग़िस्तान किसलिये दूसरे जनगण से लड़ता-जूझता था?"

"दाग़िस्तान की हदों पर बालिश्त भर ज़मीन के लिये।"

"बाद में दाग़िस्तान किस चीज़ के लिये लड़ता-भिड़ता रहा?"

"महान सोवियत देश की हदों पर बालिश्त भर ज़मीन के लिये।"

"दाग़िस्तान अब किस चीज़ के लिये जूझ रहा है?"

"सारी दुनिया में शान्ति के लिये।"

शामील के साथ उसके दो बेटे भी बन्दी बनाये गये थे। उनके भाग्य अलग-अलग रहे। छोटा बेटा, मुहम्मद-शफ़ी ज़ार का जनरल बन गया, जबकि बड़ा बेटा गाज़ी-मुहम्मद तुर्की चला गया।

एक बार तुर्की पोशाक पहने एक बुज़ुर्ग औरत मेरे पास आयी। जार्जियाई जाति की इस औरत ने जवानी के दिनों में ही एक तुर्क से शादी कर ली थी, चालीस साल तक इस्तम्बूल में रह चुकी थी। बाद में पति की मृत्यु होने और अकेली रह जाने पर वह जार्जिया लौट आई थी। तो वह मेरे पास आई। उसके

आने का कारण यह था – इस्तम्बूल में रहते हुए शामील के सबसे छोटे बेटे के वंशजों के साथ उसकी दोस्ती रही थी।

"कैसा हाल-चाल है उनका?" मैंने पूछा।

"बुरा हाल-चाल है।"

"किस कारण?"

"इस कारण कि उनका दाग़िस्तान नहीं है। काश! आपको मालूम होता कि कैसे वे वहां उदासी महसूस करते हैं! कभी-कभी सरकारी कर्मचारी यह धमकी देते हुए कि उनके पास जो ज़मीन है, वे उसे छीन लेंगे, उनका अपमान करते हैं। 'छीन लीजिये,' इमाम के वंशज जवाब देते हैं। 'दाग़िस्तान तो हमारे पास है नहीं, दूसरी ज़मीन हमें प्यारी नहीं।' यह मालूम होने पर कि मैं मातृभूमि लौट रही हूं," जार्जियाई महिला कहती गयी, "उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं दाग़िस्तान जाऊं, शामील के जन्म-गांव और उन पहाड़ों में भी जाऊं, जहां वह लड़ता रहा था और आपसे भी मिलूं। उन्होंने मुझे यह रूमाल दिया है कि आप इसमें दाग़िस्तान की थोड़ी-सी मिट्टी बांधकर उन्हें भेज दें।"

मैंने रूमाल खोला। उसपर अरबी भाषा में "शामील" कढ़ा हुआ था।

जार्जियाई महिला ने जो कुछ बताया, उसने मेरे मर्म को छू लिया। मैंने मिट्टी भेजने का वचन दिया। इस सम्बन्ध में मैंने अनेक बुज़ुर्गों से सलाह-मशविरा किया।

"विदेश में रहनेवाले लोगों को हमारी मिट्टी भेजने में कोई तुक है?"

"दूसरों को भेजने की तो जरूरत नहीं थी, किन्तु शामील के वंशजों को भेज दो," बुज़ुर्गों ने जवाब दिया।

एक बुज़ुर्ग ने शामील के गांव से मुट्ठी भर मिट्टी मुझे ला दी और हमने इस रूमाल में, जिसपर शामील का नाम कढ़ा हुआ था, उसे लपेट दिया। बुज़ुर्ग ने कहा –

"उन्हें हमारी मिट्टी भेज दो, किन्तु यह भी बता देना कि उसका प्रत्येक कण बहुत मूल्यवान है। उन्हें यह भी लिख देना कि

हमारी इस धरती पर अब जिन्दगी बदल गयी है, यहां अब नया वक़्त आ गया है। सभी कुछ के बारे में लिख देना ताकि उन्हें मालूम हो जाये।"

किन्तु मुझे लिखना नहीं पड़ा। जल्द ही मैं खुद तुर्की गया। मूल्यवान भेंट भी मैं अपने साथ ले गया।

मैंने शामील के वंशजों को ढूंढ़ा, लेकिन उनसे मेरी मुलाक़ात नहीं हुई। मुझे बताया गया कि इमाम शामील का परपोता शायद मक्का चला गया है। परपोतियां नजावत और नाजियात भी मुझसे मिलने नहीं आईं। मुझे बताया गया कि एक के सिर में दर्द है और दूसरी को दिल का दौरा पड़ गया है। किसे मैं अपने वतन की मिट्टी दूं? वहां अवार जाति के अन्य लोग भी थे, मगर वे अपनी इच्छा से दाग़िस्तान छोड़कर गये थे।

तब मैं समझ गया कि उनका शामील और मेरा शामील – अलग-अलग शामील हैं।

दूरस्थ तुर्की में मैं अपने प्यारे दाग़िस्तान की मुट्ठी भर मिट्टी हाथ में लिये था। इस थोड़ी-सी मिट्टी में मैं अपने गांवों – गुनीब, चिरकेई, आख़्ता, कुमुख, ख़ूंज़ह, त्सादा, त्सून्ता और चारोदा की झलक पाता हूं... यह सब मेरी धरती है। मैंने इसके बारे में बहुत कुछ लिखा है और लिखूंगा। इसे अब लबादे से नहीं ढका जा सकता, जैसा कि उस बदक़िस्मत पहाड़ी आदमी के साथ हुआ था, जिसके बारे में मज़ाक़िया क़िस्सा सुनाया जाता है।

दाग़िस्तान का दूसरा ख़ज़ाना – सागर है।

मास्को और गुनीब गांव के बीच टेलीफ़ोन पर इस तरह की बातचीत होती है।

"हेलो, हेलो, गुनीब? ओमार, तुम बोल रहे हो? तुम मेरी आवाज़ सुन रहे हो? दिन कैसा है, मूड कैसा है?"

"सुन रहा हूं। हमारे यहां सब कुछ ठीक-ठाक है। आज सुबह से सागर दिखाई दे रहा है! .."

या –

"हेलो, गुनीब? यह तुम बोल रही हो, फ़ातिमा? क्या हाल-चाल है, मूड कैसा है?"

"मूड तो ऐसा-वैसा ही है। धुंध है। सागर दिखाई नहीं दे रहा।"

"अब्बा जान, समुन्दर नज़र नहीं आ रहा," शामील के बेटे जमालुद्दीन ने कहा।

वह ज़ार का बन्धक था—ज़ार के फ़ौजी कालेज में अफ़सर के तौर पर शिक्षा पा रहा था तथा मातृभूमि लौटने पर गोरे ज़ार के विरुद्ध पिता और पहाड़ी लोगों के संघर्ष को बेकार मानता था।

"तुम समुन्दर को देख सकोगे, मेरे बेटे," शामील ने जवाब दिया। "लेकिन उसे मेरी आंखों से देखो।"

गुनीब पर्वत से सागर एक सौ पचास किलोमीटर दूर है। दिन कितना उजला, सागर कितना नीला और चमकता हुआ तथा नज़रें कितनी तेज़ होनी चाहिये, पर्वत कितना ऊंचा होना चाहिये कि सहज भाव से यह कहा जा सके— "सागर दिखाई दे रहा है।"

यहां तक कि उन गांवों में, जहां से सागर देखना सम्भव नहीं, जब यह पूछा जाता है कि मूड कैसा है, तो कभी-कभी यह जवाब मिलता है—बहुत बढ़िया मूड है मानो सागर आंखों के सामने हो।

कौन किसकी शोभा बढ़ाता है—कास्पी सागर दाग़िस्तान की या दाग़िस्तान कास्पी सागर की? कौन किसपर गर्व करता है—पहाड़ी लोग सागर पर या सागर पहाड़ी लोगों पर?

जब मैं सागर को देखता हूं तो सारे संसार को देखता हूं। जब सागर में उथल-पुथल होती है तो लगता है कि सारी दुनिया में बेचैनी है, तूफ़ानी मौसम है। जब वह शान्त होता है तो लगता है कि सभी जगह शान्ति छायी है।

मैं लड़का ही था कि सागर से मेरा नाता जुड़ गया था। मैं खड़ी और ढेढ़ी-मेढ़ी पहाड़ी पगडंडियों से नीचे उतरकर सागर

के पास पहुंचा था। उस वक़्त से मेरे घर की खिड़कियां सागर की ओर खुली हुई हैं। खुद दाग़िस्तान की खिड़कियां भी उधर ही देखती हैं।

मैं जब समुद्र-गर्जन नहीं सुनता हूं तो मुझे कठिनाई से नींद आती है।

"लेकिन तुम क्यों नहीं सोते हो, दाग़िस्तान?"

"सागर शोर नहीं मचा रहा है, नींद नहीं आती है।"

बहुत चटक रंग के बारे में हम कहते हैं—सागर की तरह। बहुत तेज़ शोर के बारे में कहते हैं—सागर की तरह। कूटू के ऊंचे-ऊंचे और लहराते खेतों के बारे में कहते हैं—सागर की तरह।

बुद्धिमत्ता और आत्मा की गहराई के बारे में कहते हैं—सागर की तरह।

निर्मल आकाश तक के बारे में भी हम यही कहते हैं—सागर की तरह।

जब हमारी गाय बहुत दूध देती थी तो अम्मां उसे "मेरा सागर" कहा करती थीं।

मुझे खट्टी क्रीम का मटका हाथों में लिये छज्जे में खड़ी अपनी अम्मां की याद आती है। वह अपने इर्द-गिर्द खेलते हम बच्चों को खिलाने के लिये उसमें से मक्खन निकाला करती थीं। उस मटके की गर्दन सागर की सीपियों की माला से सजी हुई थी।

"ताकि ज़्यादा मक्खन निकले," अम्मां हमें माला का महत्त्व समझाती थीं। इसके अलावा वह यह भी कहा करती थीं कि सीपियां बुरी नज़र से बचाती हैं।

दाग़िस्तान का पाषाणी वक्ष भी सीपियों की माला, तटवर्ती पत्थरों की माला, सागर-तरंगों की माला से सुसज्जित है।

दाग़िस्तान कास्पी सागर की लहरों के शोर का अभ्यस्त है, नीरवता-निस्तब्धता में उसे अच्छी तरह से नींद नहीं आती और अगर वह सागर से वंचित हो जाता तो उसे बिल्कुल ही नींद न आती।

हिम-सी श्वेत-श्वेत सागर की लहरो, मुझे बताओ
किस भाषा में बतियाती हो, मुझको यह समझाओ।

चट्टानों से टकराकर तुम शोर मचातीं ऐसे
गांव-पैंठ में कोलाहल होता रहता है जैसे।

वहां दर्जनों भाषाओं की ऐसी खिचड़ी पकती
अल्ला भी चाहे तो उसके बात न पल्ले पड़ती।

ज़रा न गर्जन होता ऐसा कभी-कभी दिन आये
लहरें धीमे बहें कि मानो घास कहीं लहराये।

कभी-कभी लेने लगते हो ऐसी तेज़ उसांसें
पुत्र-शोक में ज्यों मां सिसके, ले ले भारी सांसें।

वारिस मर जाने पर बूढ़ा बाप भरे ज्यों आहें
जल में जैसे घोड़ा डोले, लहरें जिसे बहायें।

छलछल करते कभी, कभी तुम, ऊंचा शोर मचाते
अपनी भाषा में तुम सागर, मन की बात बताते।

तेरे-मेरे दिल की गहराई में है कुछ बन्धन
और समझ सकता मैं तेरे सभी रूप-परिवर्तन।

क्या न कभी मेरे दिल में भी ख़ून उबलने लगता
टकरा कटु जीवन-लहरों से वह अपना सिर धुनता?

किन्तु बाद में धीरे-धीरे, शान्त तुम्हीं हो जाते
शक्तिहीन हो ढालू तट को, क्या न तुम्हीं सहलाते?

गहराई में राज़ न तेरे, सागर छिपे हुए क्या?
क्या न एक सा रूप, हमारे दोनों के सुख-दुख का?

किन्तु अलग है, ख़ास दर्द, जो मेरा, मैं बतलाऊं,
पीना चाहूं सागर, खारी, मगर नहीं पी पाऊं।

मास्को से मख़ाचकला जानेवाली गाड़ी वहां तड़के पहुंचती है। रास्ते में बीतनेवाली यह रात मेरे लिये सर्वाधिक बेचैनी की रात होती है। मैं आधी रात को उठकर अन्धेरे में लिपटी खिड़की से बाहर झांकता हूं। खिड़की के बाहर अभी स्तेपी-मैदान होता है। गाड़ी शोर मचाती होती है, गाड़ी के डिब्बे के बाहर बहुत ज़ोर से हवा सरसराती होती है। मैं दूसरी बार उठकर खिड़की से बाहर देखता हूं—फिर वही स्तेपी-मैदान। आख़िर तीसरी बार उठकर बाहर नज़र दौड़ाता हूं—सागर दिखाई देता है। इसका मतलब है कि यह मेरा दाग़िस्तान है।

शुक्रिया तुम्हारा, नीले सागर, विराट जल-विस्तार! तुम ही मुझे सबसे पहले यह सूचना देते हो कि मैं अपने घर पहुंच गया हूं।

मेरे पिता जी को यह कहना अच्छा लगता था—"जिसके यहां समुन्दर है, उसका घर मेहमानों का घर है।"

जवाब में अबुतालिब कहा करता था—"जिसके यहां समुन्दर है, उसका जीवन सुन्दर और समृद्ध है। पहाड़ ही समुन्दर से ज़्यादा ख़ूबसूरत हो सकते हैं, लेकिन हमारे यहां तो वे भी हैं।"

ये दो बुज़ुर्ग—मेरे पिता जी और अबुतालिब पहले से ही कुछ तय किये बिना जब कभी मिलते तो अक्सर सागर की ओर चले जाते। ये उस टीले पर चढ़ जाते, जहां से बन्दरगाह में आनेवाले सभी जहाज़ नज़र आते। मछलियों और नमक की गंध इन दोनों बुज़ुर्गों तक पहुंचती रहती। ये दोनों केवल सागर को अपनी बात कहने की सम्भावना देते हुए घण्टों तक यहां चुपचाप बैठे रहते।

सागर अपनी बात कहे, तुम साधे मौन रहो
अपनी ख़ुशियां और न अपने मन का दर्द कहो।
वह महान कवि दांते भी उस रात मूक था रहता
कहीं पास में जब उसके नीला सागर था बहता।
भीड़ लगी हो सागर-तट पर या सुनसान वहां हो
मुंह से शब्द न एक निकालो, सागर को गाने दो।

वह बातों के फ़न का माहिर, पुश्किन भी चुप रहता
जब-जब सागर अपने दिल की, अपने मन की कहता।

मेरे पिता जी कहा करते थे कि सागर को सुनते हुए उसकी बात समझना सीखो। सागर ने बहुत कुछ देखा है, वह बहुत कुछ जानता है।

–सागर मुझको यह बतलाओ, क्यों है तेरा जल खारी?
–क्योंकि मिले हैं इसमें अक्सर, लोगों की आंसूखारी!
–सागर मुझे बताओ, किसने तेरा रूप संवारा है?
–मूंगों और मोतियों ने ही मेरा रूप निखारा है!
–सागर मुझको यह बतलाओ, क्यों हो तुम इतने विह्वल?
–क्योंकि भंवर में डूब गये हैं कितने ही तो वीर प्रबल–
कुछ ने चाहा, सपना देखा, मीठा कर दें जल खारी
और दूसरों को मूंगों की खोज, चाह दिल में प्यारी!

पके बालोंवाले दो पहाड़ी बुजुर्ग, दो कवि, दो बूढ़े उक़ाबों की तरह टीले पर बैठे हैं। चुपचाप और निश्चल बैठकर सागर को सुन रहे हैं। सागर शोर मचा रहा है, जीवन के बारे में, जो उसके समान ही है, सोचने को विवश करता है और उसके खुले तथा भयानक विस्तार में बेशक किसी भी तरह के मौसम का सामना न करना पड़े, उसके एक तट से दूसरे तट तक तो जाना ही होगा। किन्तु सागर से भिन्न, जीवन में शान्त बन्दरगाह, शान्त घाट नहीं हैं। कोई चाहे या न चाहे, जीवन-सागर के पार तो जाना ही होगा। सिर्फ़ एक, आख़िरी बन्दरगाह, केवल एक, अन्तिम घाट ही होगा।

कास्पी सागर शोर मचाता रहता है, ख़्वालीन्स्क सागर* शोर मचाता रहता है। उसमें नदियां आकर गिरती हैं–एक ओर से वोल्गा, उराल और दूसरी ओर से कूरा, तेरेक, सुलाक। ये सभी आपस में घुल-मिल गयी हैं और इन्हें एक-दूसरी से अलग नहीं किया जा सकता। उनके लिये सागर भी एक तरह से आख़िरी

* कास्पी सागर का दूसरा नाम।–अनु०

घाट है। हां, यह सही है कि इनका पानी लुप्त नहीं होगा, जीवनहीन नहीं होगा, गतिहीन नहीं होगा, बहता रहेगा, नीली-नीली लहरों के रूप में ऊपर उठता रहेगा। इन लहरों पर दुनिया के विभिन्न कोनों तक बड़े-बड़े जहाज़ जाते रहेंगे।

पहाड़ी लोगो, दाग़िस्तान के बेटे-बेटियो, क्या आपका भाग्य भी इन नदियों के समान नहीं है? आप भी तो हमारे महान भ्रातृत्व के संयुक्त सागर में सम्मिलित होकर घुल-मिल गये हैं।

कास्पी सागर शोर मचा रहा है। पके बालोंवाले दो बुज़ुर्ग चुपचाप खड़े हैं और उनके साथ मैं, एक किशोर भी खड़ा हूं। बाद में, जब हम घर की ओर रवाना हुए तो अबुतालिब ने मेरे पिता जी से कहा –

"तुम्हारा बेटा बड़ा होता जा रहा है। आज उसे उच्च भावना की अनुभूति हुई है।"

"जिस जगह पर हम खड़े थे, वहां किसी को भी छोटा नहीं होना चाहिये," मेरे पिता जी ने अबुतालिब को जवाब दिया।

अब, जब कभी भी मैं सागर-तट पर जाता हूं तो मुझे लगातार ऐसा लगता है कि पिता जी की बग़ल में खड़ा हूं।

कहते हैं कि कास्पी साल-दर-साल कम गहरा होता जा रहा है। जहां कभी पानी कल-छल करता था, वहां अब शहरी मकान खड़े हैं। शायद यह ठीक ही है कि सागर छिछला होता जा रहा है। किन्तु मैं यह विश्वास नहीं करता कि सागर सागर नहीं रहेगा। सम्भव है कि वह कम गहरा होता जा रहा है, फिर भी उसमें तुच्छता नहीं आ रही है।

मैं तो लोगों से भी सदा यही कहता हूं कि कम संख्यावाले होने पर भी तुममें तुच्छता नहीं आनी चाहिये।

पति विद्वान हिलाता है सिर दुख से व्याकुल होकर
कवि, लेखक भी व्यथित हो रहे दिल में दर्द संजोकर,
इनकी पीड़ा यही कि कास्पी तट से हटता जाये
इसकी कम होती गहराई, उथला हो छिछलाये।
यह सब है बकवास मुझे तो कभी-कभी यह लगता

बूढ़ा कास्पी छिछला हो यह कभी नहीं हो सकता,
तुच्छ हो रहे कुछ लोगों के, दिल यह डर ही मुझको
और सभी चीज़ों से ज़्यादा, चिन्तित व्याकुल करता।

मख़ाच ने भी सागर की चर्चा की है। वह दाग़िस्तान की क्रान्तिकारी कमेटी का पहले कमिसार था और हमारी राजधानी उसी के नाम पर मख़ाचकला कहलाती है। इसके पहले इसे पोर्ट-पेत्रोव्स्क कहा जाता था। गृह-युद्ध के समय में मख़ाच ने इसे अभेद्य दुर्ग बना दिया था।

तो सागर के बारे में मख़ाच ने कहा था—"दुश्मन चाहे कितने ही क्यों न हों, हम उन सभी को सागर में फेंक देंगे। सागर गहरा है, उसके तल में सभी के लिये काफ़ी जगह रहेगी।"

पहाड़ी लोग जब ज़िन्दगी के मसलों पर सोच-विचार करने के लिये मसजिद के क़रीब या किसी पेड़ के नीचे जमा होते हैं तो ऐसी मजलिस को हमारे यहां गोदेकान का नाम दिया जाता है। ऐसी एक मजलिस में पहाड़ी लोगों से एक बार यह पूछा गया—कौन-सी आवाज़ आत्मा को सबसे ज़्यादा प्यारी लगती है? पहाड़ी लोगों ने सोच-विचारकर जवाब देना शुरू किया—

"चांदी की खनक।"

"घोड़े की हिनहिनाहट।"

"प्रेयसी का स्वर।"

"पहारी दर्रे में घोड़े के नालों की गूंज।"

"बच्चे की हंसी।"

"मां की लोरी।"

"पानी की कल-छल।"

लेकिन एक पहाड़ी आदमी ने जवाब दिया—

"सागर की आवाज़। कारण कि सागर में वे सब ध्वनियां सम्मिलित हैं जिनकी आपने गणना की है।"

किसी दूसरे मौक़े पर ऐसी ही एक मजलिस में पहाड़ी लोगों

से यह पूछा गया—किस चीज़ का रंग आत्मा को सबसे अधिक प्यारा लगता है? पहाड़ी लोग कुछ देर सोचने के बाद जवाब देने लगे—

"निर्मल आकाश का।"

"श्वेत हिम से मढ़ित पर्वत-शिखरों का।"

"मां की आंखों का।"

"बेटे के बालों का।"

"आड़ू के बौराये पेड़ का।"

"पतझर में सरपत का।"

"चश्मे के पानी का।"

लेकिन एक पहाड़ी आदमी ने जवाब दिया—

"सागर का। कारण कि उसमें वे सभी रंग सम्मिलित हैं जिनकी आपने गणना की है।"

ऐसी ही मजलिसों में जब गन्धों, पेयों या किसी अन्य चीज़ के बारे में पूछा गया तो हमेशा सागर पर आकर ही बात ख़त्म हुई।

सागर से प्रभावित होकर जनसाधारण ने नौजवान और समुद्री राजकुमारी और आसमानी रंग के उस पक्षी के बारे में क़िस्से गढ़ रखे हैं जो जहां भी चोंच मारता है, वहीं चश्मा फूट पड़ता है।

निश्चय ही मजलिस में हर कोई अपने घोड़े की तारीफ़ों के पुल बांधता है। अपने कास्पी सागर की तारीफ़ करते हुए क्या मैं भी यही नहीं कर रहा हूं? कभी-कभी मुझसे कहा जाता है—कास्पी की क्या डींग मार रहे हो। यह तो सागर भी नहीं, बड़ी झील है। असली सागर तो काला सागर है।

हां, यह सही है कि कास्पी सागर काले सागर जैसा मख़मली और कोमल नहीं है। अडरियाटिक या ईओनीचेस्की सागर जैसा भी नहीं है। किन्तु वहां तो लोग मुख्यतः आराम करने या नहाने जाते हैं, जबकि कास्पी सागर पर मुख्यतः काम करने के लिये। कास्पी सागर—मछुओं, खनिज तेल निकालनेवालों और मेहनतकशों का सागर है। इसलिये उसका मिज़ाज भी कुछ ज़्यादा कठोर है।

कोई कर ही क्या सकता है, हर सांड़ का अपना मिज़ाज, हर मर्द का अपना स्वभाव और हर सागर का अपना रवैया होता है... क्या दाग़िस्तान के पर्वत स्वभाव की दृष्टि से जार्जिया, अबख़ाज़िया और अन्य स्थानों के पर्वतों से भिन्न नहीं हैं?

लेकिन सच कहूं तो मुझे सभी सागर समान लगते हैं। जब जहाज़ पर काले सागर में यात्रा करता होता हूं तो मुझे कास्पी की याद आती है, जब कास्पी में यात्रा करता होता हूं तो महासागर को भी याद कर सकता हूं। हमारा सागर दूसरे सागरों से किसी प्रकार भी उन्नीस नहीं है। अन्य सागरों की भांति सभी लोग इस मान्यता के अनुसार उसमें भी इसीलिये कोई सिक्का फेंकते हैं कि फिर से इसी सागर पर आ सकेंगे।

पिता जी कहा करते थे कि अगर किसी व्यक्ति को सागर सुन्दर नहीं लगता तो इसका यही मतलब है कि वह आदमी ख़ुद सुन्दर नहीं है।

किसी ने एक बार अबुतालिब से कहा—

"सागर आज बहुत बुरे ढंग से शोर मचा रहा है।"

"तुम मेरे कानों से सुनो।"

तो आप कास्पी सागर को दाग़िस्तान की नज़रों से देखिये और तब वह आपको बहुत सुन्दर दिखाई देगा।

दाग़िस्तान के मेगेब गांव के रहनेवाले पनडुब्बी के दूसरी श्रेणी के विख्यात कप्तान मुहम्मद गाजीयेव के बहादुरी के कारनामों से सारा जंगी जहाज़ी बेड़ा परिचित है। उसने बाल्टिक, उत्तरी और बारेन्त्सेव सागर में भी दुश्मन के ख़िलाफ़ लोहा लिया। मुहम्मद गाजीयेव के टारपीडो से अनेक फ़ासिस्ट जंगी जहाज़ों की ठण्डे पानी में क़ब्रें बनीं। महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के इतिहास में उसकी पनडुब्बी ने पहली बार फ़ासिस्ट जंगी समुद्री बेड़े से आमने-सामने लड़ाई लड़ी थी। उसका एक नियम था—जब तक दुश्मन का कोई जंगी जहाज़ नहीं डुबो लो, तब तक मूंछें साफ़ नहीं करो।

मुहम्मद गाजीयेव से मेरी एक बार मुलाक़ात हुई। उस वक़्त

मैं बुईनाक्स्क शहर के अबाशीलोव नामक अध्यापक-प्रशिक्षण कालेज में पढ़ता था। मुहम्मद गाजीयेव छुट्टी पर था और हमने उसे अपने कालेज में निमन्त्रित किया। हमने उससे पूछा –

"भला यह कैसे हुआ कि पहाड़ों-चट्टानों में जन्म लेनेवाले आप जहाजी बन गये?"

"बचपन में एक पर्वत के शिखर से मैंने कास्पी सागर देखा और हैरानी के कारण मुझे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने मुझे पुकारा और मैं उसकी तरफ़ चल दिया। मैं सागर की पुकार की अवहेलना नहीं कर सकता था।"

पहाड़ों का रहनेवाला, सोवियत संघ का वीर, मुहम्मद गाजीयेव बारेन्त्सेव सागर में वीरगति को प्राप्त हुआ। उसी का नाम धारण करनेवाले कारखाने के सामने मखाचकला में बना हुआ उसका स्मारक कास्पी के विस्तार पर ही नज़र टिकाये है। सेवेरोमोर्स्क नगर में उसके नाम का एक स्कूल भी है।

दिलेर लोग ही सागर में काम करने जाते हैं, मगर सभी वहां से वापस नहीं आते। इसलिये पहाड़ी लोग वसन्त के पहले फूल सागर को भेंट करते हैं और इस तरह सदा को सागर में ही रह जानेवाले सभी वीरों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। मेरे फूल भी लहरों में अनेक बार तैरते थे।

बारेन्त्सेव सागर में, उस जगह, जहां गाजीयेव और उसके साथी शहीद हुए, गाजीयेव की स्मृति को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये जहाज़ रुक जाते हैं।

कास्पी सागर में भी ऐसी ही परम्परा है। जहाज़ वहां रुकते हैं, वीरगति को प्राप्त होनेवालों की स्मृति में जहाजी तीन मिनट तक मौन धारण किये रहते हैं।

हमारा शहर मखाचकला एक जहाज़ की तरह घाट पर खड़ा है। तटबन्ध के पार्क से पुश्किन की मूर्त्ति और उसके क़रीब ही सुलेमान स्ताल्स्की की मूर्त्ति सागर की ओर देख रही है, तरुपथ से मेरे पिता जी का बुत कास्पी पर नज़र टिकाये है।

कहते हैं कि सागर की जगह कभी उदास और वनस्पतिहीन

मरुस्थल था। बाद में उसने पर्वतों को देखा और हर्षोल्लास से ओत-प्रोत होकर उनके दामन में अपना नीला विस्तार फैला दिया।

कहते हैं कि पर्वत कभी आपस में लड़नेवाले अजगर थे। बाद में उन्होंने सागर को देखा और चकित होकर बुत बने रह गये तथा पाषाणों में बदल गये।

अम्मां मेरे पालने के ऊपर गाया करती थीं–

बेटे, बनो बड़े, कि पाओ
पर्वत की ऊंचाई,
बेटे, बनो बड़े, कि पाओ
सागर की चौड़ाई।

युवती ने अपने जवान प्रियतम के लिये यह गाया–

जन्म हुआ ऊंचे पर्वत पर
साफ़ नज़र यह आता है,
टेढ़ी टोपी पहन घमंडी
अपनी अकड़ दिखाता है।

जवान जिगीत यानी सूरमा ने सुन्दर पहाड़ी युवती के लिये यह गाया–

सागर-तल से क्या तुम आईं
अरी, रूप-लेखा?
कभी न पहले ऐसा यौवन
जीवन में देखा।

एक सभा में मैंने निम्न बातचीत सुनी–

"हम लोग हर वक़्त सागर और पहाड़ों, पहाड़ों और सागर का ही क्यों राग अलापते रहते हैं? हमारे यहां कुछ दूसरे प्रकार के पहाड़ और सागर भी हैं जिनकी हमें चर्चा करनी चाहिये। हमारे यहां लेज़गीनी उपवनों का सागर है, मवेशियों का सागर है, ऊन के पहाड़ हैं।"

लेकिन ठीक ही कहा जाता है—"तीनों गाने खुद ही नहीं गाओ, एक हमारे लिये भी रहने दो। तीनों नमाज़ें खुद नहीं अदा करो, एक हमारे लिये भी रहने दो।"

दाग़िस्तान जिन भागों का बना हुआ है, मैंने उनमें से दो मुख्य भागों का वर्णन किया है। बाक़ी सब कुछ—उसका तीसरा भाग है। क्या उसके रास्तों और नदियों, पेड़ों और घास-पौधों की कम चर्चा की जा सकती है! सभी कुछ का वर्णन करने के लिये तो पूरी ज़िन्दगी भी काफ़ी नहीं होगी।

गीतों-गानों के बारे में भी यही सही है। दुनिया में सिर्फ़ तीन गीत हैं—पहला—मां का गीत, दूसरा—मां का गीत और तीसरा गीत—बाक़ी सभी गीत।

पहाड़ी लोग यह कहते हुए किसी को अपने यहां आमन्त्रित करते हैं—"हमारे यहां पधारिये। हमारे पर्वत, हमारा सागर और हमारे दिल आपकी सेवा में उपस्थित हैं। हमारी धरती—धरती है, घर—घर है, घोड़ा—घोड़ा है, आदमी—आदमी है। उनके बीच तीसरा कुछ नहीं।"

इन्सान

अवार भाषा में इन्सान और आज़ादी के लिये एक ही शब्द का उपयोग होता है। "उज़्देन"—इन्सान, "उज़्देनली"—आज़ादी। इसलिये जब इन्सान का उल्लेख किया जाता है तो यह अभिप्राय भी होता है कि वह आज़ाद है।

एक क़ब्र के पत्थर पर आलेख—

बुद्धिमान होने का उसने कभी न नाम कमाया,
बांका वीर-सूरमा वह तो कभी नहीं कहलाया,
लेकिन उसके सम्मुख तुम सब अपना शीश झुकाओ
क्योंकि सही मानी में वह इन्सान भला बन पाया।

खंजर पर आलेख –

> शत्रु-भाव या मित्र-भाव मे
> कोई मिले कि जीवन में,
> "वह इन्सान". याद यह रखो
> खंजरवाले, तुम मन में।

बहुत समय तक अनुपस्थित रहने के बाद एक पहाड़िया जब मातृभूमि लौटा तो उससे पूछा गया –

"यह बताओ कि वहां कैसा हाल-चाल है, वहां की जमीन कैसी है, वहां के तौर-तरीक़े कैसे हैं?"

"वहां इन्सान रहते हैं," पहाड़ी आदमी ने जवाब दिया।

जब हाजी-मुरात और शामील के बीच झगड़ा हो गया तो कुछ लोगों ने नायब (सहायक) यानी हाजी-मुरात को खुश करने के लिये शामील को भला-बुरा कहना शुरू किया। कठोर संकेत से उन्हें चुप कराते हुए हाजी-मुरात ने कहा –

"खबरदार, जो ऐसे कुशब्द मुंह से निकाले। वह – इन्सान है और अपने झगड़े को हम खुद निपटा सकते हैं।"

हाजी-मुरात बेशक शामील को छोड़कर चला गया, फिर भी गुनीब पहाड़ पर आखिरी लड़ाई के वक़्त अपने नायब की बहादुरी और दिलेरी को याद करते हुए शामील ने कहा –

"अब वैसे लोग नहीं रहे। वह इन्सान था।"

अनेक सदियों से पहाड़ी लोग पहाड़ों में रह रहे हैं और हमेशा ही उन्हें इन्सान की ज़रूरत महसूस होती रही है। इन्सान की ज़रूरत है। इन्सान के बिना किसी तरह भी काम नहीं चल सकता।

पहाड़ी आदमी विश्वास दिलाता है – इन्सान के रूप में पैदा हुआ हूं – इन्सान के रूप में ही मरूंगा!

पहाड़ियों का यह नियम है – खेत और घर बेच दो, सारी सम्पत्ति खो दो, किन्तु अपने भीतर के इन्सान को न बेचो और न गंवाओ।

पहाड़ी लोग अपने को यों शाप देते हैं—हमारे वंश में न इन्सान हो, न घोड़ा।

जब किसी अयोग्य, तुच्छ और कमीने आदमी की चर्चा की जाने लगती है तो पहाड़ी लोग उसे बीच में ही टोककर कहते हैं—

"उसके बारे में अपने शब्द बरबाद नहीं करें। वह तो इन्सान ही नहीं है।"

जब कभी किसी आदमी की भूल, दोष-अपराध, त्रुटि-कमज़ोरी का ज़िक्र शुरू किया जाता है तो पहाड़ी लोग बीच में ही टोककर कहते हैं—

"वह इन्सान है और उसके इस अपराध को माफ़ किया जा सकता है।"

जिस गांव में कोई व्यवस्था नहीं होती, जो तंग और गन्दा होता है, जहां लड़ाई-भगड़ा होता रहता है तथा जो किसी काम का नहीं होता, उसके बारे में पहाड़ी लोग कहते हैं—

"वहां इन्सान नहीं है।"

जिस गांव में व्यवस्था और शान्ति होती है, उसके बारे में कहा जाता है—

"वहां इन्सान है।"

इन्सान—यह मुख्य लक्षण, अमूल्य आभूषण और महान चमत्कार है। दाग़िस्तान में इन्सान कहां से प्रकट हुआ, पहाड़ी लोगों के अनूठे क़बीले की कैसे शुरुआत हुई, उसकी जड़ें कहां हैं? इसके बारे में बहुत-से क़िस्से-कहानियां और दन्त-कथायें हैं। इनमें से एक मैंने बचपन में सुनी थी।

धरती पर तरह-तरह के जानवरों और परिन्दों का जन्म हो चुका था तथा उनके निशान देखने को मिलते थे, मगर इन्सान के पांवों के चिह्न ही कहीं नहीं थे। तरह-तरह की आवाजें सुनाई देती थीं, लेकिन सिर्फ़ इन्सान की आवाज सुनने को नहीं मिलती थी। इन्सान के बिना धरती जबान के बिना मुंह और दिल के बिना छाती के समान थी।

इस धरती के ऊपर बड़े शक्तिशाली और बहादुर उक़ाब पक्षी आसमान में उड़ते रहते थे। जिस दिन की चर्चा चल रही है, उस दिन ऐसे ज़ोर का हिमपात हो रहा था मानो पृथ्वी के सारे पक्षियों के पंख नोचे जा रहे हों और वे हवा में उड़ रहे हों। काले बादलों ने आकाश को ढंक दिया, धरती हिम से पट गयी, सब कुछ गड्डमड्ड हो गया और यह समझ पाना कठिन था कि धरती कहां है तथा आकाश कहां। इस वक़्त एक उक़ाब, जिसके पंख तलवारों जैसे और चोंच खंजर जैसी थी, अपने घोंसले की तरफ़ लौट रहा था।

या तो उक़ाब ऊंचाई के बारे में भूल गया या ऊंचाई उसके बारे में भूल गयी, लेकिन उड़ते-उड़ते ही वह कठोर चट्टान से जा टकराया। अवार जाति के लोगों का कहना है कि गुनीब पर्वत पर ऐसा हुआ, लाक जातिवाले कहते हैं कि यह घटना तुर्चीदाग़ पर्वत पर घटी, लेज़्गीन जाति के लोग विश्वास दिलाते हैं कि यह तो शाहदाग़ पर्वत पर हुआ था। किन्तु यह घटना चाहे कहीं भी क्यों न घटी हो, चट्टान तो चट्टान है और उक़ाब उक़ाब है। व्यर्थ ही तो यह नहीं कहा जाता–"परिन्दे को पत्थर मारो–परिन्दा मर जायेगा, परिन्दे को पत्थर पर मारो–परिन्दा मर जायेगा।"

सम्भवतः चट्टान पर गिरकर मरनेवाला यह पहला उक़ाब नहीं था। किन्तु यह उक़ाब, जिसके पंख तलवारों जैसे थे और चोंच खंजर जैसी, चट्टान से टकराकर मरा नहीं। इसके पंख टूट गये, मगर दिल धड़कता रहा, तीखी चोंच और लोहे की तरह मजबूत पंजे ज्यों के त्यों बने रहे। इसे अपनी ज़िन्दगी के लिये संघर्ष करना पड़ा। पंखों के बिना खुराक हासिल करना मुश्किल है, पंखों के बिना दुश्मन से जूझना कठिन है। यह उक़ाब हर दिन एक पत्थर से दूसरे पत्थर और एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर अधिकाधिक ऊपर चढ़ता हुआ उसी चट्टान तक पहुंच गया जिसपर बैठकर इसे इर्द-गिर्द के पर्वतों पर नज़र दौड़ाना अच्छा लगता था।

पंखों के बिना खुराक हासिल करना मुश्किल था, दुश्मन से

अपने को बचाना कठिन था, ऊंचाई पर जाना और घोंसला बनाना आसान नहीं था। इन सभी कठिन कामों के दौरान उक़ाब की मांस-पेशियां बदल गयीं और उसकी बाहरी शक्ल-सूरत भी बदलने लगी। जब घोंसला बन गया तो वह वास्तव में पहाड़ी घर ही था और पंखों के बिना उक़ाब पहाड़ी आदमी।

वह पांवों पर खड़ा हो गया और टूटे हुए पंखों की जगह उसकी बांहें निकल आईं। उसकी आधी चोंच सामान्य, लेकिन बड़ी नाक में बदल गयी और बाक़ी आधी चोंच पहाड़ी आदमी की पेटी से लटकनेवाला खंजर बन गयी। सिर्फ़ उसका दिल नहीं बदला, वह पहले की तरह उक़ाब का दिल ही बना रहा।

"तो देखा तुमने बेटे," अम्मां ने यह क़िस्सा खत्म करते हुए कहा—"पहाड़ी आदमी बनने से पहले उक़ाब को कितनी अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। तुम्हें इस चीज़ के महत्त्व को समझना चाहिये।"

मैं नहीं जानता कि यह सब ऐसे ही हुआ था या नहीं, लेकिन एक बात निर्विवाद है कि परिन्दों में पहाड़ी लोगों को उक़ाब ही सबसे ज़्यादा प्यारा है। नेक और बहादुर आदमी को उक़ाब कहा जाता है। बेटे का जन्म होता है तो पिता यह घोषणा करता है—मेरे यहां उक़ाब का जन्म हुआ है। बेटी जब जल्दी-जल्दी और बड़ी फुर्ती से घर लौटती है तो मां कहती है—मेरी उक़ाब बिटिया उड़ आयी है।

महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के समय दाग़िस्तान के वीरों के बारे में एक किताब लिखी गयी थी जिसका शीर्षक 'पहाड़ी उक़ाब' था।

पुराने घरों के दरवाज़ों, पालनों और खंजरों पर अक्सर पच्चीकारी के रूप में या किसी अन्य रूप में उक़ाब की आकृति बनी दिखाई देती है।

यह सही है कि इस सिलसिले में दूसरे क़िस्से-कहानियां भी हैं।

जब इस दुनिया में भाग्य के उलट-फेर के बारे में सोचा

जाता है, जब पिता मातृभूमि से दूर दूसरी दुनिया को कूच करनेवाले बेटों को याद करते हैं या जब बेटे परलोक सिधार गये पिताओं को स्मरण करते हैं तो ऐसा मानते हैं कि पहाड़ी आदमी उक़ाब से नहीं, बल्कि उक़ाब पहाड़ी आदमियों से बने हैं।

–नदियों-चट्टानों के ऊपर तुम ऊंचे उड़नेवाले
कौन तुम्हारा वंश उक़ाबो, अरे, कहां से तुम आये?
–बहुत तुम्हारे बेटे-पोते, मातृभूमि के लिये मिटे
हम उनके दिल, पंख लगाकर इस धरती पर जो आये!
–दूर गगन के अंधियारे में तुम झिलमिल करते तारो।
कौन तुम्हारा वंश बताओ, और कहां से तुम आये?
–खेत रहे हैं रण-आंगन में, युवक तुम्हारे वीर बहुत
उनकी ही आंखों की हम तो चमक, रोशनी बन आये।

तो यही कारण है कि दाग़िस्तान के लोग प्यार और आशा से आकाश को ताकते हैं। उड़कर आने और उड़कर जानेवाले पक्षियों को भी वे ऐसे ही देखते हैं। पहाड़ी लोग नीलाकाश को बहुत चाहते हैं!

१९४२ का साल याद आ रहा है। फ़ील्ड-मार्शल क्लेइस्ट की सेनाओं ने काकेशिया के ऊंचे स्थलों पर अधिकार कर लिया था। फ़ासिस्टों के हवाई जहाज़ ग्रोज़्नी शहर के खनिज-तेल के ठिकानों पर बमबारी करते थे। हमारे दाग़िस्तान की ऊंचाइयों से आग का धुआं नज़र आता था।

उन दिनों काकेशिया के सभी जनगण के युवजन के प्रतिनिधि ग्रोज़्नी में जमा हुए। दाग़िस्तान के प्रतिनिधिमण्डल में मैं भी शामिल था। हमारी मीटिंग में सोवियत संघ के वीर, लेज़्गीन जाति के मशहूर हवाबाज़ वालेन्तीन अमीरोव ने भाषण दिया। मैं न तो मंच पर से दिया गया उसका भाषण और न मीटिंग के बाद उसके साथ हुई अपनी थोड़ी-सी बातचीत ही कभी भूल सकूंगा। वहां से जाते वक़्त उसने आंखों से आकाश की तरफ़ इशारा करते हुए कहा –

"वहां जाने की उतावली में हूं। धरती की तुलना में मेरी वहां ज्यादा जरूरत है।"

दो हफ़्ते बाद उसकी मौत की खबर आ गयी। दाग़िस्तान का प्रसिद्ध सुपुत्र मौत के मुंह में चला गया, जल गया। किन्तु हर बार ही, जब मैं चीख के साथ अपने सिर के ऊपर से उक़ाब को उड़ते हुए जाते देखता हूं तो यह विश्वास करता हूं कि उसके सीने में वालेन्तीन का दहकता हुआ दिल है।

सन् १९४५। मास्को। हम विद्यार्थी पहाड़ी इलाके, मखाचकला की खबरें जानने के लिये मास्को में दाग़िस्तान के प्रतिनिधि-भवन में जाते थे। हमारा जनतन्त्र उस समय अपनी रजत-जयन्ती मनाने की तैयारी कर रहा था। एक बार वहां नबी अमीनतायेव से मेरी मुलाक़ात हो गयी। दाग़िस्तान में उस समय शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो लाक जाति के नबी अमीनतायेव को न जानता हो। आकाश का छतरीबाज़ सूरमा, यह विनम्र व्यक्ति पैराशूट के सहारे अनेक बार शत्रु के क्षेत्र में उतरा था और हर बार ही सही-सलामत वापस आ गया था।

"अब तो जंग नहीं है, तुम दाग़िस्तान लौट आओ," मैंने उससे कहा।

"आकाश तो है।"

कुछ दिनों के बाद 'प्राव्दा' समाचारपत्र ने उसका फ़ोटो छापा। उसके नीचे यह लिखा था—"नबी अमीनतायेव ने पैराशूट से छलांगों का विश्व-कीर्तिमान स्थापित किया है। नबी अमीनतायेव ने अपना रिकार्ड दाग़िस्तान को समर्पित किया है।"

कुछ दिनों के बाद मेरी फिर नबी से मुलाक़ात हुई।

"आओ, दाग़िस्तान चलें।"

"आकाश इन्तज़ार कर रहा है। मैं आकाश के बिना नहीं रह सकता।"

लेकिन ज़िन्दगी छोटी-सी है। एक बार पैराशूट ने दग़ा दे दिया और हमारा नबी मानो टूटे हुए पंखोंवाले उक़ाब की भांति नीचे गिरकर मर गया। तब से अब तक अनेक वर्ष बीत चुके हैं,

किन्तु जब भी मैं आकाश में उक़ाब की चीख़ सुनता हूं तो यही सोचता हूं कि उसके सीने में नबी का दहकता हुआ दिल है।

सुन्दर रेज़ेदा की भी मुझे याद आ रही है। दाग़िस्तान के आसमान से वह गुनीब पर्वत पर कूदी थी। उसकी खिड़की के नीचे तब कितने पान्दूरा बाजे गूंज उठे थे। एक भी तो ऐसा जवान कवि नहीं था जिसने अपनी कविता उसे समर्पित न की हो। बुईनाक्स्क नगर में ईंटों का छोटा-सा पक्का घर है। उन दिनों कितनी नज़रें उसकी खिड़की पर टिकी रही थीं! ख़ूंज़ह, गुनीब और कुमुख़ गांवों में घोड़ों पर ज़ीन कसे गये ताकि लम्बी चोटियोंवाली हसीना को अग़वा कर लिया जाये। लेकिन एक लेनिनग्रादवासी आया और हमारी रेज़ेदा को हवाई जहाज़ में बिठाकर अपने साथ ले गया। उसने हवा में उड़ते हवाई जहाज़ से हाथ हिलाकर धरती पर रह जानेवाले अपने सभी प्रेम-दीवानों को अलविदा कह दिया। हमारे कवि मुंह बाये हुए उसे जाते देखते रहे और बाद में उस कबूतरी के बारे में कवितायें रचने लगे जिसे उक़ाब अपने साथ उड़ा ले गया था...

दूसरे विश्व-युद्ध के समय रेज़ेदा लेनिनग्राद में थी। उसने लिखा—"इस नगर में न केवल अब दूधिया या रजत-रातें ही नहीं रहीं, बल्कि दिन भी काले हो गये। लेनिनग्राद आग की लपटों में है। मैं भी लपटों से घिरी हुई हूं। धुएं और आग में से आकाश को देखती हूं। किन्तु आकाश में भी लड़ाई चल रही है। मेरे पति सेईद अनेक बार दुश्मन के चण्डावल में जा चुके हैं। अब मैं इस सूचना के तीन पत्र पा चुकी हूं कि वह वीरगति को प्राप्त हो गये हैं। वह शत्रु के चण्डावल में उतरनेवाले डाक्टर थे। मेरे पास वे लोग आते रहते हैं जिनकी उन्होंने जानें बचायीं।"

रेज़ेदा दाग़िस्तान लौट आई। अपने दाग़िस्तान के आकाश में जब वह उक़ाब की चीख़ सुनती है तो यही सोचती है कि उसके सीने में सेईद का दहकता हुआ दिल है।

मेरे भाई अख़ील्वी... तुम तो एकदम धरती से सम्बन्धित, कृषि-संस्थान में शिक्षा पा रहे थे... किन्तु युद्ध के समय तुमने

आकाश को चुना, हवाबाज़ बन गये। काले सागर के ऊपर तुमने वीरगति पाई। उस वक़्त तुम्हारी उम्र बाईस साल थी। मैं यह जानता हूं कि तुम अपने जन्मस्थान के प्यारे पहाड़ी घर में अब कभी नहीं लौटोगे। किन्तु हर बार ही जब मेरे ऊपर कहीं उक़ाब की चीख़ सुनायी देती है तो मैं यह मानता हूं कि यह अख़ील्ची का दिल है जो मुझसे, अपने भाई से कुछ कह रहा है।

दाग़िस्तान के आकाश में उक़ाब उड़ते रहते हैं। बड़ी संख्या है उनकी। किन्तु ऐसे वीरों की संख्या भी कुछ कम नहीं है जिन्होंने मातृभूमि के लिये अपनी जानें क़ुर्बान की हैं। उक़ाब की हर चीख़ में बहादुरी और दिलेरी की ललकार होती है। हर चीख़–यह लड़ाई में कूदने का आह्वान होती है।

मैं जानता हूं कि यह सुन्दर क़िस्सा, मनगढ़न्त कहानी है। लोग चाहते हैं कि ऐसा ही हो। किन्तु एक व्यक्ति को, जो बहुत ऊंचाई पर चढ़ गया था, आंदी जाति के एक आदमी ने कहा–

"इन्सान बनने के लिये उक़ाब तक धरती पर उतर आते हैं। तुम भी अपनी ऊंचाइयों से नीचे आओ। सभी लोगों का यहां, धरती पर जन्म हुआ है। पहाड़िया इसीलिये पहाड़िया कहलाता है कि वह पहाड़ों का, धरती का आदमी है। हमारे यहां "उड़ना" शब्द बहुत पसन्द किया जाता है। घुड़सवार सरपट घोड़ा दौड़ाता है तो हम कहते हैं–उड़ा आ रहा है। गीत या गाना उड़ रहा है। हमारे अधिकतर गीत-गाने उक़ाबों के बारे में हैं।"

अनेक बार मेरी इस बात के लिये आलोचना की गयी है कि अपनी कविताओं में मैं अक्सर उक़ाबों का ज़िक्र करता हूं। लेकिन अगर दूसरे पक्षियों की तुलना में मुझे उक़ाब ज़्यादा अच्छे लगते हैं तो मैं क्या करूं? वे दूर-दूर तक और ऊंची उड़ान भरते हैं, जबकि दूसरे पक्षी जुआर-बाजरे के दानों के पास ही दौड़-धूप करते और चहकते रहते हैं। उक़ाबों की आवाज़ भी ऊंची और साफ़ है। जैसे ही ठण्ड शुरू होती है, वैसे ही दूसरे पक्षी दाग़िस्तान के साथ ग़द्दारी करके पराये क्षेत्रों को उड़ जाते हैं। लेकिन उक़ाब तो कभी अपनी मातृभूमि को नहीं छोड़ते, चाहे कैसा भी मौसम क्यों

न हो, गोलियों की कितनी ही ठांय-ठांय चाहे कैसी भी दहशत क्यों न पैदा करे। उक़ाबों के लिये गर्म, स्वास्थ्यप्रद स्थानों का अस्तित्व नहीं है। दूसरे पक्षी हर समय ज़मीन के साथ चिपके रहते हैं, एक छत से दूसरी छत और धुएं की एक चिमनी से दूसरी पर, एक खेत से दूसरे में उड़ते रहते हैं। किसी छोटे-से दर्रे को हमारे यहां पक्षी का दर्रा कहते हैं।

किसी बहुत बड़ी चट्टान को हमारे यहां उक़ाब की चट्टान कहा जाता है।

इस धरती पर जन्म लेनेवाला हर आदमी इन्सान नहीं होता। उड़नेवाला हर परिन्दा उक़ाब नहीं होता।

पहाड़ी उक़ाब

...शक्ति और गरिमा से मेरी धरती ओत-प्रोत है
तरह-तरह के विहग कि जिनके प्यारे, मधुर तराने हैं,
उनके ऊपर उड़ते रहते, विहग देवताओं जैसे
वे उक़ाब, जिनके बारे में बहुत गीत हैं, गाने हैं।

इसी हेतु कि उनकी ऊंचे नभ में झलक मिले
बने सन्तरी रहें, भयानक, दुर्दिन जब आयें,
दूर, पहुंच के बाहर जो ऊंची-ऊंची चट्टानें हैं
वे रहते हैं वहीं, नीड़ उनके नभ छू जायें।

कभी अकेला, बड़े गर्व से वह उड़ान जब भरता है,
धुंध-कुहासे को पंखों से चीर-चीर तब बढ़ता है,
और कभी खतरे में मानो झुण्ड, बड़ा-सा दल उनका
नीले सागर और महासागर के ऊपर उड़ता है।

बहुत दूर, ऊंचाई पर वे धरती के ऊपर उड़ते
अपनी तेज़ नज़र से जैसे रक्षक बन भू को तकते,

भारी, गहरे स्वर में उनकी चीख़, किलक सुनकर कौवे
दूर भाग जाते हैं डरकर, दिल उनके धक-धक करते।

उसी तरह से मैं घण्टों तक, जैसे अपने बचपन में
हिम से मढ़े हुए शिखरों को, देख अभी भी सकता हूं,
कैसे उड़ते हैं उक़ाब, फैलाकर अपने पंख वहां
किसी प्रेम-दीवाने-सा मैं, मुग्ध अभी हो सकता हूं।

कभी पहाड़ों पर से अपनी नज़र दूर दौड़ाते हैं
और कभी स्तेपी-मैदानों में वे उड़ते जाते हैं...
सबसे अधिक दिलेर, साहसी पर्वतवासी जो होते
ये उक़ाब मेरी धरती के, सभी जगह कहलाते हैं।

जापानी लोग सारसों को ही सबमे अधिक महत्त्वपूर्ण पक्षी मानते हैं। उनमें ऐसा माना जाता है कि अगर कोई बीमार आदमी कागज़ के एक हज़ार सारस बना लेता है तो वह स्वस्थ हो जायेगा। उड़ते हुए सारसों, खास तौर पर फ़ूजीयामा पर्वत के ऊपर से उड़े जा रहे सारसों के साथ जापानी लोग अपनी खुशियों और ग़मों, मिलन और जुदाई, सपनों और प्यारी स्मृतियों के सूत्र-सम्बन्ध जोड़ते हैं।

सारस मुझे भी अच्छे लगते हैं। फिर भी जब जापानियों ने मुझसे यह पूछा कि कौन-सा पक्षी मुझे सबसे ज़्यादा प्यारा लगता है तो मैंने जवाब दिया – उक़ाब। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा।

लेकिन कुछ ही समय बाद टोकियो में आयोजित प्रतियोगिता में जब हमारा पहलवान अली अलीयेव विश्व-चैम्पियन बन गया तो मेरे एक जापानी दोस्त ने मुझसे कहा –

"आपके उक़ाब कुछ बुरे परिन्दे नहीं हैं।"

"अपने पहाड़ी लोगों से मैंने तुर्की के आकाश में उक़ाबों और सारसों के बीच हुई लड़ाई की चर्चा की। जब मैंने उन्हें यह

बताया कि इस लड़ाई में उक़ाब हार गये तो पहाड़ी लोग हैरान रह गये और कुछ तो बुरा भी मान गये। उन्होंने मेरे शब्दों पर विश्वास नहीं करना चाहा। मगर जो सचाई थी, वह तो सचाई ही थी।

"तुम ठीक नहीं कह रहे हो, रसूल," आख़िर एक पहाड़िये ने कहा। "शायद उक़ाब लड़ाई में हारे नहीं, बल्कि सभी मारे गये। मगर यह तो बिल्कुल दूसरी बात है।"

दो बार सोवियत संघ के वीर की उपाधि से सम्मानित मेरा एक मशहूर दोस्त था—अहमदख़ान सुलतान। उसके पिता दाग़िस्तानी और मां तातार थी। वह मास्को में रहता था। दाग़िस्तानी उसे अपना और तातार उसे अपना वीर मानते थे।

"तुम किसके वीर हो?" मैंने एक बार उससे पूछा।

"मैं न तो तातारों और न दाग़िस्तान की लाक जाति के लोगों का ही वीर हूं। मैं तो सोवियत संघ का वीर हूं। किसका बेटा हूं? अपने माता-पिता का। क्या उन्हें एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है? मैं—इन्सान हूं।"

शामील ने अपने सेक्रेटरी मुहम्मद ताहिर अल-काराही से एक बार पूछा—

"दाग़िस्तान में कितने लोग रहते हैं?"

मुहम्मद ताहिर ने आबादी के आंकड़ों की किताब लेकर उनकी संख्या बता दी।

"मैं असली इन्सानों के बारे में पूछ रहा हूं," शामील ने झुंझलाकर कहा।

"लेकिन मेरे पास ऐसे आंकड़े तो नहीं हैं।"

"अगली लड़ाई में उनकी गिनती करना नहीं भूलना," इमाम ने हुक्म दिया।

पहाड़ी लोगों में कहा जाता है—"किसी इन्सान की असली

क़ीमत जानने के लिये निम्नांकित सात से उसके बारे में पूछना चाहिये –

१. मुसीबत से।

२. ख़ुशी से।

३. औरत से।

४. तलवार से।

५. चांदी से।

६. बोतल से।

७. ख़ुद उससे।"

हां, इन्सान और आज़ादी, इन्सान और इज़्ज़त, इन्सान और बहादुरी – इन सबका एक ही अर्थ है। पहाड़ी लोग इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि उक़ाब दुरंगी चाल चलनेवाला भी हो सकता है। वे कौवे को दुरंगा मानते हैं। इन्सान – यह तो केवल नाम नहीं, उपाधि है, सो भी बहुत ऊंची और इसे हासिल करना कुछ आसान नहीं।

कुछ ही समय पहले मैंने बोत्लीख़ में एक औरत को ऐसे मर्द के बारे में, जो किसी लायक़ न हो, यह गीत गाते सुना –

तुममें कुछ तो घोड़े जैसा
कुछ है भेड़ समान,
अंश चील का, और लोमड़ी
की होती पहचान।
कुछ मछली-सा, किन्तु वीरता
उसका नहीं निशान,
कहां मान-सम्मान?

एक अन्य नारी के मुंह से मैंने झूठे और कपटी पुरुष के बारे में यह गीत सुना –

तुम हो मानव, मैंने सोचा
राज़ कहा तुमसे खुलकर,
तुम अख़रोट, गिरी बिन निकले

खड़ी अकेली मैं पथ पर।
बहुत देर से तुमको समझी
मेरा ही यह दोष, मगर
तन के बिना लबादा हो तुम
टोपी वाले, किन्तु न सिर।

अपने लिये वर की तलाश करनेवाली युवती ने शिकवा करते हुए कहा –

"अगर मुझे समूर की टोपी पहननेवाले वर की तलाश होती तो मैंने उसे कभी का खोज लिया होता। अगर मूंछोंवाले वर की तलाश होती तो वह भी कभी का मिल गया होता। मैं इन्सान की तलाश में हूं।"

पहाड़ी लोग जब भेड़ खरीदते हैं तो उसकी दुम, ऊन और मोटापे या चर्बी की तरफ़ ध्यान देते हैं। जब वे घोड़ा खरीदते हैं तो उसके थूथन, टांगों और पूरी बाहरी आकृति को जांचते-परखते हैं। लेकिन इन्सान का कैसे मूल्यांकन किया जाये? उसके किन लक्षणों की ओर ध्यान दिया जाये? उसके नाम और काम की ओर... प्रसंगवश यह बताना भी उचित होगा कि अवार भाषा में "नाम" शब्द के दो अर्थ हैं। पहला अर्थ तो नाम ही है और दूसरा अर्थ है किसी आदमी का काम, उसकी योग्यता-सेवा, उसके वीर-कृत्य। जब हमारे यहां बेटे का जन्म होता है तो यही कामना की जाती है – "उसका काम उसका नाम पैदा करे।" किसी बड़े काम या उपलब्धि के बिना नाम तो निरर्थक ध्वनि है।

अम्मां मुझे सीख दिया करती थीं – नाम से बड़ा कोई पुरस्कार नहीं, ज़िन्दगी से बड़ा कोई खज़ाना नहीं। इसे सहेजकर रखो।"

सींगी पर आलेख:

साल हज़ारों-लाखों बीते
धीरे-धीरे तब बन्दर
मानव बना, पियक्कड़ फिर से
बना जानवर, हाय, मगर!

शामील ने जब गुनीब पहाड़ पर मजबूत क़िलेबन्दी कर ली तो उसे पराजित करना किसी तरह भी सम्भव नहीं रहा। किन्तु एक ऐसा ग़द्दार निकल आया जिसने दुश्मन को गुप्त पगडंडी दिखा दी। फ़ील्ड-मार्शल प्रिंस बर्यातीन्स्की ने इस पहाड़िये को बहुत-सा सोना इनाम दिया।

बाद में जब बन्दी शामील कालूगा पहुंच चुका था तो यह ग़द्दार अपने घर लौटा। लेकिन उसके पिता ने कहा –

"तू ग़द्दार है, पहाड़िया नहीं, इन्सान नहीं। तू मेरा बेटा नहीं।"

इतना कहकर उसने उसकी हत्या कर दी, गला काट दिया और सोने के साथ उसे चट्टान से नदी में फेंक दिया। देशद्रोही का पिता भी अब अपने इस गांव में नहीं रह सकता था और लोगों से नजरें नहीं मिला सकता था। बेटे के कारण उसका सिर भी शर्म से झुक जाता था। वह कहीं चला गया और तब से उसका कोई अता-पता नहीं।

उस जगह के क़रीब से गुज़रते हुए, जहां ग़द्दार का सिर फेंका गया था, पहाड़ी लोग आज तक पत्थर फेंकते हैं। कहा जाता है कि इस चट्टान के ऊपर से उड़ते हुए परिन्दे भी "ग़द्दार, ग़द्दार!" चिल्लाते हैं।

एक बार मख़ाच दाख़ादायेव अपनी सेना में सैनिक भर्ती करने के लिये गांव में आया। गोदेकान में उसने दो पहाड़ी लोगों को ताश खेलते देखा।

"असलामालेकुम। आपके मर्द लोग कहां हैं, उन्हें ज़रा इकट्ठा करो।"

"हमारे सिवा गांव में और कोई मर्द नहीं है।"

"भई वाह! मर्दों के बिना भी क्या गांव! कहां हैं वे?"

"लड़ रहे हैं।"

"तो यह बात है! इसका यह मतलब हुआ कि आप दोनों

के सिवा आपके गांव में बाक़ी सब मर्द हैं।"

अबुतालिब के साथ एक बार यह क़िस्सा हुआ। एक घड़ीसाज़ के यहां वह घड़ी ठीक करवाने गया। इस वक़्त घड़ीसाज़ क़रीब बैठे हुए एक नौजवान की घड़ी की मरम्मत करने में व्यस्त था।

"बैठो," घड़ीसाज़ ने अबुतालिब से कहा।

"देख रहा हूं कि तुम्हारे पास लोग बैठे हैं। मैं फिर कभी आ जाऊंगा।"

"तुम्हें लोग कहां दिखाई दे गये?" घड़ीसाज़ ने हैरान होकर पूछा।

"यह नौजवान?"

"अगर यह सही मानी में इन्सान होता तो तुम्हारे यहां आते ही उठकर खड़ा हो जाता और अपनी जगह पर तुम्हें बिठा देता... दाग़िस्तान को इस बात से क्या लेना-देना है कि इस निकम्मे की घड़ी ठीक वक़्त बताती है या नहीं, लेकिन तुम्हारी घड़ी ठीक ढंग से चलनी चाहिये।"

अबुतालिब ने बाद में बताया कि जब उसे दाग़िस्तान के जन-कवि की उपाधि दी गयी तो उस वक़्त उसे इतनी ख़ुशी नहीं हुई थी जितनी इस घड़ीसाज़ की दुकान पर।

दाग़िस्तान में तीस जातियों के लोग रहते हैं, किन्तु कुछ बुद्धिमान यह दावा करते हैं कि दाग़िस्तान में सिर्फ़ दो आदमी रहते हैं।

"यह कैसे मुमकिन है?"

"बिल्कुल मुमकिन है। एक अच्छा आदमी और एक बुरा आदमी।"

"अगर इसी दृष्टिकोण से देखा जाये," दूसरे ने उसकी भूल सुधारी, "तो दाग़िस्तान में सिर्फ़ एक आदमी रहता है, क्योंकि बुरे आदमी तो आदमी नहीं होते।"

कुशीन के कारीगर समूर की टोपियां बनाते हैं। किन्तु कुछ लोग तो उन्हें सिरों पर पहनते हैं, जबकि दूसरे खूंटियों पर टांगते हैं।

अमगूज़िन के लुहार खंजर बनाते हैं। लेकिन कुछ तो उन्हें अपनी पेटियों में लटकाते हैं और कुछ कीलों पर।

आंदी के कारीगर लबादे बनाते हैं। मगर कुछ तो उसे बुरे मौसम में पहनते हैं, जबकि दूसरे सन्दूक़ों में छिपाते हैं।

लोगों के बारे में भी यही सही है। कुछ तो हमेशा काम-काज में जुटे रहते हैं, धूप और हवा का सामना करते हैं, जबकि दूसरे सन्दूक़ में बन्द लबादे, खूंटी पर लटकी समूर की टोपी और कील पर लटके खंजर के समान हैं।

एक प्रकार से यों कहा जा सकता है मानो तीन प्रकार के बुद्धिमान बुज़ुर्ग दाग़िस्तान पर नजर टिकाये हुए हैं। वे मानो कई सदियों तक जी चुके हैं, उन्होंने सब कुछ देखा है और वे सब कुछ जानते हैं। उनमें से एक इतिहास की गहराई में जाकर, प्राचीन क़ब्रों पर नज़र डालकर और आकाश में उड़ते पक्षियों के बारे में सोचते हुए कहता है – "दाग़िस्तान में कभी असली इन्सान थे।" दूसरे बुज़ुर्ग आज की दुनिया पर नज़र डालते, दाग़िस्तान में जगमगाती बत्तियों की ओर इशारा करते और दिलेरों-बहादुरों के नाम लेते हुए कहता हैं – "हां, दाग़िस्तान में इन्सान हैं।" तीसरे ढंग का बुज़ुर्ग मन ही मन भविष्य पर नज़र डालते, उस नींव का मूल्यांकन करते हुए जो हमने भविष्य के लिये आज रखी है, यह कहता है – "दाग़िस्तान में कभी इन्सान होंगे।"

सम्भवतः तीनों प्रकार के बुज़ुर्ग सही हैं।

कुछ समय पहले विख्यात अन्तरिक्ष-नाविक आन्द्रियान निकोलायेव दाग़िस्तान में पधारा। वह मेरे घर भी आया। मेरी छोटी बिटिया ने पूछा –

"क्या दाग़िस्तान का अपना अन्तरिक्ष-नाविक नहीं है?"

"नहीं है," मैंने जवाब दिया।

"होगा?"

"हां, होगा!"

इसलिये होगा कि बच्चे जन्म लेते हैं, कि हम उन्हें नाम देते हैं, कि वे बड़े होते हैं और हमारे देश के साथ क़दम मिलाकर चलते हैं। हर क़दम के बढ़ने पर वे अपने वांछित लक्ष्य के क़रीब पहुंचते जाते हैं। हमारी तो यही कामना है कि दूसरी जगहों पर दाग़िस्तान के बारे में वैसा ही कहा जाये, जैसा हम उस गांव के सम्बन्ध में कहते हैं जिसमें व्यवस्था और शान्ति है—वहां इन्सान है।

जनगण

"यह बताओ कि क्या अमरीका हमारे देश जितना ही बड़ा है? वहां ज़्यादा आबादी है या हमारे यहां?" १९५९ में अमरीका से लौटने पर मेरी मां ने मुझसे पूछा।

शोर किये बिन बहलाये जो मन अपना
बिना आंसुओं के ही जो रो सकता है,
आह भरे बिन जो चुपके से मर जाये
ऐसा व्यक्ति पहाड़ी, ऐसी जनता है।

रात के सन्नाटे और सो रहे गांव में चाहे पानी बरस रहा हो या अच्छा मौसम हो, खिड़की पर हल्की-सी दस्तक होती है।

"अरे, यहां कोई मर्द है? घोड़े पर ज़ीन कसो!"

"तुम कौन हो?"

"अगर यह पूछ रहे हो कि 'कौन' हूं तो घर पर ही रहो। तुमसे कोई फ़ायदा नहीं होगा।"

फिर दूसरी खिड़की पर दस्तक होती है—ठक, ठक।

"अरे, इस घर में क्या कोई मर्द है? घोड़े पर ज़ीन कसो!"

"कहां जाने को? किसलिये?"

"अगर 'कहां' और 'किसलिये' पूछते हो तो घर पर ही रहो। तुमसे कोई फ़ायदा नहीं होगा।"

तीसरी खिड़की पर दस्तक होती है।

"अरे, इस घर में क्या कोई मर्द है? घोड़े पर जीन कसो!"

"अभी। मैं तैयार हूं।"

तो यह मर्द है, यह पहाड़ी आदमी है! और ये दोनों चल देते हैं। फिर ठक, ठक। "यहां कोई मर्द है? घोड़े पर जीन कसो।" और अब वे दो नहीं, तीन नहीं, दस नहीं, बल्कि सैकड़ों और हज़ारों हैं। उक़ाब के पास उक़ाब उड़ आया, एक व्यक्ति के पीछे दूसरा व्यक्ति चल दिया। ऐसे दाग़िस्तान के जनगण, इसकी जनता ने रूप ग्रहण किया। घाटी से आनेवाली हवायें पालने झुलाती हैं, पहाड़ी नदियां लोरियां गाती हैं–

"तुम कहां गये थे, डिंगीर-डांगारचू?
वन में गया था डिंगीर-डांगारचू।

बेटे का जन्म हुआ–उसके तकिये के नीचे खंजर रख दिया गया। खंजर पर यह लिखा था–"तुम्हारे पिता का ऐसा हाथ था कि जिसमें तुम नहीं कांपते थे। क्या तुम्हारा हाथ भी ऐसा ही होगा?"

बिटिया का जन्म हुआ, पालने के ऊपर एक घण्टी लटका दी गयी जिसपर लिखा था–"सात भाइयों की बहन होगी।"

एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर फैलायी गयी रस्सियों के सहारे घाटी में पालने झूलते हैं। बेटे बड़े हो रहे हैं, बेटियां भी बड़ी हो रही हैं। दाग़िस्तान के जनगण बड़े हो गये, उनकी मूंछें भी बड़ी हो गयीं, अब उनपर ताव दिया जा सकता है।

दाग़िस्तान में सोलह लाख ७२ हज़ार लोग हो गये। दूर-दूर के पहाड़ों तक उनकी ख्याति फैल गयी, इस ख्याति से कभी न तृप्त होनेवाले विजेताओं के मुंह में पानी भर आया और

उन्होंने दाग़िस्तान की तरफ़ अपने लालची हाथ बढ़ाये।

दाग़िस्तानियों ने कहा – "हमें हमारे घरों में माता-पिताओं और पत्नियों के साथ चैन से रहने दो। हमारी संख्या तो यों भी कम है।"

लेकिन दुश्मनों ने जवाब दिया – "अगर तुम्हारी संख्या कम है तो हम तुम्हारे दो-दो टुकड़े कर देंगे और तुम्हारी संख्या दुगुनी हो जायेगी।"

लड़ाइयां शुरू हो गयीं।

दाग़िस्तान में ज्वालायें भड़कने लगीं, दाग़िस्तान धू-धू करके जलने लगा। पहाड़ी ढालों, घाटियों-दर्रों में और चट्टानों पर दाग़िस्तान के सबसे अच्छे एक लाख सपूत, एकदम जवान, मज़बूत और दिलेर बेटे खेत रहे।

लेकिन दस लाख दाग़िस्तानी ज़िन्दा बच गये। हवायें पहले की तरह ही पालनों को झुलाती रहीं, लोरियां गायी जाती रहीं। एक लाख नये दाग़िस्तानी बेटे बड़े हो गये। उन्हें खेत रहे वीरों के नाम दे दिये गये। तभी दाग़िस्तान पर हमला कर दिया गया।

बहुत बड़ी लड़ाई हुई, लड़ाई का बहुत बड़ा शोर-गुल रहा। कटे हुए सिर पत्थरों की भांति दर्रों-घाटियों में लुढ़कते रहे। दाग़िस्तान के सबसे अच्छे एक लाख सपूत शहीद हो गये। एक लाख सैनिक, एक लाख हलवाहे, एक लाख वर, एक लाख पिता।

किन्तु दस लाख ज़िन्दा रह गये। पालने झूलते रहे, गाने गाये जाते रहे, जवान सूरमा अपनी प्रेयसियों को भगाकर ले जाते रहे, एक ही लबादे के नीचे तन गर्माते और आलिंगन करते रहे, दाग़िस्तान की वंश-वृद्धि करते रहे। एक लाख नये बेटे-बेटियों का जन्म हुआ, एक लाख हंसिये, खंजर, पन्दूरे और खंजड़ियां सामने आ गयीं।

तब एक नया युद्ध आरम्भ हुआ। घाटियों में और पहाड़ी रास्तों पर तोपें दनदना उठीं। पहाड़ी वनों की ढालों पर कुल्हाड़े चलने की आवाज़ें होने लगीं। संगीनें चमक उठीं, गोलियां ठांय-ठांय करने लगीं।

तब उराल से, रे, डेन्यूब तक
चौड़े-चौड़े नदी-पाट तक
बढ़ती जाती थीं सेनायें
संगीनों की चमक दिखायें।
श्वेत टोपियां लहराती थीं
हरी घास-सी बल खाती थीं।
घोड़े जिनके धूल उड़ाते
वे उलान* भी बढ़ते जाते
सजी-धजी वे, सटी-सटी वे
क़दम मिला चलतीं सेनायें,
झण्डे उनके आगे फहरें
और ढोलची ढोल बजायें।
तोपें उनकी शोर मचायें
वे दनदन गोले बरसायें।
वहां पलीते भी जलते हैं
धांय-धांय गोले चलते हैं
पके हुए बालोंवाला वह
जनरल करता है अगुआई
उसकी आंखों में शोले हैं
आग नज़र में पड़े दिखाई।
बढ़ती जाती हैं सेनायें
जैसे तेज़, प्रबल धारायें,
वे मेघों-सी उमड़ रही हैं
घोर घटा-सी घुमड़ रही हैं,
वे पूरब को बढ़ती जायें
वे मंसूबे बुरे बनायें।
कज़्बेक** दुख, चिन्ता में डूबा
दुश्मन को देखे, घबराये,
गिनती करना चाहे इनकी
किन्तु नहीं इनको गिन पाये।

---

* उलान – ज़ार के ज़माने में घुड़सवार सैनिक। – सं०
** कज़्बेक – काकेशियाई पर्वतमाला की एक बड़ी चोटी। – सं०

हां, उनकी गिनती करना कठिन था। हमारे गीतों में यह गाया जाता है कि हमारे एक व्यक्ति को एक सौ शत्रुओं का सामना करना पड़ा। "एक हाथ कट जाता तो वह दूसरे हाथ से लड़ता, सिर कट जाता तो उसका धड़ लड़ता रहता," बूढ़े उस युद्ध के बारे में ऐसा बताते थे। मरे हुए घोड़ों से रास्ते और दर्रे रोक दिये जाते थे, सैनिक ऊंची-ऊंची चट्टानों से संगीनों पर कूदते थे। हमसे यह कहा जाता था कि ख़ून बहाना बन्द करो। विरोध करने में कोई तुक नहीं। कहां जाओगे तुम? तुम्हारे पंख नहीं हैं कि आसमान में उड़ जाओ। तुम्हारे ऐसे नाख़ून नहीं हैं कि धरती को खोदकर उसमें समा जाओ।

लेकिन शामील जवाब देता था।

"मेरी तलवार–पंख है। हमारे खंजर और तीर–हमारे नाख़ून हैं।"

पचीस साल तक पहाड़ी लोग शामील के नेतृत्व में लड़ते रहे। इन सालों के दौरान न केवल दाग़िस्तान का बाहरी रंग-रूप बदला, बल्कि स्थानों और नदियों के नाम भी बदल गये। अवार-कोइसू का नाम कारा-कोइसू यानी काली नदी हो गया। 'घायल चट्टानें' और 'मौत का दर्रा' प्रकट हो गया, वालेरिक नदी विख्यात हो गयी, शामील की पगडंडी, शामील का मार्ग और शामील का नाच लोगों की स्मृति में अंकित होकर रह गये।

गुनीब पर्वत उस युद्ध के अपार दुख का चरमबिन्दु बनकर रह गया है। इमाम ने इसी की चोटी पर आख़िरी बार इबादत की। इबादत के वक़्त ऊपर उठे हुए हाथ में गोली लग गयी। शामील सिहरा नहीं और उसने अपनी नमाज़ जारी रखी। इमाम शामील के घुटनों और उस शिला पर, जिसपर वह खड़ा था, ख़ून गिरता रहा। घायल इमाम ने अपनी नमाज़ पूरी की। जब वह उठकर खड़ा हुआ तो लोगों ने कहा–

"तुम घायल हो, इमाम।"

"यह घाव तो मामूली-सा है। ठीक हो जायेगा।" शामील ने मुट्ठी भर घास तोड़ी और हाथ से बह रहा ख़ून पोंछने लगा।

"दाग़िस्तान लहू-लुहान हो रहा है। इस घाव का इलाज कहीं ज़्यादा मुश्किल है।"

इसी कठिन घड़ी में इमाम ने सहायता के लिये अपने उन वीरों का आह्वान किया जो बहुत पहले ही क़ब्रों में जा चुके थे। उसने उनसे अपील की जिन्होंने अख़ूल्गो में अपने प्राण दिये, उनसे जो ख़ूंज़ह में अपने प्राण दे चुके थे, उनसे जो साल्टी गांव के क़रीब पथरीली धरती पर मृत पड़े रहे, उनसे जो गेर्गेबिल में दफ़न हैं, उनसे जो दार्गो में वीरगति को प्राप्त हुए।

इमाम शामील ने अपने ही गांववासी और अग्रज, पहले इमाम काज़ी-मुहम्मद, लंगड़े हाजी-मुरात, अलीबेकीलाव, अख़बेर्दीलाव और अनेक अन्य वीरों को याद किया। इनमें से कोई सिर के बिना, कोई हाथ के बिना और कोई गोलियों से छलनी हुए दिल के साथ दाग़िस्तान की धरती में दफ़न पड़ा है। युद्ध का मतलब है मौत। दाग़िस्तान के एक लाख सबसे अच्छे सपूत।

लेकिन शामील विशाल रूस की धरती से गुज़रते हुए लगातार यही दोहराता रहा–

"दाग़िस्तान छोटा है, हमारे लोगों की संख्या कम है। काश, मेरे पास एक हज़ार सूरमा और होते।"

वेर्ख़नी (ऊपरवाले) गुनीब में वह पत्थर अभी तक सुरक्षित है जिसपर लिखा है–"प्रिंस बर्यातीन्स्की ने इसी पर बैठकर बन्दी शामील से बातचीत की थी।"

"तुम्हारी सारी कोशिशें, तुम्हारा सारा संघर्ष बेकार रहा," प्रिंस बर्यातीन्स्की ने अपने क़ैदी से कहा।

"नहीं, बेकार नहीं रहा," शामील ने जवाब दिया। "लोगों के दिलों में उसकी याद बनी रहेगी। मेरे संघर्ष ने अनेक जानी दुश्मनों को भाई बना दिया, आपस में शत्रुता रखनेवाले अनेक गांवों में मित्रता पैदा कर दी, एक-दूसरे से बैर रखने और "मेरे लोग", "मेरी जाति" की रट लगानेवाले बहुत-से जनगण को एकजुट कर दिया। मैंने मातृभूमि, अखण्ड दाग़िस्तान की भावना पैदा कर दी और उसे अपने वंशजों के

लिये छोड़े जा रहा हूं। क्या यह कम है?"

मैंने पिता जी से पूछा –

"किसलिये दुश्मनों ने हमारे देश पर हमला किया, खून बहाया, द्वेष और घृणा के बीज बोये? किसलिये उन्हें दाग़िस्तान की ज़रूरत थी जो प्यार-मुहब्बत से अनजान भेड़िये के बच्चे जैसा है?"

"मैं तुम्हें एक बहुत ही अमीर आदमी का क़िस्सा सुनाता हूं। हां, वह आदमी बेहद अमीर था। एक टीले पर चढ़कर उसने जब सभी तरफ़ नज़र दौड़ाई तो देखा कि पहाड़ के दामन से सागर-तट तक सारी घाटी में उसी की भेड़ों के रेवड़ चर रहे हैं। उसके मवेशियों और तेज़ घोड़ों के झुण्डों का भी कोई अन्त नहीं था। हवा में उसी के मेमनों की आवाज़ें गूंज रही थीं। इस अमीर आदमी का दिल ख़ुशी से नाच उठा कि सारी ज़मीन उसकी है और उस ज़मीन पर सारे पशु भी उसी के हैं।

"लेकिन इस अमीर आदमी को तभी अचानक ज़मीन का एक ऐसा टुकड़ा दिखाई दिया जो ख़ाली पड़ा था और जिसपर उसके पशुओं का झुण्ड नहीं था। यह देखकर उसका दिल ऐसे टीस उठा मानो किसी ने उसके दिल में गहरा घाव कर दिया हो। अमीर आदमी ग़ुस्से में आकर भयानक आवाज़ में चिल्ला उठा – 'अरे! वह बालों से वंचित होनेवाली खाल के समान ज़मीन का टुकड़ा ख़ाली क्यों पड़ा है? क्या उसे भरने के लिये मेरे यहां काफ़ी भेड़ें नहीं हैं?! मेरे रेवड़ उधर भेज दो, मेरे पशुओं-घोड़ों के झुण्ड उधर हांक दो!'"

मगर मेरे पिता जी को ख़ुद शामील के बारे में बातें सुनाना कहीं ज़्यादा पसन्द था।

मिसाल के तौर पर यह कि शामील ने एक दिलेर डाकू पर कैसे जीत हासिल की।

एक बार अपने मुरीदों के साथ इमाम एक गांव में गया। गांव के बुज़ुर्ग-मुखिया लोग उसके साथ कटुता से मिले। वे बोले –

"हम जंग से तंग आ गये हैं। हम अमन-चैन से रहना चाहते

हैं। अगर तुम न होते तो हमने बहुत पहले ही ज़ार से सुलह कर ली होती।"

"अरे तुम लोग, जो कभी पहाड़ी होते थे! तुम लोग क्या दाग़िस्तान की रोटी खाना और उसके दुश्मनों की खिदमत करना चाहते हो? क्या मैंने तुम्हारे अमन-चैन में खलल डाला है? मैं तो उसकी रक्षा कर रहा हूं।"

"इमाम, हम भी दाग़िस्तानी हैं, लेकिन देख रहे हैं कि इस लड़ाई से दाग़िस्तान का कोई भला नहीं हो रहा और आगे भी नहीं होगा। केवल हठधर्मी से तो कुछ हासिल नहीं हो सकेगा।"

"तुम दाग़िस्तानी हो? रहने की जगह की दृष्टि से तो तुम दाग़िस्तानी हो, लेकिन तुम्हारे दिल खरगोशों जैसे हैं। तुम्हें अपने चूल्हों में उस वक़्त कोयले हिलाना अच्छा लगता है, जब दाग़िस्तान ख़ून से लथपथ हो रहा है। अपने गांव का फाटक खोल दो वरना हम अपनी तलवारों से उसे खोल लेंगे!"

गांव के बुज़ुर्ग-मुखिया बहुत देर तक इमाम से बातचीत करते रहे और आखिर उन्होंने उसे अपने गांव में आने की अनुमति देने और एक सम्मानित मेहमान के रूप में उसका स्वागत-सत्कार करने का निर्णय किया। इसके बदले में शामील ने उन्हें वचन दिया कि वह इस गांव के एक भी व्यक्ति की हत्या नहीं करेगा और पुराने मनमुटावों-झगड़ों को अपनी ज़बान पर नहीं लायेगा। इमाम शामील अपने एक वफ़ादार दोस्त के पहाड़ी घर में ठहरा और गांव के बुज़ुर्ग-मुखियों के साथ बातचीत करते हुए उसने यहां कुछ दिन बिताये।

इसी वक़्त इस गांव और इसके आस-पास के क्षेत्रों में दो मीटर से भी अधिक लम्बे क़द का एक महाबली, एक भयानक डाकू लूट-मार करता था। वह किसी भेद-भाव के बिना सभी को लूटता था, लोगों से उनका अनाज, ढोर-डंगर और घोड़े छीन लेता था, गांववालों की हत्यायें करता था और उन्हें डराता-धमकाता था। उसके लिये कुछ भी पावन-पवित्र नहीं था।

अल्लाह, जार और इमाम – इन शब्दों का उसके लिये कोई अर्थ नहीं था।

चुनांचे गांव के बुजुर्ग-मुखियों ने शामील से अनुरोध किया –

"इमाम, किसी तरह हमें इस लुटेरे से मुक्ति दिला दो।"

"किस तरह मुक्ति दिलाऊं मैं तुम्हें इससे?"

"इसे मार डालो, इमाम, मार डालो। इसने तो खुद बहुत-से लोगों की हत्या की है।"

"मैंने तो तुम्हारी पंचायत को इस गांव में एक भी व्यक्ति की हत्या न करने का वचन दिया है। मुझे अपना वचन निभाना चाहिये।"

"इमाम, हमें इस दुष्ट से मुक्ति दिलाने का कोई उपाय सोच निकालिये!"

कुछ दिनों के बाद शामील के मुरीदों ने इस लुटेरे को घेर लिया, पकड़कर उसकी मुश्कें बांध दीं और गांव में लाकर तहखाने में बन्द कर दिया। इस अपराधी को इसके भयानक अपराधों के अनुरूप दण्ड देने के लिये एक खास अदालत – दीवान – बैठी। यह तय किया गया कि इस बदमाश की आंखें निकाल दी जायें। अन्धा करके इस शैतान को फिर से तहखाने में बिठा दिया गया और दरवाज़े पर ताला लगा दिया गया।

कुछ दिन बीत गये। एक रात को जब पौ फटनेवाली थी और शामील गहरी नींद सो रहा था, उसके कमरे में शोर और खट-पट सुनायी दी। इमाम उछलकर बिस्तर से उठा और उसने अपने इर्द-गिर्द नज़र डाली। उसने देखा कि कुल्हाड़े से दरवाज़े के छोटे-छोटे टुकड़े करके एक पर्वत जैसा, जंगली दरिन्दे और राक्षस जैसा व्यक्ति चीखता-चिल्लाता तथा कोसता हुआ उसकी तरफ़ बढ़ रहा है। इमाम समझ गया कि यह लुटेरा किसी तरह तहखाने का ताला तोड़कर निकलने में सफल हो गया है और अब बदला लेने को यहां आया है।

दांत पीसता हुआ यह दानव बढ़ता आ रहा था। उसके एक

हाथ में बहुत बड़ा खंजर और दूसरे में कुल्हाड़ा था। इमाम ने भी अपना खंजर ले लिया। उसने मुरीदों को पुकारा, मगर इस बदमाश ने उन्हें तो पहले ही दूसरी दुनिया में पहुंचा दिया था। गांव के लोग सो रहे थे। किसी ने भी इमाम की पुकार नहीं सुनी।

शामील पीछे हटते हुए शत्रु पर वार करने का अच्छा मौक़ा ढूंढ़ रहा था। अन्धा बदमाश इधर-उधर उछल-कूद रहा था और कुल्हाड़ा चला रहा था। कमरे में जो कुछ भी था, उसने वह सब तोड़-फोड़ डाला।

"कहां हो तुम सूरमा, जिसकी किताबों में चर्चा की जाती है?" वह लम्बा-तड़ंगा लुटेरा चिल्ला रहा था। "कहां छिपे हुए तुम? इधर आओ, मेरे हाथ बांधो, मुझे पकड़ो, मेरी आंखें निकालो!"

"मैं यहां हूं!" इमाम ने ज़ोर से चिल्लाकर जवाब दिया और उसी क्षण उछलकर एक तरफ़ को हट गया। कुल्हाड़ा उसी जगह पर दीवार में गहरा जा घुसा, जहां एक क्षण पहले शामील खड़ा था। तब इमाम इसी क्षण का लाभ उठाते हुए अपने दुश्मन पर झपटा। लुटेरा ज़्यादा ताक़तवर और प्रचंड था। वह शामील को इधर-उधर फेंकने और उछालने-पटकने लगा और उसे कई बार घायल करने में भी सफल हो गया। लेकिन शामील की चुस्ती-फुरती ने हर बार ही उसकी मदद की और वह घातक रूप से घायल होने से बच गया। यह संघर्ष कोई दो घण्टे तक चलता रहा। आख़िर उस बदमाश ने शामील को पकड़ लिया, सिर के ऊपर उठा लिया, उसे ज़ोर से फ़र्श पर पटकना और फिर उसका सिर काट डालना चाहा। किन्तु हवा में ऊपर उठा हुआ शामील फुरती से काम लेते हुए इस लुटेरे के सिर पर कई बार खंजर से वार करने में सफल हो गया। बदमाश डाकू अचानक झुक गया, उसका शरीर ढीला पड़ गया, लड़खड़ाया और वह ईंटों की मीनार की तरह नीचे गिर गया। उसके हाथों से खंजर छूट गया। सुबह होने पर लोगों ने उन दोनों को ख़ून के डबरे में पड़ा

पाया। शामील के बदन पर नौ घाव लगे थे और उसे एक महीने तक इसी गांव में इलाज करवाना पड़ा।

शक्तिशाली बाहरी दुश्मन के विरुद्ध शामील का संघर्ष इस भिड़न्त के समान ही था। बाहर से आनेवाला दुश्मन उसके लिये अपरिचित पहाड़ों में अन्धे जैसी हरकतें करता था। शामील बड़ी फुरती से उसके हमलों से बच निकलता था और फिर अचानक कभी बग़ल तथा कभी पीछे से उसपर हमला करता था।

हर पहाड़ी आदमी के दिल में सम्भवत: शामील का अपना एक बिम्ब है। मैं भी उसे अपने ही ढंग से देखता हूं।

वह अभी जवान है। अख़ूल्गो नामक समतल चट्टान पर घुटनों के बल होकर वह अवार जाति के क्षेत्र में बहनेवाली कोइसू नदी की लहर में अभी-अभी धोये गये अपने हाथ ऊपर उठाता है। उसके चेर्केस्का* की आस्तीनें ऊपर चढ़ी हुई हैं। उसके होंठ कोई शब्द फुसफुसा रहे हैं—कुछ लोगों का कहना है कि इबादत के वक़्त जब वह "अल्लाह" शब्द फुसफुसाता था तो लोगों को "आज़ादी" सुनायी देता था और जब "आज़ादी" फुसफुसाता था तो "अल्लाह" सुनायी देता था।

वह बूढ़ा हो गया है। कास्पी सागर के तट पर वह हमेशा के लिये दाग़िस्तान से विदा लेता है। वह गोरे ज़ार का बन्दी है। एक पत्थर पर चढ़कर उसने कास्पी की फेन उगलती लहरों पर नज़र डाली। उसके होंठ "अल्लाह" और "आज़ादी" की जगह "विदा" फ़ुसफ़ुसा रहे हैं। लोगों का कहना है कि इस क्षण उसके गालों पर नमी की बूंदें दिखाई दी थीं। लेकिन शामील तो कभी भी रोता नहीं था। शायद ये बूंदें सागर की फुहारें थीं।

किन्तु सबसे अधिक प्रखर रूप में मैं पिता जी द्वारा सुनाये गये क़िस्से के अनुरूप ही उसकी कल्पना करता हूं—एक तंग पहाड़ी घर में गुस्से से पागल हुए डाकू के साथ अकेले ही

---

* चेर्केस्का—काकेशिया के लोगों का लम्बा फ़ौजी कोट।—सं०

हाथापाई करते, लम्बे और ख़ूनी संघर्ष में उलझे हुए।

हाजी-मुरात के साथ शामील की कभी तो शान्ति से निभी और कभी उनके बीच झगड़ा होता रहा। इन दोनों के बारे में बहुत-सी दन्त-कथायें और क़िस्से-कहानियां हैं।

हाजी-मुरात को अपना नायब बनाकर शामील ने उसे हाइदाक और ताबासारान गांवों में भेजा ताकि वहां के लोगों को अपने पक्ष में कर ले या शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि उन्हें युद्ध में खींच ले। उसे आशा थी कि हाजी-मुरात लोगों को समझा-बुझाकर अपने पक्ष में करेगा, लेकिन नये नायब ने ऐसा करने के बजाय हाइदाक तथा ताबासारान में कोड़े और बन्दूक़ से काम लिया। अगर कोई क़ानून के बारे में मुंह से शब्द निकालने की हिम्मत करता तो हाजी-मुरात उसे घूंसा दिखाकर कहता – "यह है तुम्हारा क़ानून। मैं ख़ूंजह का रहनेवाला हाजी-मुरात हूं। तुम्हारे लिये मैं ही सबसे बड़ा क़ानून हूं।"

हाजी-मुरात की क्रूरता की ख़बरें शामील तक पहुंचीं। उसने हरकारे को भेजकर नायब को अपने पास बुलवाया। हाजी-मुरात लूट का काफ़ी बड़ा माल लिये हुआ लौटा। उसका फ़ौजी दस्ता मवेशियों का झुण्ड, भेड़ों के रेवड़ और घोड़ों के झुण्ड अपने आगे-आगे हांकता ला रहा था। ख़ुद हाजी-मुरात अग़वा की गयी एक हसीना को अपने घोड़े पर बिठाये ला रहा था।

"अससलामालेकुम, इमाम!" हाजी-मुरात ने घोड़े से नीचे उतरते हुए अपने सेनापति का अभिवादन किया।

"वालेकुम सलाम, नायब। ख़ुश आमदीद। क्या ख़ुशख़बरी लाये हो?"

"ख़ाली हाथ नहीं लौटा हूं। चांदी लाया हूं, भेड़ों के रेवड़, घोड़े और क़ालीन भी। ताबासारान में बढ़िया क़ालीन बुने जाते हैं।"

"क्या कोई हसीना नहीं लाये?"

"हसीना भी लाया हूं। और वह भी बहुत ग़जब की! तुम्हारे लिये ही लाया हूं, इमाम।"

दोनों योद्धा कुछ देर तक एक-दूसरे को घूरते रहे। इसके बाद शामील ने कहा –

"तुम यह बताओ कि क्या मैं इस हसीना को अपने साथ लेकर लड़ने जाऊंगा? मुझे भेड़ों की नहीं, लोगों की ज़रूरत है। मुझे घोड़े नहीं, घुड़सवार चाहिये। तुम उनके पशु भगा लाये। ऐसा करके तुमने उनके दिलों को ठेस लगायी है और उन्हें हमारे खिलाफ़ कर दिया है। उन्हें हमारे सैनिक बनकर वीरगति को प्राप्त और घायल होनेवाले हमारे सैनिकों की जगह लेनी चाहिये थी। अब कौन उनकी जगह लेगा? अगर हाइदाक और ताबासारान के लोग हमारे साथ होते तो क्या हमारे साथ वैसी ही बीत सकती थी, जैसी साल्टी और गेर्गेबिल गांव के साथ बीती? क्या यह अच्छी बात है कि कुछ दाग़िस्तानी दूसरे दाग़िस्तानियों को लूटें?"

"लेकिन इमाम, वे लोग तो दूसरी ज़बान समझते ही नहीं!"

"क्या तुमने ख़ुद उनकी ज़बान समझने की कोशिश की? अगर समझ जाते तो कोड़े और बन्दूक़ से काम न लेते। क्या मेरे नायब लुटेरे हैं?"

"इमाम, मैं ख़ूंज़ह का रहनेवाला हाजी-मुरात हूं!"

"मैं भी गीमरी का रहनेवाला शामील हूं। केबेद-मुहम्मद तेलेतल और हुसैन चिरकेई का रहनेवाला है। इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है? अवार, हिंदाल्याल, कुमिक, लेज्गीन, लाक और तुम्हारे द्वारा लूटे गये हाइदाक तथा ताबासारान के लोग – हम सब एक ही दाग़िस्तान के बेटे हैं। हमें एक-दूसरे को समझना चाहिये। हम तो एक ही हाथ की उंगलियां हैं। घूंसा बनने के लिये सभी उंगलियों को बड़ी मजबूती से एक-दूसरी के साथ जुड़ जाना चाहिये। बहादुरी के लिये तुम्हारा शुक्रिया। बहादुरी के लिये तुम किसी भी इनाम के हक़दार हो। पगड़ी तुम्हारे सिर की शोभा बढ़ा रही है। लेकिन इस बार तुमने जो कुछ किया है, मैं इसका समर्थन नहीं कर सकता।"

"जब ऐसी ही पगड़ियां बांधे दूसरे लोगों ने लूट मचाई तब उनसे तो तुमने कुछ नहीं कहा, इमाम। लेकिन अब सभी का दोष मेरे मत्थे मढ़ा जा रहा है।"

"मैं जानता हूं तुम किसकी तरफ़ इशारा कर रहे हो, हाजी-मुरात, तुम्हारा अभिप्राय अख़बेर्दीलाव से है, मेरे बेटे काज़ी-मुहम्मद या ख़ुद मुझसे है। लेकिन अख़बेर्दीलाव ने मोज़्दोक में हमारे दुश्मन को लूटा था। मैंने उन ख़ानों की दौलत लूटी थी जो हमारा साथ नहीं देना चाहते थे और जिन्होंने हमारा विरोध तक करने की कोशिश की। नहीं, हाजी-मुरात। नायब बनने के लिये दिलेर दिल और तेज़ ख़ंजर ही काफ़ी नहीं। इसके लिये अच्छा दिमाग़ भी होना चाहिये।"

शामील और हाजी-मुरात के बीच इस तरह की बहसें अक्सर होती रहती थीं। अफ़वाहों के कारण ये झगड़े बढ़ते और अधिक उग्र रूप लेते गये और आख़िर द्वेषपूर्ण शत्रुता ने उन्हें अलग कर दिया। हाजी-मुरात शामील को छोड़कर शत्रु-पक्ष में चला गया और उसका सिर काट दिया गया। उसका शरीर नूख़ा में दफ़न है। उसके शरीर का यह बंटवारा भी बड़ा अर्थपूर्ण है—उसका सिर दुश्मन के पास चला गया और दिल दाग़िस्तान में रह गया। कैसा भाग्य था उसका।

हाजी-मुरात का सिर

कटा हुआ सिर देख रहा हूं
बहें ख़ून की धारायें,
मार-काट का शोर मचा है
लोग चैन कैसे पायें।

तेज़ धारवाली तलवारें
ऊंची-ऊंची लहरायें,

टेढ़ी और कठिन राहों पर
अब मुरीद बढ़ते जायें।

रक्त-सने सिर से यह पूछा –
"मुझे कृपा कर बतलाओ,
कीर्तिवान, तुम गये किस तरह
बेगानो में, समझाओ ?"

"मैं तो सिर हाजी-मुरात का
भेद न मुझे छिपाना है,
भटका कभी, कटा सिर मेरा
यही मुझे बतलाना है।

ग़लत राह पर चला कभी मैं
मैं घमंड का था मारा..."
देख रहा था यह भटका सिर
कटा पड़ा जो बेचारा।

पुरुष पर्वतों में जो जन्मे
बेशक दूर-दूर जायें,
हम ज़िन्दा या बेशक मुर्दा
आख़िर लौट यहीं आयें।

इमाम शामील को दाग़िस्तान से ले जाया गया। सभी ओर तोपें और बन्दूक़ें चलाने के झरोखोंवाले दुर्ग बना दिये गये। इन झरोखों में से तोपों और बन्दूक़ों के मुंह बाहर निकले रहते थे। यद्यपि वे गोले-गोलियां नहीं चलाती थीं, तथापि यह कहती प्रतीत होती थीं – "शान्ति से बैठे रहो, पहाड़ी लोगो, ढंग से बर्ताव करो, किसी तरह का ऊधम नहीं मचाओ।"

दुख में डूबे हुए यहां के पर्वतवासी
दुख में डूबी नदियां, पक्षी, सभी जानवर
ऐसे लगता नहीं कहीं विस्तार यहां पर
सिर्फ़ मौत ही काल-कोठरी से है बाहर।

"जंगलियों की धरती," एक गवर्नर ने दाग़िस्तान से जाते हुए कहा। "ये धरती पर नहीं, खड्ड में रहते हैं," दूसरे ने लिखा।

"इन असभ्य आदिवासियों के पास जो धरती है, वह भी फालतू है," तीसरे ने पुष्टि की।

किन्तु उस बुरे वक़्त में भी दाग़िस्तान के पक्ष में लेर्मोन्तोव, दोब्रोल्यूबोव, चेर्नीशेव्स्की, बेस्तूजेव-मारलीन्स्की और पिरोगोव की आवाज़ें सुनायी दीं... हां, ज़ारकालीन रूस में भी ऐसे लोग थे जो पहाड़ी लोगों की आत्मा को समझते थे, जिन्होंने दाग़िस्तान के जनगण के बारे में कुछ अच्छे शब्द कहे। काश, पहाड़ी लोग उस वक़्त उनकी भाषा समझ सकते!

शाश्वत हिम की चादर पर्वतमाला पर
शाश्वत रात, अन्धेरा है उनके ऊपर,–

अपनी मातृभूमि को देखते हुए सुलेमान स्ताल्स्की ने कभी कहा था।

"दाग़िस्तान को जबसे काल-कोठरी में बन्द कर दिया गया है, साल के हर महीने के इकतीस दिन होते हैं," मेरे पिता जी ने कभी लिखा था।

"पर्वतो, हम तुम्हारे साथ तहखाने में बन्द हैं," अबुतालिब ने कभी कहा था।

"ऐसे दुख से तो पहाड़ों में पहाड़ी बकरा भी उदास हो रहा है," अनख़ील मारीन ने कभी गाया था।

"इस दुनिया के बारे में तो सोचना ही व्यर्थ है। जिसका भोजन ज़्यादा घीवाला है, उसी की अधिक ख्याति है," महमूद ने निराशा से कहा था।

"सुख कहीं नहीं है," कुबाची के रहनेवाले अहमद मुंगी ने सारी दुनिया का चक्कर लगाने के बाद यह निष्कर्ष निकाला।

किन्तु इसी समय इरची कज़ाक ने लिखा–"दाग़िस्तान के मर्द को तो हर जगह दाग़िस्तान का मर्द होना चाहिये।"

मरने से पहले बातिराय ने यह लिखा—"बहादुरों के यहां बुज़दिल बेटे न पैदा हों।"

उसी महमूद ने यह गाया—

अगर पहाड़ी बकरा तम में और पहाड़ों में खो जाये
वह या तो पगडंडी ढूंढ़े या फिर मृत्यु को गले लगाये।

उसी अबुतालिब ने यह भी कहा था—"इस दुनिया में अब धमाका हुआ कि हुआ। यही अच्छा है कि यह धमाका ज़्यादा ज़ोर से हो।"

और वह वक़्त आया—ज़ोर का धमाका हुआ। धमाका तो दूर हुआ, उसी समय दाग़िस्तान तक उसकी गूंज नहीं पहुंची, फिर भी सब कुछ स्पष्ट दिखाई देनेवाले लाल निशान से वह दो हिस्सों में बंट गया था—उसका इतिहास, भाग्य, हर व्यक्ति का जीवन, पूरी मानवजाति! क्रोध और प्यार, विचार और सपने—सभी कुछ दो भागों में बंट गया।

"धमाका हो गया! .."

"कहां हुआ धमाका?"

"पूरे रूस में।"

"किस चीज़ का धमाका हुआ?"

"क्रान्ति का।"

"किसकी क्रान्ति का?"

"मेहनतकशों की क्रान्ति का।"

"उसका लक्ष्य?"

"जो थे ख़ाली हाथ, अब सब चीज़ों के नाथ।"

"उसका रंग कौन-सा है?"

"लाल।"

"उसका गाना क्या है?"

"'यह जंग आख़िरी और निर्णायक जंग है'।"*

* 'इंटरनेशनल' गीत की एक पंक्ति।—अनु०

"उसकी सेना?"

"सभी भूखे और दीन-दुखिया। श्रम की महान सेना।"

"उसकी भाषा, उसकी जाति?"

"सभी भाषायें, सभी जातियां।"

"उसका नेता?"

"लेनिन।"

"दाग़िस्तान के पहाड़ी लोगों से क्रान्ति क्या कहती है? अनुवाद करके हमें बताइये।"

नायकों और गायकों ने दाग़िस्तान की सभी भाषाओं-बोलियों में अनुवाद कर दिया—

"सदियों से उत्पीड़ित दाग़िस्तान के जनगण! टेढ़ी-मेढ़ी पहाड़ी पगडंडियों से हमारे घरों, हमारे खेतों में क्रान्ति आई है। उसे सुनिये और अपने को उसकी सेवा में अर्पित कीजिये। वह आपसे ऐसे शब्द कहती है जो आपने कभी नहीं सुने। वह कहती है—

"भाइयो! नया रूस आपकी तरफ़ दोस्ती का हाथ बढ़ाता है। उस हाथ को थाम लीजिये, बड़े तपाक से अपना हाथ उसके हाथ से मिलाइये, उसी में आपकी शक्ति और विश्वास निहित है।

"घाटियों और पर्वतों के बेटे-बेटियो! बड़ी दुनिया की ओर खिड़कियां खोलिये। नया दिन नहीं, बल्कि नये भाग्य का श्रीगणेश हो रहा है। इस भाग्य का स्वागत कीजिये!

"अब आपको शक्तिशालियों के लिये अपनी कमर नहीं तोड़नी होगी। अब से पराये लोग आपके घोड़ों पर सवारी नहीं करेंगे। अब आपके घोड़े—आपके घोड़े होंगे, आपके खंजर—आपके खंजर होंगे, आपके खेत—आपके खेत होंगे, आपकी आज़ादी—आपकी आज़ादी होगी।"

'अव्रोरा' जहाज़ पर अक्तूबर क्रान्ति के आरम्भ का संकेत देनेवाली तोप की गरज का दाग़िस्तान के जनगण की भाषाओं में उपर्युक्त अनुवाद किया गया। इसे अनूदित किया मखाच, उल्लूबी,

ओस्कार, जलाल, काज़ी-मुहम्मद, मुहम्मद-मिर्ज़ा, हारू और क्रान्ति के अन्य मुरीदों ने जो दाग़िस्तान के दुख-दर्दों से भली-भांति परिचित थे।

और दाग़िस्तान अपने भाग्य के स्वागत के लिये बढ़ा। पहाड़ी लोगों ने क्रान्ति के रंग और उसके गीतों को अपना लिया। किन्तु क्रान्ति के शत्रु भयभीत हो उठे। यह तो उन्हीं के सिरों के ऊपर बिजली कड़क उठी थी, उन्हीं के पांवों तले धरती हिल गयी थी, उन्हीं के सामने सागर में भयानक तूफ़ान आ गया था, उन्हीं की पीठों के पीछे चट्टानें टूट पड़ी थीं। पुरानी दुनिया ज़ोर से कांपी और ढह गयी। एक बहुत गहरी खाई बन गयी।

"अपना हाथ हमारी ओर बढ़ाओ!" क्रान्ति के दुश्मनों ने अपने को दाग़िस्तान के दोस्त बताते हुए कहा।

"आपके हाथ ख़ून से सने हुए हैं।"

"ज़रा रुको, तुम उधर नहीं जाओ, पीछे मुड़कर देखो, दाग़िस्तान!"

"किस चीज़ को पीछे मुड़कर देखा जाये, क्या है पीछे देखने को? ग़रीबी, झूठ, अन्धेरा और ख़ून।"

"छोटे-से दाग़िस्तान! किधर चल दिये तुम?"

"कुछ बड़ा खोजने को।"

"महासागर में तुम एक छोटी-सी नाव जैसे होगे। तुम कहीं के नहीं रहोगे। तुम्हारी भाषा, तुम्हारा धर्म, तुम्हारा रंग-ढंग, तुम्हारी समूरी टोपी, तुम्हारा सिर–इनमें से कुछ भी तो बाक़ी नहीं रहेगा!" इन लोगों ने धमकी दी।

"मैं तंग पगडंडियों पर चलने का आदी हूं। क्या अब चौड़े रास्ते पर अपना पांव तोड़ लूंगा? बहुत अरसे से मैं इस रास्ते की खोज कर रहा था। मेरा एक बाल भी बांका नहीं होगा।"

"दाग़िस्तान धर्मभ्रष्ट हो गया। वह नष्ट हो रहा है। दाग़िस्तान को बचाइये!" कौवों ने कांय-कांय की, भेड़िये चीखे-चिल्लाये। ख़ूब शोर मचाया गया, धमकियां दी गयीं, मिन्नतें और हत्यायें की गयीं, छल-कपट किया गया। क्रान्ति का जो दीप

जल उठा था, उसे बुझाने की कितनी कोशिशें नहीं की गयीं! इस महान पुल को जला डालने के कितने प्रयास नहीं किये गये! एक के बाद एक झण्डा बदला, एक के बाद एक लुटेरा आया। जाड़े की बेहद ठण्डी रात में समूर के कोट की भांति उन्होंने छोटे-से दाग़िस्तान को अपनी-अपनी तरफ़ खींचा, उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। और वह जंजीर से मुक्त होनेवाले पहाड़ी बकरे की तरह कभी एक तो कभी दूसरी दिशा में भागता रहा। हर कोई हिंसक जैसी तीव्र चाह से उसे पकड़ने के लिये उसपर झपट रहा था। कैसे-कैसे शिकारियों ने उसपर अपनी गोलियां नहीं चलायीं!

"मैं दाग़िस्तान का इमाम नज्मुद्दीन गोत्सीन्स्की हूं जिसे आंदी की झील के तट पर लोगों ने चुना है। मेरी तलवार ऐसी समूरी टोपियों की तलाश में है जिनपर लाल कपड़े के टुकड़े लगे हुए हैं!" "एक ही धर्म के माननेवालो, मुसलमान भाइयो! मेरे पीछे-पीछे आइये! मैंने ही इसलाम का हरा झण्डा ऊपर उठाया है!" एक अन्य व्यक्ति बड़े ज़ोर से चिल्लाकर ऐसा कहता था। उसका नाम था उज़ून-हाजी।

"जब तक मैं आख़िरी बोल्शेविक का सिर बांस पर लटकाकर दाग़िस्तान के सबसे ऊंचे पर्वत पर उसे प्रदर्शित नहीं कर दूंगा, तब तक अपनी बन्दूक़ को खूंटी पर नहीं लटकाऊंगा!" प्रिंस नूहबेक तारकोव्स्की यह शोर मचाया करता था।

इसी साल ज़ार की फ़ौज के कर्नल काइतमाज़ अलीख़ानोव ने खूंज़ह में अपने लिये एक महल बनवाया। उसने एक पहाड़िये को अपना घर दिखाने के लिये अपने यहां बुलाया। ख़ुद अपने पर और महल पर मुग्ध होते हुए काइतमाज़ ने पूछा—

"कहो, बढ़िया है न मेरा महल?"

"मरते आदमी के लिये तो बहुत ही बढ़िया है," पहाड़ी आदमी ने जवाब दिया।

"मेरे मरने का भला क्या सवाल पैदा होता है?"

"क्रान्ति..."

"मैं उसे खूंजह में नहीं आने दूंगा!" कर्नल अलीख़ानोव

ने जवाब दिया और उछलकर तेज़, सफ़ेद घोड़े पर सवार हो गया।

"मैं सईदबेई हूं – इमाम शामील का सगा पोता। मैं तुर्की के सुलतान की तरफ़ से यहां आया हूं ताकि उसके बहादुरों की मदद से दाग़िस्तान को आज़ाद कराऊं," बाहर से आनेवाले इस एक अन्य व्यक्ति ने ऐसी घोषणा की और उसके साथ सभी तरह के तुर्क पाशा तथा बेई थे।

"हम दाग़िस्तान के दोस्त हैं," हस्तक्षेपकारियों ने चिल्लाकर कहा और दाग़िस्तान की धरती पर तोड़-फोड़ की कार्रवाइयां करनेवाले बर्तानवी फ़ौजी आ धमके।

"दाग़िस्तान – यह बाकू का फाटक है। इस फाटक पर मैं मज़बूत ताला लगा दूंगा!" ज़ार की सेना के कर्नल बिचेराख़ोव ने डींग हांकी और पोर्ट-पेत्रोव्स्क को तबाह कर डाला।

बहुत-से बिन बुलाये मेहमान आये। किसके-किसके गन्दे हाथ ने दाग़िस्तान की छाती पर क़मीज़ को नहीं फाड़ा! कैसे-कैसे झण्डों की यहां झलक नहीं मिली! कैसी-कैसी हवायें नहीं चलीं! कैसी-कैसी लहरें पत्थरों से नहीं टकरायीं!

"दाग़िस्तान, अगर तुम हमारी बात नहीं मानोगे, तो हम तुम्हें धकियाकर समुद्र में डुबो देंगे!" बाहर से आनेवालों ने धमकी दी।

मेरे पिता जी ने उस वक़्त लिखा था – "दाग़िस्तान ऐसे जानवर के समान है जिसे सभी ओर से परिन्दे नोचते हैं।"

गोलाबारी हुई, आग की लपटें उठीं, ख़ून बहा, चट्टानों से धुआं उठा, फ़सलें जलीं, गांव तबाह हुए, बीमारियों ने लोगों की जानें लीं, दुर्ग कभी एक के हाथ में और कभी दूसरे के हाथ में जाते रहे। यह सब कुछ चार साल तक चलता रहा।

"खेत बेचकर घोड़ा ख़रीदा, गाय बेचकर तलवार ख़रीदी," पहाड़ी लोग उन दिनों ऐसा कहते थे।

सवारों को खोकर घोड़े हिनहिनाते थे। कौवे मुर्दों की आंखें निकालते थे।

मेरे पिता जी ने उस समय के दाग़िस्तान की ऐसे पत्थर से तुलना की थी जिसके क़रीब से अनेक नदियां शोर मचाती हुई गुजरी हों। मेरी मां ने अनेक तूफ़ानी धाराओं के प्रतिकूल जानेवाली मछली के साथ उसकी तुलना की थी।

अबुतालिब ने याद करते हुए लिखा था–"हमारे देश ने कैसे-कैसे ज़ुरनावादकों को नहीं देखा!" खुद अबुतालिब छापामार दस्ते का ज़ुरनावादक था।

अब लेखनियों से उस क़िस्से, उस कहानी को लिखा जाता है जो तलवारों से लिखी गयी थी। अब उन दिनों का अध्ययन करते हुए ख्याति और बहादुरी के कारनामों को तुला पर तौला जाता है। वीरों-नायकों का मूल्यांकन करते हुए विद्वान आपस में बहस करते हैं, हम कह सकते हैं कि वे आपस में जूझते हैं।

पर ख़ैर, वीरों ने लड़ाई लड़ ली। मेरे लिये सचमुच इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि इनमें से किसको पहला, दूसरा या तीसरा स्थान दिया जाये। अधिक महत्त्वपूर्ण तो यह चीज़ है कि क्रान्ति ने चेर्केस्का के पल्लू से मौत के घाट उतारे गये अपने अन्तिम शत्रु का खून पोंछकर खंजर को म्यान में रख लिया। पहाड़ी आदमी ने इससे हंसिया बना लिया। अपनी नुकीली संगीन को उसने पहाड़ी ढाल पर पत्थरों के बीच खोंस दिया। हल में अपनी ताक़त लगाते हुए वह अपनी धरती को जोतने लगा, बैलों को हांकते हुए अपने खेत से घास को बैल-गाड़ी पर लादकर ले जाने लगा।

पहाड़ की चोटी पर लाल झण्डा फहराकर दाग़िस्तान ने अपनी मूंछों पर ताव दिया। नक़ली इमाम गोत्सीन्स्की की पगड़ी से उसने कौवों-चिड़ियों को डरानेवाला पुतला बनाकर खेत में खड़ा कर दिया और खुद इमाम को तो इन्कलाब ने सजा दी। गोत्सीन्स्की अदालत में गिड़गिड़ाता रहा था–"गोरे ज़ार ने शामील को ज़िन्दा छोड़ दिया था। उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा था। आप लोग मुझे क्यों मौत की सज़ा दे रहे हैं?"

दाग़िस्तान और क्रान्ति ने उसे जवाब दिया–तुम्हारे जैसे का

तो शामील ने भी सिर काट डाला होता। वह कहा करता था—"ग़द्दार का तो धरती के ऊपर रहने के बजाय उसके नीचे होना कहीं ज्यादा अच्छा है।" हां, उसे सज़ा दी गयी, एक भी पहाड़ी नहीं कांपी, किसी ने भी आंसू नहीं बहाये, किसी ने भी उसकी क़ब्र पर याद का पत्थर नहीं लगाया।

काइतमाज अलीख़ानोव अपने सफ़ेद घोड़े पर सवार होकर त्सूनती इलाक़े के वनों में से भाग चला। उसके दो बेटे भी उसके साथ भाग रहे थे। किन्तु वे लाल छापेमारों की गोलियों के शिकार हो गये। कर्नल का सफ़ेद घोड़ा उदास होता और एक टांग से लंगड़ाता हुआ ख़ूंज़ह के दुर्ग में वापस लौट गया।

"तुम्हें ग़लत रास्ते पर छोड़ दिया था उन्होंने," मुसलिम अतायेव ने बेचारे घोड़े से कहा। "वे तो दाग़िस्तान को भी उसी रास्ते पर ले जाना चाहते थे।"

बिचेराख़ोव को भी भगा दिया गया। उसके जहां-तहां बिखरे हुए सैनिक दस्ते कास्पी की लहरों में डूब गये। "अमीन," उन्हें अपने नीचे छिपाते हुए लहरों ने कहा। "अमीन," पहाड़ कह उठे, "अल्लाह करे कि वे जहन्नुम में चले जायें जो इस धरती पर जहन्नुम बना रहे थे।"

इस्तम्बूल में मैं बाज़ार में गया। मेरे इर्द-गिर्द जमा भूतपूर्व अवार लोगों ने मुझे भीड़ में से जाता हुआ एक बूढ़ा दिखाया। वह ऐसी बोरी जैसा लगता था जिसमें से अनाज के दाने निकलकर बाहर गिर गये हों।

"यह काज़िमबेई है।"

"कौन-सा काज़िमबेई?"

"वह, जो तुर्की के सुलतान की सेनायें लेकर दाग़िस्तान गया था।"

"क्या वह अभी तक ज़िन्दा है?"

"जैसा कि देख रहे हैं, उसका जिस्म तो अभी तक ज़िन्दा है।"

हमारा परिचय करवाया गया।

"दाग़िस्तान... मैं जानता हूं उस देश को," बूढ़े खूसट ने कहा।

"आपको भी दाग़िस्तान में जानते हैं," मैंने जवाब दिया।

"हां, मैं वहां गया था।"

"फिर जायेंगे?" मैंने जान-बूझकर पूछा।

"अब कभी नहीं जाऊंगा," उसने जवाब दिया और जल्दी से अपनी दुकान की तरफ़ चला गया।

इस्तम्बूल के बाज़ार का यह छोटा-सा दुकानदार क्या यह भूल गया है कि कासूमकेंट में कैसे उसने खेत में ही तीन शान्तिप्रिय हलवाहों को मार डाला था? क्या इसे पहाड़ों में वह चट्टान याद नहीं है जहां से एक पहाड़ी युवती इसलिये खड्ड में कूद गयी थी कि तुर्क सिपाहियों के हाथों में न पड़े? क्या इस दुकानदार को यह याद नहीं कि कैसे बाग़ में से एक छोकरे को उसके सामने लाया गया था, कैसे उसने उसकी चेरियां छीन ली थीं और गुठली को उसकी आंख में थूक दिया था? लेकिन ख़ैर, वह यह तो नहीं भूला होगा कि कैसे अंडरवियर पहने हुए भागा था और एक पहाड़ी औरत ने पीछे से पुकारकर कहा था—"अरे, आप अपनी समूर की टोपी तो भूल ही गये!"

तोड़-फोड़ की कार्रवाइयां करनेवाले दाग़िस्तान से भाग गये। काज़िमबेई भी भाग गया, शामील का पोता सईदबेई भी भाग गया।

"सईदबेई अब कहां है?" मैंने इस्तम्बूल में पूछा।

"साउदी अरब चला गया।"

"किसलिये?"

"व्यापार करने के लिये वहां उसकी थोड़ी-सी ज़मीन है।"

व्यापारियो! आपको दाग़िस्तान में व्यापार करने का मौक़ा नहीं मिला। क्रान्ति ने कहा—"बाज़ार बन्द है।" ख़ून में भीगी झाड़ू से उसने पहाड़ी धरती से सारा कूड़ा-करकट साफ़ कर दिया। अब तो दाग़िस्तान के तथाकथित रक्षकों और बचानेवालों के पंजर ही पराये देशों में भटकते फिरते हैं।

कुछ साल पहले बेरूत में एशिया और अफ़्रीका के लेखकों का सम्मेलन हुआ। मुझे भी इस सम्मेलन में भेजा गया। मुझे सम्मेलन में ही नहीं, कभी-कभी उन दूसरी जगहों पर भी बोलना पड़ा, जहां हमें बुलाया गया। ऐसी ही एक सभा में मैंने अपने दाग़िस्तान, अपने यहां के लोगों और रीति-रिवाजों की चर्चा की, दाग़िस्तान के विभिन्न कवियों की और अपनी कवितायें भी सुनायीं।

इस सभा की समाप्ति पर एक सुन्दर और जवान औरत ने मुझे सीढ़ियों के क़रीब रोक लिया।

"जनाब हम्ज़ातोव, मैं आपके साथ कुछ बातचीत कर सकती हूं, आप अपना कुछ वक़्त मुझे दे सकते हैं?"

हम शाम की चादर में लिपटी बेरूत की सड़कों पर चल पड़े।

"दाग़िस्तान के बारे में बताइये। कृपया सभी कुछ," अचानक ही मेरे साथ चलनेवाली इस औरत ने अनुरोध किया।

"मैं तो अभी पूरे एक घण्टे तक यही बताता रहा हूं।"

"और बताइये, और बताइये!"

"किस चीज़ में आपकी ज़्यादा दिलचस्पी है?"

"हर चीज़ में! दाग़िस्तान से सम्बन्धित सभी चीज़ों में!"

मैंने बताना शुरू किया। हम इधर-उधर घूमते रहे। मेरा वर्णन समाप्त होने के पहले ही वह फिर से अनुरोध करने लगती –

"और बताइये, और बताइये।"

मैं बताता रहा।

"अवार भाषा में अपनी कवितायें सुनाइये।"

"लेकिन आप तो उन्हें नहीं समझेंगी!"

"फिर भी सुनाइये।"

मैंने कवितायें सुनायीं। जब सुन्दर और जवान औरत किसी बात के लिये अनुरोध करे तो हम क्या कुछ नहीं करते। फिर उसकी आवाज़ में दाग़िस्तान के प्रति ऐसी सच्ची दिलचस्पी की अनुभूति हो रही थी कि इन्कार करना सम्भव नहीं था।

"आप कोई अवार गाना नहीं गायेंगे ?"

"अजी नहीं। मुझे गाना नहीं आता।"

"अभी यह मुझे नाचने को भी मजबूर करेगी," मैंने सोचा।

"आप चाहें तो मैं गाऊं ?"

"बड़ी मेहरबानी होगी।"

इसी समय हम सागर-तट पर पहुंच गये थे। उजली चांदनी में सागर हरी-सी झलक दिखाता हुआ चमक रहा था।

तो सुदूर बेरूत में एक अपरिचित सुन्दरी समझ में न आनेवाली भाषा में मुझे दाग़िस्तानी 'दालालाई' गाना सुनाने लगी। किन्तु जब वह दूसरा गाना गाने लगी तो मैं समझ गया कि वह कुमिक भाषा में गा रही है।

"आप कुमिक भाषा कैसे जानती हैं ?" मैंने हैरान होते हुए पूछा।

"बदक़िस्मती से मैं उसे नहीं जानती।"

"लेकिन गाना ..."

"यह गाना तो मुझे मेरे दादा ने सिखाया था।"

"वह क्या दाग़िस्तान गये थे ?"

"हां, एक तरह से गये थे।"

"बहुत पहले ?"

"बात यह है कि नूहबेक तारकोव्स्की मेरे दादा थे।"

"कर्नल ?! अब कहां हैं वह ?"

"वह तेहरान में रहते थे। इस साल चल बसे। मरते वक़्त वह लगातार मुझसे यही गाना गाने को कहते रहे।"

"किस बारे में है यह गाना ?"

"मौसमी परिन्दों के बारे में... उन्होंने मुझे एक दाग़िस्तानी नाच भी सिखाया था। देखिये !"

यह औरत नये चांद की तरह चमक उठी, उसने बड़ी लोच से हाथ फैलाये और झील में तैरनेवाली हंसिनी की तरह चक्कर काटने लगी।

कुछ देर बाद मैंने उससे मौसमी परिन्दों के बारे में फिर से

गाना सुनाने की प्रार्थना की। उसने मुझे गाने के शब्दों का अर्थ भी बताया। होटल में लौटकर मैंने याददाश्त के आधार पर अवार भाषा में अनुवाद करके इस गाने को लिख लिया।

हां, दाग़िस्तान में वसन्त आ गया है। लेकिन मैं लगातार यह सोचता रहता हूं कि प्रिंस नूहबेक तारकोव्स्की का मौसमी परिन्दों के बारे में इस गाने से क्या सम्बन्ध हो सकता है? तेहरान में रहनेवाले उस कर्नल को, जो क्रान्तिकारी क्षेत्र और दाग़िस्तान के प्रतिशोध से बचकर भागा था, किसलिये पहाड़ों के क्रान्तिकारी लाल सूरज की याद आती थी? उसे कैसे मातृभूमि से जुदाई की तड़प महसूस हो सकती थी?

ईरान में रहते हुए शुरू में तो तारकोव्स्की यह कहता रहा–"मेरे और दाग़िस्तान के साथ जो कुछ हुआ है, वह भाग्य की भूल है और इस भूल को सुधारने के लिये मैं वहां वापस जाऊंगा।" तारकोव्स्की और उसके साथ अन्य प्रवासी भी हर दिन कास्पी सागर के तट पर जाते थे ताकि दाग़िस्तान से आनेवाली कोई खबर जान सकें। लेकिन उन्हें हर बार ही यह देखने को मिलता कि कास्पी सागर से आनेवाले जहाज़ों के मस्तूलों पर लाल झण्डे लहरा रहे हैं। पतझर में उत्तर से उड़कर आनेवाले पक्षियों को देखकर मातृभूमि की याद में हूक महसूस करते हुए उसकी पत्नी गाने गाती। वह मौसमी पक्षियों के बारे में उपर्युक्त गाना भी गाती। शुरू में तो प्रिंस तारकोव्स्की को यह गाना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था।

साल बीतते गये। बच्चे बड़े हो गये। कर्नल तारकोव्स्की बूढ़ा हो गया। वह समझ गया कि अब कभी भी दाग़िस्तान नहीं लौट सकेगा। उसकी समझ में यह बात आ गयी कि दाग़िस्तान का दूसरा ही भाग्य है, कि दाग़िस्तान ने खुद ही अपने लिये यह एकमात्र और सही रास्ता चुना है। तब बूढ़ा प्रिंस भी मौसमी परिन्दों के बारे में यह गाना गाने लगा।

पिता जी कहा करते थे–

"दाग़िस्तान उनका साथ नहीं देगा जिन्होंने दाग़िस्तान का साथ नहीं दिया।"

अबुतालिब इसमें जोड़ा करता था–

"जो पराये घोड़े पर सवार होता है, वह जल्द ही नीचे गिर जाता है। हमारा खंजर किसी दूसरे की पोशाक के साथ शोभा नहीं देता।"

सुलेमान स्ताल्स्की ने लिखा था–

"मैं ज़मीन में दबे हुए खंजर के समान था। सोवियत सत्ता ने मुझे बाहर निकाला, मेरा ज़ंग साफ़ कर दिया और मैं चमक उठा।"

पिता जी यह भी कहा करते थे–

"हम बेशक हमेशा ही पहाड़ी लोग थे, मगर पहाड़ की चोटी पर केवल अभी चढ़े हैं।"

अबुतालिब कहा करता था–

"दाग़िस्तान, तहखाने से बाहर निकल आ!"

पालना झुलाते हुए मेरी अम्मां गाया करती थीं–

बड़े चैन से सोओ बेटा, शान्ति पहाड़ों में आयी
कहीं गोलियों की आवाज़ें देतीं नहीं सुनायी।

"फ़रवरी का महीना सबसे छोटा, मगर कितना महत्त्वपूर्ण है," अबुतालिब का ही कहना था, "फ़रवरी में ज़ार का तख़्ता उलटा गया, फ़रवरी में लाल सेना बनी और फ़रवरी में ही लेनिन पहाड़ी लोगों के प्रतिनिधिमण्डल से मिले।"

इसी समय दूरस्थ रुगूजा गांव में नारियों ने लेनिन के बारे में एक गाना रचा–

तुमने ही तो सबसे पहले आ, इन्सान कहा हमको
अस्त्र विजय का तुमने ही तो पहले पहल दिया हमको,
सुन उक़ाब की चीख जिस तरह उड़ जाते कलहंस कहीं
उदय लेनिनी सूर्य हुआ तो रातें काली नहीं रहीं।

हमारे छोटे-से जनगण का बड़ा भाग्य है। दाग़िस्तान के पक्षी गाते हैं। क्रान्ति के सपूतों के शब्द गूंजते हैं। बच्चे उनकी चर्चा करते हैं। उनकी क़ब्रों के पत्थरों पर उनके नाम खुदे हुए हैं। लेकिन कुछ वीरों की क़ब्रें अज्ञात हैं।

शान्त रात में मुझे दाग़िस्तान की सड़कों पर घूमना अच्छा लगता है। जब मैं सड़कों के नाम पढ़ता हूं तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि फिर से हमारे जनतन्त्र की क्रान्तिकारी समिति की बैठक हो रही है। मखाच दाखादायेव! मुझे उसकी आवाज़ सुनायी देती है—"हम क्रान्ति के संघर्षकर्त्ता हैं। हमारी भाषायें, हमारे नाम और मिज़ाज—अलग-अलग हैं। मगर एक चीज़ हम सबमें सामान्य है—क्रान्ति और दाग़िस्तान के प्रति निष्ठा। क्रान्ति और दाग़िस्तान के लिये हममें से कोई भी न तो अपना ख़ून और न ज़िन्दगी क़ुर्बान करने से ही हिचकेगा।"

प्रिंस तारकोव्स्की के दस्ते के बदमाशों ने मखाच की हत्या कर डाली थी।

उल्लूबी बुइनाकस्की—मुझे उसकी आवाज़ सुनाई दे रही है—"दुश्मन मुझे मार डालेंगे। वे मेरे दोस्तों की भी हत्यायें कर देंगे। किन्तु एक घूंसे के रूप में बंधी हुई हमारी उंगलियों को कोई भी अलग नहीं कर सकेगा। यह घूंसा भारी और भरोसे का है, क्योंकि दाग़िस्तान के दुख-दर्दों और क्रान्ति के विचारों ने उसे घूंसे का रूप दिया है। वह उत्पीड़कों की शामत ला देगा। यह जान लीजिये।"

देनीकिन के सैनिकों ने दाग़िस्तान के जवान कम्युनिस्ट, अट्ठाईस वर्ष के उल्लूबी की हत्या कर डाली। उन्होंने उसे रेगिस्तान में मारा था। अब वहां पोस्त के फूल खिलते हैं।

मुझे ओस्कार लेश्चीन्स्की, काज़ी-मुहम्मद, अगासीयेव, हारूं सईदोव, अलीबेक बगातीरोव, साफ़ार दुदारोव, सोल्तन-सईद कज़्बेकोव, पिता-पुत्र बातिरमुर्ज़ायेव, ओमारोव-चोखस्की की आवाज़ें भी सुनायी देती हैं। बहुत बड़ी संख्या है उनकी, जिनकी हत्या की गयी। किन्तु हर नाम ज्वाला है, चमकता सितारा और गीत है।

वे सभी वीर हैं जो चिर युवा बने रहेंगे। वे हमारे दाग़िस्तान के चापायेव, शोर्स और शाउम्यान हैं। आख़्ती, आया-काका के दर्रे, कासूमकेंट के जलप्रपात, ख़ूंज़ह दुर्ग की दीवार के पीछे, जला दिये गये हासाव्यूर्त और प्राचीन देर्बेन्त में उनकी जानें गयीं। अराकान दर्रे में एक भी ऐसा पत्थर नहीं है जो दाग़िस्तान के कमिस्सारों के ख़ून से लथ-पथ न हुआ हो। मोचोख़ पर्वतमाला में ही बगातीरोव को फांसने के लिये फ़ौजी फन्दे की व्यवस्था की गयी थी। तेमीरख़ान-शूरा, पोर्ट-पेत्रोव्स्क और चारों कोइसू नदियों ने भी, जहां अब शहीदों की याद में फूल फेंके जाते हैं, ख़ून बहता देखा था। एक लाख दाग़िस्तानी—कम्युनिस्ट और पार्टीज़ान या छापामार खेत रहे। किन्तु दूसरे जनगण दाग़िस्तान के बारे में जान गये। लाखों-लाख लोगों ने लाल दाग़िस्तान की ओर दोस्ती के हाथ बढ़ाये। इन मैत्रीपूर्ण हाथों की गर्मी अनुभव करके दाग़िस्तान के लोगों ने कहा—"अब हमारी संख्या कम नहीं है।"

युद्ध से लोगों का जन्म नहीं होता। किन्तु क्रान्तिकारी लड़ाइयों की आग में नये दाग़िस्तान का जन्म हुआ।

१३ नवम्बर, १६२० को दाग़िस्तान के जनगण की पहली असाधारण कांग्रेस हुई। इस कांग्रेस में रूसी संघ की सरकार की ओर से स्तालिन ने भाषण दिया। उन्होंने पर्वतीय देश—दाग़िस्तान—को स्वायत्त घोषित किया। नया नाम, नया मार्ग, नया भाग्य।

जल्द ही दाग़िस्तान के जनगण को एक उपहार मिला। लेनिन ने "लाल दाग़िस्तान के लिये" ये शब्द लिखकर अपना फ़ोटो भेजा। कुबाची के सुनारों और उन्त्सूकूल के लकड़ी पर नक़्क़ाशी करनेवालों ने इस छविचित्र के लिये अद्भुत चौखटा बनाया। इसी साल मखाचकला के बन्दरगाह से 'लाल दाग़िस्तान' नाम का नया जहाज़ पानी में उतरा। किन्तु स्वयं दाग़िस्तान ही अब एक ऐसे शक्तिशाली जहाज़ जैसा था जो बहुत बड़े और नये सफ़र पर रवाना हुआ था।

'भोर का तारा'–दाग़िस्तान की पहली पत्रिका को यही नाम दिया गया था। दाग़िस्तान में सुबह हो गयी थी। विस्तृत संसार की ओर खिड़की खुल गयी थी।

गृह-युद्ध के कठिन दिनों में, जब पहाड़ों में गोत्सीन्स्की के फ़ौजी दस्तों का बोलबाला था, मेरे पिता जी को मदरसे के अपने एक सहपाठी का पत्र मिला।

इस पत्र में भूतपूर्व सहपाठी ने नज्मुद्दीन गोत्सीन्स्की और उसकी फ़ौजों की चर्चा की थी। पत्र के अन्त में लिखा था–"इमाम नज्मुद्दीन तुमसे नाखुश है। मुझे लगा कि उसकी बड़ी इच्छा है कि तुम पहाड़ी ग़रीबों को सम्बोधित करते हुए कवितायें लिखो जिनमें इमाम के बारे में सचाई बताओ। मैंने तुम्हारे साथ सम्पर्क स्थापित करने की ज़िम्मेदारी ली है और उसे यह वचन दिया है कि तुम ऐसा कर दोगे। तुमसे अपना अनुरोध और इमाम की इच्छा पूरी करने का आग्रह करता हूं। नज्मुद्दीन तुम्हारे जवाब के इन्तज़ार में है।"

पिता जी ने उत्तर दिया–"अगर तुमने अपने ऊपर ऐसी ज़िम्मेदारी ली है तो तुम ही नज्मुद्दीन के बारे में कविता लिखो। जहां तक मेरा सम्बन्ध है तो मैं उसकी पनचक्की को चलाने के लिये पानी पहुंचाने का इरादा नहीं रखता हूं। वाससलाम, वाकलाम ..."

इसी वक़्त बोल्शेविक मुहम्मद-मिर्ज़ा खिज़रोयेव ने पिता जी को तेमीरखान-शूरा से निकलनेवाले 'लाल पर्वत' समाचारपत्र के साथ सहयोग करने को बुलाया। इसी समाचारपत्र में पिता जी की कविता 'पहाड़ी ग़रीबों से अपील' प्रकाशित हुई।

पिता जी नये दाग़िस्तान के बारे में लिखते रहे, 'लाल पर्वत' समाचारपत्र में काम करते रहे। वक़्त बीता। मुहम्मद-मिर्ज़ा खिज़रोयेव के यहां बेटी का जन्म हुआ। पिता जी को बच्ची का नाम रखने के लिये बुलाया गया। बच्ची को हाथ में ऊंचा उठाकर पिता जी ने उसका नाम घोषित किया–

"ज़ागरा!"

ज़ागरा का अर्थ है – सितारा।

नये सितारों का जन्म हुआ। खेत रहनेवाले वीरों के नामोंवाले बच्चे बड़े हो रहे थे। पूरा दाग़िस्तान एक बहुत बड़े पालने जैसा बन गया।

कास्पी सागर की लहरें उसके लिये लोरी गाती थीं। विराट सोवियत देश मानो बच्चे जैसे दाग़िस्तान की चिन्ता करने के लिये उसके ऊपर झुक गया।

मेरी अम्मां उस समय अबाबीलों, पत्थरों के नीचे से उगनेवाली घासों, समृद्ध पतझर के बारे में गाने गाती थीं। इन लोरियों की छाया में हमारे घर में तीन बेटे और एक बेटी बड़ी हो रही थी।

दाग़िस्तान में फिर से एक लाख बेटे-बेटियां बड़े हो गये। हलवाहे, पशु-पालक, बाग़बान, मछुए, संगतराश, पच्चीकार, कृषिशास्त्री, डाक्टर, अध्यापक, इंजीनियर, कवि और कलाकार जवान हो गये। जहाज़ तैर चले, हवाई जहाज़ उड़ानें भरने लगे तथा अब तक अनदेखी-अनजानी बत्तियां जगमगा उठीं।

"अब मैं बहुत बड़ी दौलत का मालिक हो गया हूं," सुलेमान स्ताल्स्की ने कहा।

"अब मैं केवल अपने गांव के लिये नहीं, बल्कि पूरे देश के लिये जवाबदेह हूं," मेरे पिता जी कह उठे।

"मेरे गीतो, क्रेमलिन को उड़ जाओ!" अबुतालिब ने उत्साहपूर्वक कहा।

नयी पीढ़ियों ने हमारी जनता को नये लक्षण प्रदान किये।

सोवियतों का महान देश – एक बहुत शक्तिशाली पेड़ है। दाग़िस्तान उसकी एक शाखा है।

इस पेड़ की जड़ खोदने, इसके तने और शाखाओं को जला डालने के लिये फ़ासिस्टों ने हमपर हमला कर दिया।

उस दिन जीवन अपने सामान्य ढंग से चलनेवाला था। खूंजह

में इतवार के दिन की पैंठ लगी हुई थी। दुर्ग में कृषि-क्षेत्र की उपलब्धियों की प्रदर्शनी आयोजित थी। युवजन का दल सेदूलो पहाड़ की चोटी पर विजय पाने गया था। अवार थियेटर मेरे पिता जी का नाटक 'मुसीबतों से भरा सन्दूक़' प्रस्तुत करने की तैयारी कर रहा था। उस शाम को उसका प्रथम प्रदर्शन होनेवाला था।

किन्तु सुबह को मुसीबतों का ऐसा सन्दूक़ खुला कि बाक़ी सभी मुसीबतें भूल जानी पड़ीं। सुबह को युद्ध आरम्भ हो गया।

उसी वक़्त विभिन्न गांवों से मर्दों और नौजवानों का तांता लग गया। एक दिन पहले तक ये लोग शान्तिपूर्ण जीवन बितानेवाले चरवाहे और हलवाहे थे और अब मातृभूमि के रक्षक। दाग़िस्तान के सभी गांवों के घरों की छतों पर बुढ़ियां, बच्चे और औरतें खड़ी हुई देर तक मोरचे पर जानेवाले इन लोगों को देखती रहीं। ये बहुत समय के लिये और कुछ तो हमेशा के लिये अपने घरों से चले गये। बस, यही सुनने को मिलता था –

"अलविदा, अम्मां।"

"सुखी रहिये, पिता जी।"

"अलविदा, दाग़िस्तान।"

"तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो, बच्चो, विजयी होकर घर लौटो।"

सागर से पर्वतों को मानो अलग करती हुई गाड़ियों पर गाड़ियां मखाचकला से चली जा रही थीं। वे दाग़िस्तान की जवानी, शक्ति और ख़ूबसूरती को अपने साथ लिये जा रही थीं। सारे देश को इस शक्ति की आवश्यकता थी। रह-रहकर यही सुनने को मिलता था –

"अलविदा, मेरी मंगेतर।"

"नमस्ते, प्यारी पत्नी।"

"मुझे छोड़कर नहीं जाओ, मैं तुम्हारे साथ जाना चाहती हूं।"

"विजयी होकर लौटेंगे!"

गाड़ियां जा रही थीं। लगातार गाड़ियां जा रही थीं।

मुझे अपने प्यारे अध्यापक प्रशिक्षण कालेज की याद आती है। क्रान्ति शहीदों के बन्धु-क़ब्रिस्तान के क़रीब दाग़िस्तान की घुड़-रेजिमेंट तैयार खड़ी थी। लाल छापामार, प्रसिद्ध काग़ कारायेव उसकी कमान सम्भाले था। घुड़सैनिकों के चेहरे बड़े कठोर और गम्भीर थे। रेजिमेंट वफ़ादारी की क़सम खा रही थी।

नब्बे साल के पहाड़ी बुज़ुर्ग ने रेजिमेंट को विदा करते हुए ये शब्द कहे –

"अफ़सोस की बात है कि मेरी उम्र आज तीस साल नहीं है। फिर भी मैं अपने तीन बेटों के साथ जा सकता हूं।"

बाद में 'दाग़िस्तान' नामक लड़ाकू हवाई जहाज़ों का दस्ता बना, 'शामील' नाम का टैंक-दल और 'दाग़िस्तानी कोम्सोमोल' नामक बख़्तरबन्द मोटरगाड़ी। पिता और पुत्र एक ही क़तार में दुश्मन के ख़िलाफ़ लड़ रहे थे। पहाड़ों के ऊपर फिर से फ़ौजी शान चमक दिखाने लगी। हमारी औरतों ने अपने कंगन और झुमके, पेटियां और अंगूठियां, अपने चुने हुए वरों, पतियों तथा पिताओं के उपहार, सोना-चांदी, रत्न-हीरे तथा दाग़िस्तान की प्राचीन कलाकृतियां बड़े सोवियत देश को भेंट कर दीं, ताकि वह विजय हासिल कर सके।

हां, दाग़िस्तान मोरचे पर चला गया। उसने पूरे देश के साथ मिलकर युद्ध में भाग लिया। सेना के हर भाग – जहाज़ियों, प्यादा फ़ौजियों, टेंकचियों, हवाबाज़ों और तोपचियों में किसी न किसी दाग़िस्तानी – निशानेबाज़, हवाबाज़, कमांडर या छापेमार – को देखा जा सकता था। बहुत दूर-दूर तक फैले मोरचों से छोटे दाग़िस्तान में शोकपूर्ण पत्र आते थे।

हमारे त्सादा गांव में सत्तर पहाड़ी घर हैं। लगभग इतने ही नौजवान लड़ाई में गये। युद्ध के वर्षों में अम्मां कहा करती थीं – "मैं सपने में अक्सर यह देखती हूं मानो हमारे त्सादा गांव

के सभी जवान नीज्नी वन-प्रांगण में जमा हो रहे हैं।" कभी-कभी आकाश में तारा देखकर वह कहतीं—"शायद इस वक़्त हमारे गांव के नौजवान भी लेनिनग्राद के क़रीब ही कहीं इस तारे को देख रहे हैं।" जब मौसमी पक्षी उत्तर से उड़कर हमारे यहां आते तो मेरी मां उनसे पूछतीं—"तुमने हमारे त्सादा के नौजवानों को तो नहीं देखा?"

पहाड़ी औरतें पत्र पढ़ते और रेडियो सुनते हुए अपने लिये कठिन तथा समझ में न आनेवाले—केर्च, ब्रेस्त, कोरसून-शेव्चेन्कोव्स्की, प्लोयेष्टी, कोन्स्तान्त्सा, फ़्रेंकफ़ोर्ट ओन माइन, ब्रांडेनबर्ग—आदि शब्दों को मुंह ज़बानी याद करने की कोशिश करतीं। पहाड़ी औरतें ख़ास तौर पर तो दो शहरों के मामले में गड़बड़ करतीं। ये शहर थे—बुख़ारेस्ट और बुडापेस्ट—तथा हैरान होतीं कि ये दो भिन्न शहर हैं।

हां, कहां-कहां नहीं गये हमारे त्सादा गांव के नौजवान!

सन् १९४३ में अपने पिता जी के साथ मैं बालाशोव शहर गया। वहां मेरे बड़े भाई का अस्पताल में देहान्त हो गया था। छोटी-सी नदी के किनारे हमने उसकी क़ब्र ढूंढ़ ली और उसपर ये शब्द पढ़े—"मुहम्मद हम्ज़ातोव"।

पिता जी ने इस क़ब्र पर रूसी बेर्योज़ा यानी भूर्ज वृक्ष लगाया। पिता जी ने कहा—"हमारे त्सादा का क़ब्रिस्तान अब बहुत फैल गया है। हमारा गांव अब बड़ा हो गया है।"

मातृभाषा

त्सादा का क़ब्रिस्तान...
श्वेत कफ़न से, अन्धकार-से ढके हुए
प्रिय पड़ोसियो, तुम क़ब्रों में दफ़न यहां
तुम हो निकट, न फिर भी घर को लौटोगे
लौटा मैं घर, दूर बहुत जा, कहां-कहां

यहां गांव में दोस्त बहुत कम अब मेरे
रिश्तेदार न अब तो मेरे बहुत रहे,
बड़े बन्धु की बेटी, अरे, भतीजी भी
स्वागत मेरा करे न चाचा मुझे कहे।

हंसमुख, अल्हड़ बच्ची, तुमपर क्या बीती?
साल गुज़रते जायें, ज्यों जलधार बहे,
खत्म पढ़ाई की स्कूल की सखियों ने
किन्तु जहां तुम, वहां न कुछ भी शेष रहे।

मुझे बड़ा ही अजब, बेतुका यहां लगा
जहां न कोई प्राणी, सब सुनसान पड़ा,
वहीं, गांव के साथी की है क़ब्र जहां
सहसा उसका ज़ुरना बाजा, झनक उठा।

जैसे कभी पुराने वक़्तों में, अब भी
उसके साथी की खंजड़ी भी गूंज उठी,
मुझको लगा कि अपने किसी पड़ोसी की
ख़ुशी मनाते हैं वे, उसकी शादी की।

नहीं... यहां जो रहते, शोर नहीं करते
कोई भी तो यहां नहीं देता उत्तर...
क़ब्रिस्तान त्सादा का, नीरव, गुपचुप
मेरे गांववासियों का यह अन्तिम घर।

तुम बढ़ते जाते, सीमायें फैल रहीं
तंग तुम्हारा होता जाता हर कोना,
है मुझको मालूम एक दिन आयेगा
मुझे यहीं पर जब आखिर होगा सोना।

राहें हमें कहीं ले जायें, वे मिलतीं
अन्त सभी का एक, सभी आ मिलें यहीं,
किन्तु त्सादा के कुछ लोगों की क़ब्रें
नज़र नहीं आती हैं मुझको यहां कहीं।

नौजवान भी, बूढ़े कर्मठ सैनिक भी
घर से दूर, अन्धेरी क़ब्रों में सोते,
जाने कहां हसन है, कहां मुहम्मद है?
घर से कितनी दूर मरे बेटे-पोते?

अरे बन्धुओ, तुम शहीद हो गये कहां?
कभी हमारा मिलन न होगा, ज्ञात मुझे,
किन्तु तुम्हारी क़ब्रें यहां त्सादा में
नहीं मिलीं, दुख देती है यह बात मुझे।

दूर कहीं पर गोली दिल में तुम्हें लगी
घायल होकर, दूर गांव से मरे कहीं,
क़ब्रिस्तान त्सादा के क़ब्रें तेरी
जाने, कितनी दूर-दूर तक फैल गयीं।

ठण्डे क्षेत्रों में, अब गर्म प्रदेशों में
बरसे आग, जहां हिम के तूफ़ान चलें,
बड़े प्यार से लोग फूल लेकर आयें
शीश झुकाकर अपनी श्रद्धा प्रकट करें।

युद्ध के समय हमारे गांव की ग्राम-सोवियत में एक बहुत बड़ा नक़्शा लटका हुआ था। उस वक़्त सारे देश में इस तरह के बहुत-से नक़्शे लटके हुए थे। आम तौर पर वहां लाल झण्डियों के रूप में मोरचे की रेखा अंकित की जाती थी। हमारे नक़्शे पर भी झण्डियां बनी हुई थीं, मगर उनका अभिप्राय दूसरा था। ये झण्डियां उन जगहों पर गाड़ी गयी थीं, जहां हमारे त्सादावासी खेत रहे थे। अनेक झण्डियां थीं नक़्शे पर। उतनी ही, जितने मातृ-हृदय इन तीखे बकसुओं से घायल हुए थे।

हां, त्सादा का क़ब्रिस्तान कुछ छोटा नहीं था, यह पता चला कि हमारा गांव भी कुछ छोटा नहीं था।

बेटों की याद में तड़पनेवाली मातायें नजूम लगानेवालियों के

पास जातीं, नजूम लगानेवालियां पहाड़ियों को तसल्ली देतीं – "देखो, यह है रास्ता। यह है मोरचा। यह है विजय। तुम्हारा बेटा तुम्हारे पास लौट आयेगा। शान्ति और अमन-चैन हो जायेगा।"

नजूम लगानेवालियां चालाकी से काम लेती थीं। लेकिन विजय के बारे में उन्होंने ग़लती नहीं की थी। रेइख़स्ताग की दीवार पर अन्य आलेखों के साथ-साथ संगीन से खुदा हुआ यह आलेख भी अंकित है – "हम दाग़िस्तानी हैं।"

फिर से बूढ़े, औरतें और बच्चे अपने घरों की छतों पर खड़े होकर दूर तक नज़र दौड़ाते थे। किन्तु अब वे अपने सूरमाओं को विदा नहीं देते थे, बल्कि उनका स्वागत करते थे। पहाड़ी मार्गों पर लोगों की क़तारें नहीं थीं। वे गये तो एकसाथ थे, मगर लौट रहे थे एक-एक ही। कुछ औरतें अपने सिरों पर चटकीले और अन्य काले रूमाल बांधे थीं। लौटनेवाले जवानों से दूसरों की मांएं पूछती थीं –

"मेरा ओमार कहां है?"

"तुमने मेरे अली को तो नहीं देखा?"

"मेरा मुहम्मद जल्द ही वापस आ जायेगा?"

मेरी अम्मां ने भी अपने सिर पर काला रूमाल बांध रखा था। उनके दो बेटे, मेरे दो भाई – मुहम्मद और अखील्वी मोरचे से नहीं लौटे थे। उनमें से अनेक वापस नहीं आये थे जिन्हें अम्मां अपनी खिड़कियों से नीज्नी वन-प्रांगण में खेलते देखती रही थीं। वे नहीं लौटे जिनके बारे में नजूम लगानेवालियों ने जल्द ही लौटने की भविष्यवाणी की थी। हमारे छोटे से गांव में एक सौ व्यक्ति वापस नहीं आये। पूरे दाग़िस्तान में एक लाख लोग नहीं लौटे।

मैं नक़्शे पर लगी झण्डियों को देखता हूं, जगहों के नाम पढ़ता हूं और हमवतनों के नाम याद करता हूं। मुहम्मद गाजीयेव बारेन्त्सेव सागर में ही रह गया। टैंकची मुहम्मद जागीद अब्दुलमानापोव सिम्फ़रोपोल में शहीद हुआ। मशीनगन-चालक खानपाशा नूरादीलोव, जो चेचेन जाति का, मगर दाग़िस्तान का

बेटा था, स्तालिनग्राद में खेत रहा। बहादुर कामालोव ने इटली में छापेमारों का नेतृत्व करते हुए वीरगति पाई।

हर पहाड़ी गांव में पिरामिडी स्मारक खड़े हैं और उनपर नाम ही नाम लिखे हैं। उनके क़रीब पहुंचने पर पहाड़ी लोग घोड़ों से नीचे उतर आते हैं और पैदल चलनेवाले अपने सिरों पर से समूर की टोपी उतार लेते हैं।

पहाड़ों में शहीदों के नामवाले चश्मे बहते हैं। बुज़ुर्ग लोग चश्मों के क़रीब बैठते हैं, क्योंकि वे पानी की भाषा समझते हैं। हर घर में बहुत ही आदर के स्थान पर उनके छविचित्र लटके हुए हैं जो चिर युवा और चिर सुन्दर बने रहेंगे।

जब कभी मैं दूर-दराज़ की किसी यात्रा से लौटता हूं तो कुछ मातायें दिल में छिपी आशा लिये हुए मुझसे पूछती हैं–"संयोगवश मेरे बेटे से तुम्हारी कहीं मुलाक़ात तो नहीं हुई?" इसी तरह मन में आशा और कसक लिये हुए वे सारसों के लम्बे-लम्बे काफ़िलों को जाते हुए देखती रहती हैं। मैं भी अपने क़रीब से उड़े जाते सारसों पर से अपनी नज़र नहीं हटा पाता हूं।

सारस

कभी-कभी लगता है मुझको वे सैनिक
रक्तिम युद्ध-भूमि से लौट न जो आये,
नहीं मरे वे वहां बने मानो सारस
उड़े गगन में, श्वेत पंख सब फैलाये।

उन्हीं दिनों से, बीते हुए जमाने से
उड़े गगन में, गूंजें उनकी आवाज़ें
क्या न इसी कारण ही अक्सर चुप रहकर
भारी मन से हम नीले नभ को ताकें?

आज, शाम के घिरते हुए अन्धेरे में
देखूं, धुंध-कुहासे में सारस उड़ते,
अपना दल-सा एक बनाये उसी तरह
जैसे जब थे मानव, भू पर डग भरते।

वे उड़ते हैं, लम्बी मंज़िल तय करते
और पुकारें जैसे नाम किसी के वे,
शायद इनकी ही पुकार से इसीलिये
शब्द हमारी भाषा के मिलते-जुलते?

उड़ते जाते हैं सारस-दल थके-थके
धुंध-कुहासे में भी, जब दिन ढलता है,
उस तिकोण में उनके ज़रा जगह खाली
वह तो मेरे लिये, मुझे यह लगता है।

वह दिन आयेगा, मैं सारस-दल के संग
हल्के नील अन्धेरे में उड़ जाऊंगा,
उन्हें सारसों की ही भांति पुकारूंगा
छोड़ जिन्हें मैं इस धरती पर जाऊंगा।

सारस उड़ते हैं, घास ऊंची होती है, पालने झुलाये जाते हैं। मेरे घर में भी तीन को पालने में झुलाया गया, मेरे यहां तीन बेटियों का जन्म हुआ। किसी अन्य के यहां चार, किसी और के दस तथा किसी अन्य के पन्द्रह बच्चों ने जन्म लिया। त्सादा गांव में एक सौ झूले झुलाये जाते हैं, दाग़िस्तान में एक लाख झूले झुलाये जाते हैं। जन्म-दर की दृष्टि से दाग़िस्तान का रूसी संघ में पहला स्थान है। हम पन्द्रह लाख हो गये। जितने अधिक लोग होते हैं, उतनी ही अधिक शादियां होती हैं और जितनी अधिक शादियां होती हैं, उतने ही ज्यादा लोग होते हैं।

पहाड़ी लोगों में कहा जाता है कि तीन मामलों में कभी देर नहीं करनी चाहिये – जब मुर्दे को दफ़नाना हो, जब मेहमान को खाना खिलाना हो और जब जवान बेटी की शादी करनी हो।

इन तीनों मामलों में दाग़िस्तान में कभी देर नहीं होने देते। लीजिये, ढोल ढमढम करने लगा, ज़ुरना झनझना उठा और शादियां शुरू हो गयीं। शराब का पहला जाम उठाकर यह कामना की जाती है—"बहू बेटे को जन्म दे।"

तीन और चीज़ें भी हैं जो पहाड़ी लोगों को अवश्य ही पूरी करनी चाहिये—शराब से भरे हुए सींग को पीना चाहिये, अपने नाम को बट्टा नहीं लगने देना चाहिये और कठिन परीक्षा के समय अपना साहस नहीं छोड़ना चाहिये।

पहाड़ी लोगों को काफ़ी परीक्षाओं-आज़माइशों का सामना करना पड़ा है। क़िस्मत के हथौड़े ने दाग़िस्तान के घरों को तोड़ने के लिये कुछ कम चोटें नहीं कीं, मगर उन्होंने उन्हें सहन कर लिया।

वैसे संसार में आज भी शान्ति नहीं है। हमारी पृथ्वी पर कभी यहां तो कभी वहां गोलाबारी होने लगती है, बम फटते हैं और हमेशा की तरह आज भी मातायें अपने बच्चों को छातियों से चिपका लेती हैं।

जब आकाश में बारिश लानेवाली घटायें घिर आती हैं तो किसान कटी हुई फ़सल को समेटने के लिये खेतों की ओर भागते हैं। जब हमारी पृथ्वी के ऊपर ख़तरे के बादल मंडराने लगते हैं तो लोग शान्ति की रक्षा करने, उसे युद्ध के ख़तरे से बचाने की कोशिश करते हैं।

दाग़िस्तान में ऐसा कहा जाता है—लड़ाके सांड़ के सींग काट दिये जाते हैं और काटनेवाले कुत्ते को ज़ंजीर से बांधकर रखा जाता है। अगर हमारी दुनिया में भी ऐसी ही रीति-परम्परा होती तो जीना आसान होता। अब छोटा-सा दाग़िस्तान बड़ी दुनिया के बारे में चिन्ता करता हुआ जीता है।

पहले वक़्तों में पहाड़ी लोग जब कभी कहीं धावा बोलने को जाते थे तो बहुत ही जवान सूरमाओं को अपने साथ नहीं लेते थे। लेकिन शामील ने कहा कि ऐसा करना चाहिये। कानी उंगली बहुत छोटी होती है, मगर उसके बिना मजबूत घूंसा नहीं बनता।

हमारे देश के बड़े और भारी घूंसे में दाग़िस्तान बेशक कानी उंगली के समान ही हो। तब हमारे दुश्मन अपना एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर भी इस घूंसे को कमज़ोर नहीं कर सकेंगे।

यह घूंसा तो दुश्मनों के लिये है, लेकिन दोस्त के कंधे पर तो चौड़ी हथेली ही टिकी रहती है। उस हथेली में भी कानी उंगली होती है।

जब मैं विदेशों में जाता हूं तो सबसे पहले कवियों-शायरों से जान-पहचान करता हूं। गीत गीत को अच्छी तरह से समझता है। इसके अलावा मैं हमवतनों से मिलने की कोशिश करता हूं, अगर वे वहां होते हैं। बेशक यह सही है कि विदेशों में हमवतन भी भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन हमवतनों के प्रति घमण्ड को मैं इस कारण बर्दाश्त नहीं कर सकता कि वे भिन्न-भिन्न हैं। मेरी उनसे तुर्की, सीरिया और पश्चिमी जर्मनी में तथा कितनी ही दूसरी जगहों पर मुलाक़ात हुई!

कुछ दाग़िस्तानी तो शामील के वक़्त में ही अपनी मातृभूमि से दूर चले गये थे। वे अपने घर-बार छोड़कर उस सुख की तलाश में चले गये थे जो उन्हें अपने वतन में नहीं मिला था।

दूसरे इसलिये चले गये कि उन्होंने क्रान्ति को नहीं समझा या समझ गये, लेकिन डर गये। कुछ ऐसे थे जिन्हें ख़ुद क्रान्ति ने ही बाहर निकाल दिया। चौथी क़िस्म के लोग भी हैं जो एकदम तुच्छ, दयनीय और पथ-भ्रष्ट हैं। इन्होंने महान देशभक्ति के युद्ध में मातृभूमि के साथ ग़द्दारी की।

भिन्न-भिन्न दाग़िस्तानियों से मिला हूं मैं। तुर्की में तो दाग़िस्तानी गांव में भी गया था।

"हमारे यहां भी एक छोटा-सा दाग़िस्तान है," इस गांव के वासियों ने मुझसे कहा।

"नहीं, आप ठीक नहीं कह रहे हैं। दाग़िस्तान तो सिर्फ़ एक ही है। दो दाग़िस्तान नहीं हो सकते।"

"तो तुम्हारे ख़्याल में हम कौन हैं, कहां से आये हैं?"

"हां, आप कौन हैं और कहां से आये हैं?"

"हम करात, बतलूख, खूंज़ह, आकूश, कुमुख, चोख़ और सोगरात्ल के रहनेवाले हैं। हम दाग़िस्तान के भिन्न गांवों के हैं, ठीक उसी तरह, जिस तरह वे जो हमारे गांव के क़ब्रिस्तान में हमेशा के लिये सोये हुए हैं। हम भी एक छोटा-सा दाग़िस्तान हैं!"

"आप – कभी थे। कुछ अभी भी दाग़िस्तानी बने रहना चाहते हैं। शायद ये भी दाग़िस्तानी हैं?" मैंने गोत्सीन्स्की, अलीखानोव और उज़ून-हाजी की तस्वीरों की तरफ़ इशारा करते हुए पूछा।

"अगर दाग़िस्तानी नहीं तो कौन हैं ये? ये हमारे ही लोगों में से हैं, हमारी ही भाषा बोलते हैं।"

"दाग़िस्तान इनकी भाषा नहीं समझ पाया और ये दाग़िस्तान की भाषा।"

"हर कोई अपने ही ढंग से दाग़िस्तान को समझता है। हर किसी के दिल में अपना दाग़िस्तान है।"

"लेकिन दाग़िस्तान हर किसी को अपना बेटा नहीं मानता।"

"किसे मानता है?"

"वहां आइये, जहां हमारे बच्चों के पालने झुलाये जाते हैं।"

"वहां हमारे बारे में क्या कहा जाता है?"

"ऐसे पत्थर, जो दाग़िस्तान के निर्माण के वक़्त उसकी इमारत की दीवार में नहीं चुने जा सके और फ़ालतू पड़े रहे। ऐसे पत्ते जिन्हें पतझर की हवा उड़ा ले गयी, ऐसे तार, जो पन्दूरा के मुख्य तारों के साथ एक ही सुर में नहीं बज सके।"

तो ऐसे बातें कीं मैंने विदेशों में रहनेवाले हमवतनों से। उनमें अमीर भी हैं, ग़रीब भी, दयालु भी, क्रोधी भी, ईमानदार और बेईमान भी, धोखे में आनेवाले और धोखा देनेवाले भी। उन्होंने मेरे सामने लेज़गीन्का नाच नाचा, मगर खंजड़ी परायी थी।

जब हम यह कहते हैं कि दाग़िस्तान में हम पन्द्रह लाख हैं तो उन लोगों को नहीं गिनते हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है।

जब मैं सीरिया से रवाना हो रहा था तो एक अवार औरत

मुझसे लगातार यह अनुरोध करती रही कि मैं गेर्गेबिल गांव में खूबानियों के पेड़ को हाथों से छूकर उसे नमस्ते कहूं।

संगमरमर सागर के तट पर अवार जाति के कुछ बच्चों ने, जिनका बाप हज करने मक्का गया था, मुझसे कहा –

"हमारे लिये तो दाग़िस्तान ही मक्का है। मक्का हो आनेवाले को हाजी कहा जाता है। लेकिन हमारे लिये तो अब वही हाजी है जिसे दाग़िस्तान हो आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

मखाचकला में मेरे पास एक ऐसा ही हाजी आया था जो चालीस साल तक अपनी मातृभूमि से दूर रहा था।

"कहो, कैसा लगा तुम्हें यहां?" मैंने उससे पूछा। "दाग़िस्तान बदल गया न?"

"अगर मैं वहां यह सब कुछ बताऊंगा तो लोग यक़ीन नहीं करेंगे। लेकिन मैं उनसे एक ही बात कहूंगा – दाग़िस्तान क़ायम है!"

मेरा दाग़िस्तान क़ायम है! वह जनतन्त्र है! उसमें जनगण हैं, भाषा है, नाम हैं, रीति-रिवाज हैं। ऐसा है दाग़िस्तान का भाग्य। शादियां होती हैं, पालने झुलाये जाते हैं, जाम उठाये जाते हैं, गाने गाये जाते हैं।

शब्द

अवार भाषा में "मिल्लत" शब्द के दो अर्थ हैं – जाति और चिन्ता। "जो अपनी जाति की चिन्ता नहीं करता, वह सारी दुनिया की चिन्ता नहीं कर सकता," मेरे पिता जी कहा करते थे।

"क्या जाति को उसकी चिन्ता करनी चाहिये जो जाति की चिन्ता नहीं करता?" अबुतालिब ने प्रश्न किया था।

"लगता है कि मुर्ग़-मुर्ग़ियों, कलहंसों और चूहों की जाति

नहीं होती, किन्तु लोगों की जाति होनी चाहिये," मेरी अम्मां कहा करती थीं।

एक जाति और दो जनतन्त्र होते हैं, जैसे कि हमारे ओसेती पड़ोसियों के यहां। एक जनतन्त्र और उसमें चालीस जातियां भी होती हैं।

"भाषाओं और जातियों का पूरा ढेर ही है," किसी राहगीर ने दाग़िस्तान के बारे में कहा था।

"एक हज़ार सिरोंवाला अजगर," शत्रु दाग़िस्तान के सम्बन्ध में कहते थे।

"अनेक शाखाओंवाला पेड़," दाग़िस्तान के बारे में मित्र कहते हैं।

"बेशक दिन के वक़्त चिराग़ लेकर सारी दुनिया में ढूंढ़ आओ, कहीं भी ऐसी जगह नहीं मिलेगी जहां इतने कम लोग और इतनी अधिक जातियां हों," पर्यटकों ने यह मत प्रकट किया।

अबुतालिब को यह मज़ाक़ करना पसन्द था—

"हमने जार्जियाई संस्कृति के विकास में बड़ा योग दिया है।"

"यह तुम क्या कह रहे हो? उनकीं संस्कृति हज़ारों साल पुरानी हैं। प्रसिद्ध जार्जियाई कवि शोता रुस्तावेली तो आठ सौ साल पहले हुए थे, जबकि हमने तो कुछ ही साल पहले लिखना सीखा है। भला हमने उनकी कैसे मदद की?"

"हमने ऐसे मदद की। हमारे हर गांव की अपनी भाषा है। हमारे जार्जियाई पड़ोसियों ने इन भाषाओं का अध्ययन और उनकी तुलना करने का निर्णय किया। अनुसन्धानकर्त्ताओं ने इनके बारे में लेख और वैज्ञानिक पुस्तकें लिखीं। वे विद्वान बन गये, उन्होंने पी-एच० डी० और डी० लिट की उपाधियां प्राप्त कर लीं। अगर पूरे दाग़िस्तान में एक ही भाषा होती तो क्या उनके यहां भाषाशास्त्र के इतने डाक्टर हो सकते थे? तो ऐसे हमने उनकी मदद की।"

हां, दाग़िस्तान की भाषाओं के व्याकरण, वाक्य-विन्यास,

उच्चारण और शब्द-कोश के बारे में सभी तरह की पुस्तकें लिखी जाती हैं। यहां काम करने के लिये बड़ी सामग्री है। विद्वानो, पधारिये, आपके तथा आपके बच्चों के लिये भी काफ़ी काम है।

विद्वान आपस में बहस करते हैं। कुछ कहते हैं कि दाग़िस्तान में इतनी भाषायें हैं, दूसरों का कहना कि इतनी। कुछ कहते हैं कि इन भाषाओं का जन्म इस तरह से हुआ और दूसरों का मत है कि इस तरह से। इनके मतभेदों और प्रमाणों में बहुत-से विरोधाभास हैं।

लेकिन मैं तो सिर्फ़ इतना जानता हूं कि हमारे यहां एक बैलगाड़ी में पांच भाषायें बोलनेवाले लोग यात्रा करते देखे जा सकते हैं। अगर किसी चौराहे पर पांच बैलगाड़ियां रुक जाती हैं तो वहां तीस भाषायें भी सुनी जा सकती हैं।

जब उल्लूबी बुइनाकस्की के नेतृत्व में पार्टी के गुप्त संगठन के सदस्यों को, जिनकी संख्या छः थी, गोलियां चलाकर मौत के घाट उतारा गया तो उन्होंने पांच विभिन्न भाषाओं में दुश्मन को अभिशाप दिया –

उल्लूबी बुइनाकस्की ने कुमिक भाषा में।
सईद अब्दुलगालीमोव ने अवार भाषा में।
अब्दुल-वागाब गाजीयेव ने दारगीन भाषा में।
मजीद अली-ओगली ने कुमिक भाषा में।
अब्दुर्रहमान इसमाईलोव ने लेज़्गीन भाषा में।
ओस्कार लेश्चीन्स्की ने रूसी भाषा में।

दाग़िस्तानी लेखक मुहम्मद सुलीमानोव ने दाग़िस्तान की पन्द्रह विभिन्न जातियों के पन्द्रह मुहम्मदों के बारे में पन्द्रह दिलचस्प कहानियां लिखी हैं। इन कहानियों के संकलन का यही शीर्षक है – 'पन्द्रह मुहम्मद'।

रूसी लेखक द्मीत्री त्रूनोव ने एक ऐसे सामूहिक फ़ार्म के बारे में शब्दचित्र लिखा है, जहां बत्तीस जातियों-उपजातियों के लोग काम करते हैं।

एफ़्फ़ंदी कापीयेव की नोटबुक में यह लिखा हुआ है कि कैसे

वह और तीन अन्य दाग़िस्तानी लेखक – सुलेमान स्ताल्स्की, हम्ज़ात त्सादासा और अब्दुला मुहम्मदोव रेलगाड़ी के एक ही केबिन में सोवियत संघ के लेखकों की पहली कांग्रेस में भाग लेने के लिये मास्को गये। दाग़िस्तान के ये सभी जन-कवि तीन दिन-रातों तक गाड़ी में यात्रा करते रहे, मगर एक-दूसरे के साथ बातचीत नहीं कर पाये। हर किसी की अपनी भाषा थी। इशारों से एक-दूसरे को अपनी बात समझाते थे और बड़ी मुश्किल से एक-दूसरे को समझ पाते थे।

छापेमारों के साथ अपने जीवन की चर्चा करते हुए अबुतालिब ने लिखा है – "दलिये के एक देग़ के गिर्द बीस भाषायें बोली जाती थीं। आटे की एक बोरी बीस जन-जातियों में बांटी जाती थी।"

हमारे यहां नीज्नी जेनगुताई और वेर्ख़नी जेनगुताई नाम के गांव हैं। उनके बीच तीन किलोमीटर का फ़ासला है। नीज्नी जेनगुताई में कुमिक भाषा बोली जाती है और वेर्ख़नी जेनगुताई में अवार।

दारगीन जाति के लोगों का कहना है कि मेगेब में दारगीन रहते हैं और अवार जातिवाले कहते हैं कि वहां अवार रहते हैं। लेकिन ख़ुद मेगेबवासियों का क्या कहना है? उनका कहना है कि हम न तो दारगीन हैं और न अवार। हम तो मेगेबी हैं। हमारी अपनी मेगेबी भाषा है! मेगेब से सात किलोमीटर दूर जाने पर हम चोख़ गांव में पहुंच जाते हैं। मेगेबी भाषा के साथ वहां नहीं जाओ, क्योंकि चोख़ की अपनी विशेष भाषा है।

लोगों का कहना है कि कुबाची के सुनारों की कला इस कारण बहुत अरसे तक विश्वसनीय ढंग से गुप्त बनी रही कि कोई भी उनकी भाषा नहीं समझ सकता था। अगर कोई राज़ को खोलना भी चाहता तो किसके सामने ऐसा करता?

यह भी कहा जाता है कि ख़ूंजह के ख़ान ने इस उद्देश्य से गीदात्ली में अपना जासूस भेजा कि वह वहां की सभाओं और बाज़ारों में जाकर लोगों की सारी बातें सुने ताकि यह पता लगा

सके कि गीदात्ली के लोग क्या सोचते हैं।

जासूस बहुत ही जल्दी वापस आ गया।

"सब कुछ मालूम कर आये?"

"कुछ भी मालूम नहीं कर सका।"

"क्यों?"

"वहां हर कोई अपनी भाषा में बोलता है। उनकी भाषायें हमारी समझ में नहीं आतीं।"

एक पहाड़िया अपने लिये लबादा खरीदने के विचार से आंदी गांव में गया। उसने लबादा पसन्द किया, क़ीमत पूछी और मोल-भाव करने लगा। मोल-भाव होता रहा, होता रहा और अचानक आंदी गांव के दुकानदार अपनी भाषा में बोलने लगे। गाहक पहाड़िये ने एतराज़ करते हुए कहा—

"चूंकि मैं गाहक हूं, इसलिये तुम्हें ऐसी भाषा में बात करनी चाहिये जो मेरी समझ में आ सके।"

"हम तुम्हारी समझ में आनेवाली भाषा में तब बात करेंगे, जब तुम हमारी क़ीमत मंज़ूर कर लोगे।"

हां, यह सच है कि आंदी गांव के लोगों ने व्यापार में अभी तक कभी मार नहीं खाई।

किसी पहाड़िये को एक हसीना से मुहब्बत हो गयी। उसने इस सुन्दरी को ये पावन शब्द "मैं तुम्हें प्यार करता हूं" लिखने का निर्णय किया, किन्तु पत्र के रूप में नहीं, बल्कि उस जगह, जहां वह युवती आती-जाती थी और जहां वह उसकी प्रणय-स्वीकृति को देख सकती थी। उसने उक्त शब्दों को किसी चट्टान, चश्मे की ओर जानेवाली पगडंडी, उसके घर की दीवार, अपने पन्दूरा बाजे पर लिखने का निर्णय किया। इसमें भी कोई बुरी बात नहीं थी। किन्तु इस प्रेमी के दिमाग़ में यह सनक आ गयी कि इन शब्दों को वह दाग़िस्तान की सभी भाषाओं में लिखे। इसी उद्देश्य से वह अपनी राह पर चल पड़ा। उसका ख़्याल था कि उसकी यह यात्रा बहुत लम्बी नहीं रहेगी। मगर वास्तव में उसने यह पाया कि हर गांव में इन शब्दों को अपने ही ढंग से

कहा जाता है... अवार भाषा में एक ढंग से, लेज़्गीनी में दूसरे ढंग से, लाकस्की में तीसरे ढंग से, दारगीन्स्की में चौथे ढंग से, कुमिकस्की में पांचवें ढंग से, ताबासारन्स्की में छठे ढंग से, तात्स्की में सातवें ढंग से, आदि, आदि।

लोगों का कहना है कि यह प्रेमी अभी तक पहाड़ों में भटकता फिर रहा है, उसकी प्रेमिका की शादी हुए एक ज़माना बीत गया, वह बूढ़ी भी हो गयी, लेकिन हमारा यह आशिक सूरमा अभी तक अपने प्रेम के शब्द लिखता जा रहा है।

"मैं तुम्हें प्यार करता हूं, इन शब्दों को तुम्हारी भाषा में कैसे कहा जाता है, तुम्हें यह मालूम है या नहीं?" एक बुज़ुर्ग ने किसी नौजवान से पूछा।

नौजवान ने अपने क़रीब खड़ी युवती का आलिंगन करते हुए जवाब दिया –

"मेरी भाषा में ये शब्द इस तरह कहे जाते हैं।"

दाग़िस्तान में हर छोटे-से परिन्दे, हर फूल, हर नद-नाले के दसियों नाम हैं।

संविधान के अनुसार हमारे यहां आठ मुख्य जातियां हैं – अवार, दारगीन, कुमिक, लेज़्गीन, लाक, तात, ताबासारान और नोगाई।

हम पांच भाषाओं में पांच साहित्यिक संकलन निकालते हैं। उनके नाम हैं – 'दुस्तवाल', 'दोसलूक', 'गालमागदेश', 'गुदूल्ली', 'दुसशीवू'। वैसे इन सबका एक साझा नाम है 'दूज्बा' यानी दोस्ती।

दाग़िस्तान में नौ भाषाओं में किताबें छपती हैं। लेकिन कितनी भाषाओं में गाने गाये जाते हैं? हर क़ालीन पर अपने अलग बेल-बूटे होते हैं। हर तलवार पर अपना आलेख होता है।

लेकिन यह कैसे हुआ कि एक हाथ पर इतनी अधिक उंगलियां हो गयीं? यह कैसे हुआ कि एक दाग़िस्तान में इतनी अधिक भाषायें हो गयीं?

विद्वान लोग अपने ढंग से इसे स्पष्ट करते रहें। लेकिन इस

सम्बन्ध में मेरे पिता जी यह कहा करते थे—

"अल्लाह का भेजा हुआ एक दूत खच्चर पर सवार होकर इस पृथ्वी पर जा रहा था और बहुत बड़ी खुरजी में से भाषायें निकाल-निकालकर जनगण और राष्ट्रों को देता जाता था। चीनियों को उसने चीनी भाषा दे दी। अरबों के यहां गया और उन्हें अरबी भाषा दे दी। यूनानियों को उसने यूनानी, रूसियों को रूसी और फ़ांसीसियों को फ़ांसीसी भाषा दे दी। भाषायें भिन्न-भिन्न थीं—कुछ मधुर थीं तो कुछ कठोर, कुछ लच्छेदार और कुछ कोमल। जनगण ऐसे उपहार से बहुत खुश हुए और उसी वक़्त सभी अपनी-अपनी भाषा में बोलने लगे। अपनी भाषाओं की बदौलत लोग एक-दूसरे को ज़्यादा अच्छी तरह जानने-समझने लगे और जनगण दूसरे जनगण, पड़ोसी जनगण को ज़्यादा अच्छी तरह जानने-पहचानने लगे।

"अपने खच्चर पर सवारी करते हुए यह आदमी हमारे दाग़िस्तान तक पहुंच गया। कुछ ही समय पहले उसने जार्जियाई लोगों को उनकी भाषा दी थी जिस भाषा में बाद में शोता रुस्तावेली ने अपना महाकाव्य रचा, कुछ ही समय पहले ओसेतियों पर कृपा करते हुए उन्हें उनकी भाषा दी थी जिस भाषा में बाद में कोस्ता हेतागूरोव ने साहित्य-सृजन किया। आख़िर हमारी बारी भी आ गयी।

"लेकिन कुछ ऐसा हुआ कि दाग़िस्तान के पहाड़ों में उस दिन बर्फ़ का तूफ़ान आ रहा था। दर्रों में बर्फ़ ज़ोर से चक्कर काट रही थी और आकाश तक ऊपर उठ रही थी। कुछ भी नज़र नहीं आ रहा था—न रास्ते और न घर-मकान। सिर्फ़ अंधेरे में हवा ज़ोर से सीटियां बजाती सुनाई दे रही थी, कभी-कभी शिला-खण्ड टूटकर गिरते थे और हमारी चार नदियां, हमारी चार कोइसू शोर मचा रही थीं।

"'नहीं,' भाषायें बांटनेवाले ने कहा, जिसकी मूंछों पर बर्फ़ जमने लगी थी, 'मैं इन चट्टानों पर नहीं चढ़ूंगा और सो भी ऐसे बुरे मौसम में।'

"उसने अपनी खुरजी ली जिसके तल में दो मुट्ठी भर वे भाषायें पड़ी हुई थीं जिन्हें अभी तक बांटा नहीं गया था और इन सारी भाषाओं को उसने हमारे पहाड़ों पर बिखेर दिया।

"'जिसे जो अच्छी लगे, वही भाषा ले ले,' उसने कहा और अल्लाह के पास वापस चला गया।

"इस तरह बिखरा दी गयी भाषाओं को बर्फ़ के तूफ़ान ने झपट लिया और उन्हें दर्रों तथा चट्टानों पर ले जाने और इधर-उधर फेंकने लगा। किन्तु इसी समय सारे दाग़िस्तानी लपककर अपने घरों से बाहर आ गये। हड़बड़ी करते और एक-दूसरे को धकेलते हुए वे भाषाओं की इस सुखद तथा प्यारी सुनहरी वर्षा की ओर भागने लगे जिसका उन्हें एक मुद्दत से इन्तजार था। वे अनाज के क़ीमती दानों को, जिन्हें जो भी मिल गये, बटोरने लगे। हर किसी ने तब अपनी मातृभाषा ले ली। अपनी-अपनी भाषा लेकर पहाड़ी लोग घरों में जाकर बर्फ़ के तूफ़ान का अन्त होने की प्रतीक्षा करने लगे।

"सुबह जब वे जागे तो धूप खिली हुई थी—हिमपात तो जैसे हुआ ही नहीं था। लोगों ने देखा—सामने पहाड़ है! यह तो अब "पहाड़" था। उसे पहाड़ कहकर पुकारा जा सकता था। लोगों ने देखा—सामने समुद्र है! यह तो अब "समुद्र" था। उसे समुद्र कहकर पुकारा जा सकता था। सामने आनेवाली हर चीज को ही अब कोई नाम दिया जा सकता था। कितनी खुशी की बात थी! यह रही रोटी, यह—मां है, यह—पहाड़ी घर है, यह—चूल्हा है, यह—बेटा है, यह—पड़ोसी है, ये—लोग हैं।

"सभी लोग सड़क पर जमा हो गये, सभी मिलकर चिल्लाये—"पहाड़!" उन्होंने कान लगाकर प्रतिध्वनि सुनी—सभी ने इस शब्द को अलग-अलग ढंग से कहा था। सभी मिलकर चिल्लाये—"समुद्र!" सभी ने इस शब्द को अलग-अलग ढंग से कहा था। इसी वक़्त से अवार, लेज़्गीन, दारगीन, कुमिक, तात और लाक जातियां तथा भाषायें बन गयीं... और उसी समय से यह सब कुछ दाग़िस्तान कहलाता है। लोग भेड़ों, भेड़ियों, घोड़ों

और टिड्डों से अलग हो गये... कहते हैं कि 'घोड़े के इन्सान बनने में ज़रा-सी ही कसर है।'"

लेकिन अल्लाह के भेजे हुए दूत! तुम उस वक़्त बर्फ़ के तूफ़ान और खड़े पर्वतों से क्यों घबरा गये? किसलिये तुमने सोचे-समझे बिना हमारे सामने भाषायें बिखरा दीं? यह तुमने क्या किया? जो लोग अपनी भावना, अपने दिल, आचार-व्यवहार, रस्म-रिवाज और जीवन के रंग-ढंग की दृष्टि से एक-दूसरे के इतने ज़्यादा क़रीब हैं, तुमने उन्हें बांट दिया, भाषाओं के कारण एक-दूसरे से अलग कर दिया।

खैर, इसके लिये भी शुक्रिया। बुरी भाषायें नहीं होतीं। बाक़ी चीज़ों के मामले में हम खुद ही सोच-समझ लेंगे। एक-दूसरे के निकट होने की राह ढूंढ़ लेंगे, ऐसा करेंगे कि विभिन्न भाषायें हमें अलग करने के बजाय सूत्रबद्ध करें।

बाद में लंगड़े तैमूर, अरबों और ईरान के शाह ने हमपर चढ़ाई की तथा हर किसी ने हमपर अपनी भाषा लादने की कोशिश की। लेकिन हमारे हाथ के झकझोरे जाने से हमारी उंगलियां टूटकर नहीं गिरीं, हमारे पेड़ के झकझोरे जाने से हमारी शाखायें नहीं टूटीं।

"भाषा की मातृभूमि की तरह रक्षा करनी चाहिये," शामील ने कहा था।

"शब्द—वे तो गोलियां हैं, उन्हें व्यर्थ बरबाद नहीं करो," हाजी-मुरात ने जोड़ा था।

"जब बाप मरता है तो वह विरासत के रूप में बेटों के लिये घर, खेत, तलवार और पन्दूरा छोड़ता है। लेकिन मरनेवाली पीढ़ियां आनेवाली पीढ़ियों के लिये विरासत के रूप में भाषा छोड़ती हैं। जिसके पास भाषा है, वह अपने लिये घर बना लेगा, खेत जोत लेगा, तलवार बना लेगा, पन्दूरा को सुर में कर लेगा और उसे बजा लेगा," मेरे पिता जी कहा करते थे।

मेरी प्यारी मातृभाषा! मैं नहीं जानता कि तुम मुझसे खुश

हो या नहीं, लेकिन तुम मेरी हर सांस में बसी हुई हो और मैं तुमपर गर्व करता हूं। जैसे चश्मे का निर्मल जल अन्धेरी गहराइयों में से धूप-नहाये स्थान की ओर, जहां हरियाली है, जाने की कोशिश करता है, वैसे ही मातृभाषा के शब्द बड़ी तेज़ी से मेरे दिल की गहराई से मेरे कण्ठ की ओर बढ़ते हैं। होंठ फुसफुसाते हैं। मैं अपनी फुसफुसाहट को बहुत ध्यान से सुनता हूं, मेरी भाषा, मैं तुमपर कान लगा देता हूं और मुझे लगता है कि कोई बहुत ही प्रबल पहाड़ी नदी अपने लिये रास्ता बनाने को दर्रे में दहाड़ रही है। मुझे पानी का शोर अच्छा लगता है। जब म्यान से निकले हुए दो खंजर आपस में टकराते हैं तो इस्पात की खनक भी मुझे अच्छी लगती है। मेरी भाषा में यह सब कुछ है। मुझे प्यार की फुसफुसाहट भी बहुत अच्छी लगती है।

मेरी मातृभाषा, मेरे लिये यह कर पाना बहुत कठिन है कि सभी तुझे जान जायें। कितनी समृद्ध हो तुम ध्वनियों की दृष्टि से, कितनी अधिक ध्वनियां हैं तुममें, जो अवार जाति का व्यक्ति नहीं है, कितना कठिन है उसके लिये इन ध्वनियों का उच्चारण करना। किन्तु जो इनका उच्चारण कर सकता है, उसके लिये वे कितनी मधुर हैं! मिसाल के तौर पर दस तक की मामूली गिनती–त्सो (एक), कीगो (दो), लाबग्गो (तीन), उन्क्गो (चार), श्चूगो (पांच), अनल्गो (छह), मीक्गो (सात), इच्गो (आठ), अंत्स्गो (नौ)। जब कभी अवार भाषा में दस तक सही उच्चारण करनेवाले किसी व्यक्ति से मेरी भेंट होती है तो मैं उसके बहादुरी से इस कारनामे की उस व्यक्ति की वीरता से तुलना करता हूं जो कंधे पर भारी पत्थर रखे हुए बाढ़ से उमड़ती नदी को एक तट से दूसरे तट तक पार कर ले। अगर कोई व्यक्ति दस तक सही गिनती कर सकता है तो वह आगे भी बढ़ता जा सकता है। वह तैरना भी जानता है। साहस से आगे बढ़ता जाये।

दूसरी जातियों के लोगों की तो बात ही क्या की जाये! हमारी अवार जाति के बालकों से भी बुजुर्ग लोग कहा करते

थे–इस वाक्य को अटके बिना तीन बार दोहराओ तो–"क्योदा ग्योर्क क्वेर्क क्वाक्वादाना" (पुल के नीचे मेंढकी टरटरा रही थी)। अवार भाषा के इस वाक्य में केवल चार शब्द हैं, लेकिन बहुत बार ऐसा होता था कि गांव के हम बालक इस वाक्य को सही ढंग से और जल्दी-जल्दी कह पाने के लिये सारा-सारा दिन अभ्यास करते रहते थे।

अबुतालिब अवार भाषा बोला लेता था। उसने अपने बेटे को त्सादा गांव में हमारे यहां इसलिये भेजा कि वह भी अवार भाषा सीख ले। बेटे के घर लौटने पर अबुतालिब ने उससे पूछा–

"गधे पर सवारी की?"

"हां, की।"

"दस तक गिनती कर सकते हो?"

"कर सकता हूं।"

"यह वाक्य तीन बार लगातार दोहराओ–'क्योदा ग्योर्क क्वेर्क क्वाक्वादाना।'"

बेटे ने दोहराया–

"ओह, यह माना जा सकता है कि तुमने असम्भव को सम्भव कर दिखाया है!"

तो ऐसी हैं चट्टानों के बीच दबे हुए हमारे गांवों की भाषायें-बोलियां। हमारे उच्चारण, हमारी कण्ठ्य और श्वास ध्वनियों को लिखने के लिये अर्थात विद्वानों की भाषा में उनका लिप्यन्तरण करने के लिये किसी भी वर्णमाला में अक्षर नहीं मिले। इसीलिये जब हमारी लिपि बनायी गयी तो रूसी भाषा की वर्णमाला में विशेष अक्षर और अक्षर-संयोग जोड़ने पड़े। व्यंजनों के मामले में तो ख़ास तौर पर ऐसी ही करना पड़ा।

शायद इन फ़ालतू अक्षरों के कारण अवार भाषा की रूसी में अनूदित हर पुस्तक कहीं अधिक पतली लगती है। उसकी ऐसे पहाड़ी आदमी से तुलना की जा सकती है जिसने लगातार तीन महीनों तक रोज़े (व्रत) रखे हों।

शामील से किसी ने पूछा–

"दाग़िस्तान को इतनी अधिक जातियों की क्या ज़रूरत है?"

"इसलिये कि एक के मुसीबत में पड़ जाने पर दूसरी उसकी मदद कर सके। इसलिये कि अगर एक जाति कोई गाना शुरू कर दे तो दूसरी उसका साथ दे सके।"

"तो क्या सभी जातियां किसी एक की मदद को सामने आईं?" अब मुझसे पूछा जाता है।

"हां, आईं। हर जाति ने मदद की।"

"क्या एक ही सुर में गाना गाया गया?"

"हां, गाया गया। आख़िर हमारी मातृभूमि तो एक ही है।"

अनेक धुनें हैं, किन्तु वे मिलकर एक ही गाने का रूप लेती हैं। भाषाओं के बीच सीमायें हैं, लेकिन दिलों के बीच सीमायें नहीं हैं। विभिन्न लोगों के वीर-कृत्य अन्त में एक ही वीर-कृत्य में घुल-मिल गये हैं।

"फिर भी विभिन्न जातियों में कुछ फ़र्क़ तो है? क्या फ़र्क़ है वह?"

"इस प्रश्न का जवाब देना बड़ा मुश्किल है।"

हमारी जातियों के बारे में कहा जाता है–कुछ लड़ने के लिये बनी हैं, कुछ हथियार बनाने के लिये, कुछ भेड़ें चराने के लिये, कुछ ज़मीन पर हल चलाने के लिये और कुछ बाग़-बगीचे लगाने के लिये... मगर यह बेतुकी बात है। हर जाति के अपने सैनिक-सूरमा, चरवाहे, लुहार और बाग़बान हैं। हर किसी के अपने हीरो, गायक और कुशल कारीगर हैं।

अवारों के–शामील हाजी-मुरात, हम्ज़ात, महमूद, मखाच।

दारगीनों के–बातीराय, बगातीरोव, अहमद मुंगी, राबादान नूरोव, कारा कारायेव।

लेज़्गीनों के–सुलेमान, एमीन, ताहिर, अगासीयेव, अमीरोव।

कुमिकों के–इरची कज़ाक, अलीम-पाशा, उल्लूबी, सोल्तन-सईद, ज़ाइनुलाबीद बातिरमुर्ज़ायेव, नुखाई।

लाकों के–हारूं सईदोव, सईद हाबीयेव, एफ़्फ़ंदी कापीयेव, सुरखाई और मेरा दोस्त अबुतालिब।

अनेक जातियों में से मैंने केवल उन्हीं का उल्लेख किया है जो सबसे पहले मेरे दिमाग़ में आ गयीं। प्रत्येक जाति में से मैंने केवल उन नामों का उल्लेख किया है जो सबसे पहले मुझे याद आ गये। लेकिन वैसे तो हमारे यहां अनेक जातियां हैं और अनेक जाने-माने नाम हैं।

कुछ जातियों के लोगों के बारे में कहा जाता है कि वे चंचल स्वभाव के हैं, कुछ के बारे में यह कि बुद्धू-से हैं, कुछ के बारे में यह कि चोरटे हैं, कुछ के बारे में यह कि धोखेबाज़ हैं। सम्भवतः यह सब निन्दा-चुगली है।

हर जाति में बढ़िया और घटिया, सुन्दर और कुरूप लोग होते हैं। उसमें चोर और चुगलख़ोर भी मिल जायेंगे। लेकिन यह तो जाति नहीं, उसका कूड़ा-करकट होंगे।

मेरा एक अन्य मित्र ऐसे कहा करता था –

"मैं तो हमेशा पहले से ही यह जान लेता हूं कि कोई व्यक्ति किस जाति का है।"

"यह कैसे?"

"बहुत ही आसानी से। दाग़िस्तान की एक जाति (हम उसका नाम नहीं लेंगे) के लोग मख़ाचकला में आते ही सबसे पहले यह ढूंढ़ते हैं कि यहां रेस्तरां कहां है और किसी ख़ूबसूरत लड़की से कहां जान-पहचान हो सकती है। इनके तीन आदमी शोर-गुल मचानेवाली पूरी मण्डली या दावत की बड़ी मेज़ पर जमा होनेवाले लोगों का स्थान ले सकते हैं। दूसरी जाति (हम उसका नाम भी नहीं लेंगे) के लोग सिनेमाघर, थियेटर या कन्सर्ट हॉल की तरफ़ जाने की उतावली करते हैं। इनके तीन आदमी जहां होते हैं, वहां आर्केस्ट्रा बन जाता है, जहां पांच होते हैं, वहां नाच-गानों की मण्डली। तीसरी जाति के लोग पुस्तकालय की ओर दौड़ते हैं, इन्स्टीट्यूट में दाख़िला लेने और शोध-प्रबन्ध का मण्डन करने की कोशिश करते हैं। इस जाति के तीन आदमी जहां इकट्ठे हो जाते हैं, वहां विद्वान-परिषद बन जाती है और जहां पांच जमा हो जाते हैं, वहां विज्ञान-अकादमी की शाखा बन

आती है। चौथी जाति (हम उसका नाम भी नहीं लेंगे) के लोग सिर्फ़ यही सोचते हैं कि किस तरह से कार खरीदी जाये या वे टैक्सी के ड्राइवर बन जायें और अगर और कुछ नहीं तो ट्रैफ़िक-कंट्रोल करनेवाले पुलिसमैन ही बन जायें। इस जाति के तीन आदमी जहां होते हैं, वहां मोटरों का अड्डा और जहां पांच होते हैं, वहां टैक्सियों का बड़ा स्टैंड बन जाता है। पांचवीं जाति के लोग सहकारी संघ, किसी दुकान, व्यापार-केन्द्र, भोजनालय या कम से कम स्टाल को तरजीह देते हैं। इस जाति के तीन लोग जहां जमा हो जाते हैं, वहां डिपार्टमेंट स्टोर बन जाता है और जहां पांच जमा हो जाते हैं, वहां कारखाना बन जाता है।

लेकिन यह सब तो मज़ाक़ के रूप में कहा जाता है। भला क्या कोई ऐसी जाति भी है जिसके मर्द लोग सुन्दर युवतियों को न चाहते हों या रेस्तरां में बैठने की इच्छा न रखते हों?

सभी जातियों के अपने थियेटर, अपने नाच, अपने गाने हैं। हमारे यहां तो सभी जातियों की एक साझी कला-मण्डली 'लेज़्गीन्का' भी है। सभी जातियों में 'वोल्गा' कार खरीदने या किसी दुकान पर काम करने के इच्छुक लोग भी मिल जायेंगे। किन्तु क्या यह कोई जातीय लक्षण है? अबुतालिब ने एक बार एक ऐसी बीमारी का नाम लिया जिसके बारे में दाग़िस्तान में पहले किसी ने कभी सुना ही नहीं था। यह बीमारी थी–शराबनोशी।

अबुतालिब ने इस तरह से अपनी बात कही–"पहले हमारे गांव में एक शराबी था और वह इसी वजह से मशहूर था कि सारे इलाक़े में लोग उसे जानते थे। अब हमारे गांव में शराब न पीनेवाला सिर्फ़ एक आदमी है। एक अजूबे के तौर पर उसे देखने के लिये दूर-दूर से लोग आते हैं।"

इस सिलसिले में अबुतालिब को बहुत-से क़िस्से-कहानियां याद हैं। किन्तु यदि हम उसके क़िस्से-कहानियों के फेर में पड़ेंगे तो मुझे डर है कि पूरी तरह से यह भूल जायेंगे कि किस बात की चर्चा कर रहे थे। हम इस चीज़ पर विचार कर रहे थे कि किन

लक्षणों के आधार पर दाग़िस्तान की एक जाति के व्यक्ति को दूसरी जाति के व्यक्ति से अलग किया जा सकता है। शायद पोशाक के आधार पर? समूरी टोपी की बनावट और उसे पहनने के ढंग के आधार पर? लेकिन अब तो सभी एक जैसे कोट, एक जैसे पतलून, एक जैसे बूट और एक जैसी छज्जेदार टोपी या टोप पहनते हैं। अगर कोई ऐसी चीज़ रह गयी है जो निर्णायक रूप से किसी जाति का विशेष लक्षण प्रस्तुत करती है और उसे दूसरी जाति से भिन्न बनाती है तो वह भाषा है। इस सम्बन्ध में यह बात भी बहुत दिलचस्प है कि जब लेज़्गीन या तात, अवार या दारगीन जाति का कोई व्यक्ति रूसी भाषा बोलता है तो उसके लहजे से ही यानी रूसी भाषा के विकृत उच्चारण से ही कुमिक को लाक और लेज़्गीन को कुमिक से फ़ौरन अलग रूप में पहचाना जा सकता है।

मिसाल के तौर पर रूसी भाषा का हर शब्द जो "स" अक्षर से शुरू होता है, अवार जाति के लोग उसका उच्चारण करते वक़्त उसमें "इ" जोड़ देते हैं। वे "स्तम्बूल" को "इस्तम्बूल", "स्ताकान" (गिलास) को "इस्ताकान", "स्ताल्स्की" को "इस्ताल्स्की", "सोन" (स्वप्न) को "इसोन" कहते हैं।

अगर किसी शब्द के मध्य में "इ" की ध्वनि आ जाती है तो अवार जाति के लोग उसका उच्चारण नहीं करते हैं। इसलिये वे "सीबीर" (साइबेरिया) की जगह "स्बीर", "बेलीबेर्दा" (बकवास) की जगह "बेलबेर्दा" कहते हैं। "त" की ध्वनि के बाद हम थोड़ा रुकते हैं मानो ज़रा ठोकर खाते हैं।

दारगीन जाति के लोगों के उच्चारण में "ओ" की जगह अक्सर "ऊ" और "यू" की जगह भी अक्सर "ऊ" की ध्वनि सुनायी देती है। वे "पोचता" (डाकखाना) की जगह "पूचता" और "कोश्का" (बिल्ली) की जगह "कूश्का" तथा "ल्युबोव" (प्रेम) की जगह "लुबोव" कहते हैं। किसी शब्द के अन्त में वे "इ" का तो उच्चारण ही नहीं करते।

इसी प्रकार लाक जाति के लोग "ख़" ध्वनि का कोमल उच्चारण करते हैं।

संक्षेप में यह कि कुछ जातियों के लोग व्यंजनों को लम्बा खींचते हैं, दूसरे उन्हें छोटा करते हैं और कुछ छोड़ भी देते हैं, कुछ कठोर तथा कुछ कोमल उच्चारण करते हैं। कुछ "फ़" की जगह "प" कहते हैं।

एक बार हम अबुतालिब की उपस्थिति में अपनी भाषाओं की चर्चा कर रहे थे और मेरा सहभाषी हमारे उच्चारणों की नक़ल करते हुए उनके अन्तर को स्पष्ट कर रहा था। अबुतालिब शुरू में तो सुनता रहा, मगर बाद में उसने उसे टोक दिया और कहा—

"चुप होकर बैठ जाओ। तुम बहुत बोल चुके और अब मैं अपनी बात कहता हूं। किसी एक व्यक्ति के दोषों-त्रुटियों को सारी जाति पर नहीं थोपना चाहिये। एक पेड़ से वन नहीं बनता, तीन पेड़ों से भी ऐसा नहीं होता। एक सौ पेड़ हो जाने पर भी वन नहीं बन जाता। हमारी भाषाओं का सवाल बड़ा पेचीदा सवाल है। यह तीन गांठोंवाली गांठ है जो उस वक़्त बनती है, जब गीली रस्सी को बांधा जाता है। एक वक़्त ऐसा माना जाता था कि इस सवाल का बहुत सीधा-सादा हल यह दिखावा करना है कि इसका अस्तित्व ही नहीं है। इसकी चर्चा नहीं करो, इसे छुओ ही नहीं—मसला हल हो गया! लेकिन यह मसला क़ायम तो है। पुराने वक़्तों में लोग सबसे ज़्यादा तो जातीय या राष्ट्रीय मतभेदों के कारण ही तलवारें निकालकर एक-दूसरे के सामने आ जाते थे।"

मुझे मख़ाचकला में हुए एक पत्रकार-सम्मेलन की याद आ रही है। मास्को से उनतीस राज्यों का प्रतिनिधित्व करनेवाले अड़तीस प्रत्यायित संवाददाता दाग़िस्तान आये। शुरू में उन्होंने हमारे गांवों का दौरा किया, हमारे पहाड़ी मर्दों-औरतों से बातचीत की और इसके बाद पत्रकार-सम्मेलन हुआ। फ़ोटो-कैमरों की खट-खट और सिने-कैमरों की खरखर हुई। संवाददाताओं

ने अपनी पेंसिलों की नोकें संवारीं और कोरे काग़ज़ अपने सामने रख लिये।

एक बहुत बड़ी मेज़ के गिर्द हम सब बैठ गये। अबुतालिब हममें सबसे बुज़ुर्ग था। उससे ही इस सम्मेलन का उद्घाटन करने को कहा गया। अबुतालिब ने कहना शुरू किया –

"देवियो और सज्जनो, साथियो!.. (हमने उसे यह सिखा दिया था कि इन शब्दों के साथ सम्मेलन का उद्घाटन करना चाहिये। इसके बाद उसने जो कुछ कहा, वह ख़ुद ही कहा)। आइये, परिचय कर लें। यह हमारा घर है। ये हम हैं। ये हमारे मशहूर शायर हैं।" अबुतालिब ने दीवार पर लटके हुए छविचित्रों की ओर संकेत किया। दीवार पर बातीराय, कज़ाक, महमूद, सुलेमान, हम्ज़ात और एफ़्फ़ंदी के छविचित्र लटके हुए थे।

इन शायरों में से प्रत्येक के बारे में अबुतालिब ने कुछ शब्द कहे – कौन किस जाति का है, किसने किस भाषा में सृजन किया, किन भावनाओं से प्रेरित हुआ और कैसी ख्याति अर्जित की। जब ख़ुद अबुतालिब के छविचित्र की बारी आयी तो किसी तरह की झेंप महसूस किये बिना उसने कहा –

"यह मैं हूं। कृपया यह नहीं सोचिये कि मैं दीवार से उतरकर मेज़ पर आ गया हूं। मैं तो यहां से, मेज़ के पीछे से दीवार पर पहुंच गया हूं।"

इसके बाद अबुतालिब ने अतिथियों को मेज़ के गिर्द बैठे कवियों का परिचय दिया और साथ ही यह भी कह दिया –

"मुमकिन है कि इनमें से कुछ को इस दीवार पर जगह मिल जाये। लीजिये, परिचय पाइये – अहमदख़ान अबुबकार, कुबाची के सुनार और दाग़िस्तान का जन-लेखक।

फ़ाज़ू और मूसा। पत्नी और पति। एक परिवार में दो लेखक, दो उपन्यासकार, दो कवि, दो नाटककार। कभी-कभी एकसाथ और कभी-कभी अलग-अलग लिखते हैं।

मुतालिब मितारोव – अवार जाति का दामाद, ताबासारान जाति का कवि।

शाह-एमीर मुरादोव – 'शान्ति-कपोत।' लेज़्गीन जाति का कवि। हमेशा कपोतों या कबूतरों के बारे में लिखता है।

जामीदीन – हमारा व्यंग्यकार, हमारा मार्क ट्वेन।

अनवर – दाग़िस्तान का जन-कवि, हमारे पांच साहित्यिक संकलनों का प्रधान सम्पादक।

त्रूनोव – दाग़िस्तान में रहनेवाला रूसी लेखक।

हिज़गिल अवशालूमोव – तात जाति का लेखक, अपनी मातृभाषा और रूसी में लिखता है।"

अतिथि-पत्रकारों को दाग़िस्तान के लेखकों का परिचय देना जारी रखते हुए अबुतालिब ने बादावी, सुलेमान, साशा ग्राच, इब्राहिम, अलीरज़ा, मेदजीद, अशुगा रुतूल्स्की को उनके सामने पेश किया। उसने साहित्यिक संकलनों के सम्पादकों से मेहमानों को परिचित कराया और इसके बाद कहा –

"मेहमाननवाज़ी के उसूल हमें इस बात की इजाज़त नहीं देते कि हम मेहमानों के नाम पूछें..."

मगर अबुतालिब के ऐसा कहने पर सभी मेहमान बारी-बारी से उठकर अपना परिचय देने और यह बताने लगे कि वे किस देश और किस पत्र या पत्रिका का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इसके बाद, जैसा कि पत्रकार-सम्मेलन में होना चाहिये, प्रश्नोत्तर आरम्भ हो गये।

प्रश्न – "आपके यहां इतनी अधिक भाषायें, इतनी अधिक जातियां हैं कि उनका पूरा गड़बड़झाला है। आप एक-दूसरे को किस तरह से समझ पाते हैं?

अबुतालिब का जवाब – "जो भाषायें हम बोलते हैं – भिन्न हैं, किन्तु हमारे मुंहों में जो ज़बानें हैं, वे एक जैसी हैं। (दिल पर हाथ रखकर) यह सब कुछ अच्छी तरह से समझता है। (अपने कानों को खींचते हुए) लेकिन ये बुरी तरह।"

प्रश्न – "मैं बल्गारिया के अखबार का संवाददाता हूं। यह बताइये कि दाग़िस्तान की विभिन्न भाषाओं में उसी तरह की निकटता है जैसे, उदाहरण के लिये बल्गारियायी और रूसी भाषा में?"

अबुतालिब का जवाब—"बल्गारियायी और रूसी भाषा-सगी बहनों जैसी हैं। लेकिन हमारी भाषायें तो बहुत दूर के रिश्ते की चचेरी-ममेरी बहनों जैसी भी नहीं हैं। इनमें समान शब्द तो हैं ही नहीं। हमारे लेखकों में तो कुछ दलबन्दी है, मगर हमारी भाषाओं में किसी तरह की दलबन्दी नहीं। हर भाषा का अपना अलग रूप है।"

प्रश्न—"आपकी भाषायें किन अन्य भाषाओं के साथ घनिष्ठता और किन भाषा-दलों से सम्बन्ध रखती हैं?"

अबुतालिब का जवाब—"तात जाति के लोगों का कहना है कि वे ताजिक भाषा समझते हैं और हफ़ीज़ का साहित्य पढ़ सकते हैं। लेकिन मैं उनसे पूछता हूं कि अगर आप शेख़ सादी और उमर ख़य्याम की ज़बान समझते हैं तो उनके समान ही सृजन क्यों नहीं करते?

"पुराने वक़्तों में सगाई करने के समय वर की प्रशंसा करते हुए कहा जाता था—'वह कुमिक भाषा जानता है'—इसका मतलब यह होता था कि वर बहुत ही जानने-समझनेवाला व्यक्ति है, ऐसे व्यक्ति की पत्नी बड़ी सुखी रहेगी।

"वास्तव में ही कुमिक भाषा जाननेवाला आदमी तुर्की, आज़रबाइजानी, तातारी, बल्कार, कज़ाख़, उज़्बेक, किर्गिज़, बश्कीरी और आपस में मिलती-जुलती बहुत-सी ऐसी अन्य भाषायें भी समझ सकता है। अनुवाद के बिना हिकमत, काइसीन कुलीयेव और मुस्ताइ करीम की रचनायें पढ़ सकता है... लेकिन मेरी भाषा! हम लाकों के सिवा इसे वे विद्वान ही समझते होंगे जिन्होंने डी-लिट की उपाधि पाने के लिये इसके अध्ययन में अनेक साल लगाये होंगे।

"लाक जाति का एक प्रसिद्ध व्यक्ति सारी दुनिया में घूमकर इथोपिया पहुंच गया और वहां मन्त्री बन गया। उसने इस बात पर ज़ोर दिया कि अपनी इतनी लम्बी यात्रा के दौरान उसका हमारी लाक भाषा से मिलती-जुलती एक भी भाषा से परिचय नहीं हुआ।"

ओमार-हाजी – "हमारी अवार भाषा भी किसी अन्य भाषा के समान नहीं है।"

अबुतालिब – "दारगीन, लेज़्गीन और ताबासारान भाषाओं से मिलती-जुलती भाषायें भी नहीं हैं।"

प्रश्न – "एक-दूसरी से कोई समानता न रखनेवाली ये सारी भाषायें आपने कैसे सीख लीं?"

अबुतालिब – "किसी वक़्त मैं दाग़िस्तान में बहुत घूमता रहा था। लोगों को गीतों-गानों और मुझे रोटी की ज़रूरत थी। जब कोई आदमी पराये गांव में जाता है और वहां की भाषा नहीं जानता तो कुत्ते भी उसपर ज्यादा गुस्से से भूंकते हैं। ज़रूरत ने मुझे सारे दाग़िस्तान की भाषायें सीखने को मजबूर किया।"

प्रश्न – "फिर भी क्या दाग़िस्तान की भाषाओं की समानता और असमानता के लक्षणों की अधिक विस्तार से चर्चा करना सम्भव नहीं? भला यह कैसे हुआ कि इतने छोटे-से देश में इतनी भिन्न भाषायें हैं?"

अबुतालिब – "हमारी भाषाओं की समानता और असमानता के बारे में अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। मैं विद्वान या भाषाशास्त्री नहीं हूं, किन्तु जिस रूप में मैं इस समस्या की कल्पना करता हूं, उसे आपके सामने प्रस्तुत करता हूं। हम यहां बैठे हुए हैं। हममें से कुछ का पहाड़ों में और कुछ का मैदानों में जन्म हुआ तथा हम वहीं बड़े हुए। कुछ गर्म क्षेत्रों और कुछ ठण्डे क्षेत्रों में, कुछ नदी के तट और कुछ सागर के तट पर जन्मे और बड़े हुए। कुछ ने वहां जन्म लिया, जहां खेत है, मगर बैल नहीं, कुछ वहां जन्मे, जहां बैल है, मगर खेत नहीं। कुछ वहां जन्मे, जहां आग है, मगर पानी नहीं और कुछ वहां जन्मे, जहां पानी है, किन्तु आग नहीं। एक जगह मांस है, दूसरी जगह अनाज और तीसरी जगह फल। जहां पनीर रखा जाता है, वहां चूहे हो जाते हैं, जहां भेड़ें चराई जाती हैं, वहां भेड़ियों की भरमार हो जाती है। इसके अलावा – इतिहास, युद्ध, भूगोल, विभिन्न पड़ोसियों और प्रकृति को भी ध्यान में रखना चाहिये।

10 1165

"हमारे यहां 'प्रकृति' शब्द के दो अर्थ हैं। इसका एक अर्थ तो है–भूमि, घास, पेड़, पर्वत और दूसरा अर्थ है–मानव का स्वभाव। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकृति ने विभिन्न नामों, नियमों और रीति-रिवाजों के प्रकट होने में योग दिया।

"अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग ढंग से समूरी टोपी पहनी जाती है, अलग-अलग ढंग से कपड़े पहने जाते हैं और मकान बनाये जाते हैं। पालने के क़रीब अलग-अलग लोरियां गायी जाती हैं। महमूद ने दो तारोंवाले पन्दूरे पर अपने गाने गाये, इरची कज़ाक के पन्दूरे में तीन तार थे। लेज़गीन जाति का सुलेमान स्ताल्स्की तारा नामक बाजा बजाता था। कुछ बाजों के लिये बकरी की अन्तड़ियों और कुछ के लिये लोहे के तार बनाये जाते हैं।

"जातियां या जनगण अनेक हैं और हरेक के अपने रस्म-रिवाज हैं। सभी जगह पर ऐसा ही है। बच्चे का जन्म होता है। एक जाति में बच्चे को बपतिस्मा दिया जाता है, दूसरी में उसकी सुन्नत की जाती है और तीसरी में उसके जन्म का प्रमाणपत्र तैयार किया जाता है। लड़का जब बालिग़ होता है तो दूसरे रीति-रिवाज सामने आते हैं। किसी लड़की से उसकी सगाई की जाती है... वैसे, सगाई करना–यह भी एक रीति-रस्म ही है। मैं यह कहना चाहता था कि कोई नौजवान शादी करता है तो तीसरे ढंग के रीति-रिवाजों से वास्ता पड़ता है। दाग़िस्तान में विवाह के रीति-रिवाजों की चर्चा करने के लिये तो पूरा एक दिन भी नाकाफ़ी रहेगा। अगर आपमें से कोई उनके बारे में जानना चाहेगा तो उसे हम 'दाग़िस्तान के जनगण के रीति-रिवाज' पुस्तक भेंट कर देंगे। आप घर लौटकर उसे पढ़ लीजियेगा।"

प्रश्न–"रीति-रिवाज भी भिन्न-भिन्न हैं। ऐसी स्थिति में कौन-सी चीज़ आपके लोगों को निकट लाती है, सूत्रबद्ध करती है?"

अबुतालिब–"दाग़िस्तान।"

प्रश्न – "दाग़िस्तान... हमें यह बताया गया है कि दाग़िस्तान का अर्थ 'पर्वतों का देश' है। इसका मतलब तो यह हुआ कि दाग़िस्तान एक जगह का नाम है?"

अबुतालिब – "जगह का नाम नहीं, बल्कि मातृभूमि, जनतन्त्र का नाम है। जो पहाड़ों में रहते हैं और जो घाटियों में – सभी के लिये यह शब्द समान अर्थ रखता है। नहीं, दाग़िस्तान – यह केवल भौगोलिक धारणा नहीं है। दाग़िस्तान का अपना रंग-रूप है, उसकी अपनी इच्छायें-आकांक्षायें और सपने हैं। उसका साझा इतिहास, साझा भाग्य, साझे सुख-दुख हैं। क्या एक उंगली का दर्द दूसरी उंगली महसूस नहीं करती? हमारे यहां 'अक्तूबर क्रान्ति', 'लेनिन' और 'रूस' जैसे साझे शब्द भी हैं। इन शब्दों का हर भाषा में अनुवाद करने की भी ज़रूरत नहीं। अनुवाद के बिना ही वे तो समझ में आ जाते हैं। हम लेखकों के बीच बहुत-से वाद-विवाद होते हैं। किन्तु इन तीन शब्दों के बारे में हमारे बीच कोई मतभेद नहीं। आप समझ गये?"

प्रश्न – "यह तो हम समझ गये। लेकिन मैं एक और बात पूछना चाहता हूं। एक समाचारपत्र में मैंने आज अदाल्लो अलीयेव की कविता पढ़ी। अनातोली ज़ायत्स ने उसका रूसी में अनुवाद किया है। वहां कहा गया है कि अनुवाद दाग़िस्तानी भाषा से किया गया है। यह कौन-सी भाषा है?"

अबुतालिब – "यह भाषा तो मैं भी नहीं जानता। अदाल्लो अलीयेव से मेरी कल मुलाक़ात हुई थी और मैंने उससे बातचीत की थी। कल तक तो वह अवार था। मालूम नहीं कि उसमें ऐसा क्या परिवर्तन हो गया है। लेकिन आप इस मामले की तरफ़ कोई ख़ास ध्यान नहीं दें, यह तो महज़ ग़लती है।"

प्रश्न – "हमारे संयुक्त राज्य अमरीका में भी अनेक जातियां और भाषायें हैं। किन्तु मूलभूत, राजकीय भाषा अंग्रेज़ी है। सारे काम-काज, उत्पादन के सभी मामलों और दस्तावेज़ों में इसी भाषा का उपयोग होता है। लेकिन आपके यहां? आपके यहां कौन-सी मूलभूत भाषा है?"

अबुतालिब – "हर व्यक्ति के लिये उसकी मूलभूत भाषा उसकी मां की भाषा है। जो आदमी अपने पहाड़ों को प्यार नहीं करता, वह पराये मैदानों को भी प्यार नहीं कर सकता। जो सुख घर पर नहीं मिला, वह बाहर सड़क पर भी नहीं मिलेगा। जो अपनी मां की चिन्ता नहीं करता, वह परायी औरत की भी चिन्ता नहीं करेगा। जब हाथ में मजबूती से तलवार पकड़नी हो या किसी दोस्त के साथ तपाक से हाथ मिलाना हो तो हाथ की सभी उंगलियां मूलभूत होती हैं।"

प्रश्न – "मैंने मुतालिब मितारोव की लम्बी कविता पढ़ी है। उसमें उसने इस बात पर ज़ोर दिया है कि वह न तो अवार, न तात, न ताबासारान और न दाग़िस्तानी ही है। आप इसके बारे में क्या कह सकते हैं?"

अबुतालिब (मितारोव को नजरों से ढूंढ़ते हुए) – "सुनो मितारोव, तुम अवार, कुमिक, तात, नोगाई, लेज़्गीन नहीं हो, यह तो मैं बहुत अरसे से जानता हूं। लेकिन तुम ताबासारान भी नहीं हो, यह मैं पहली बार सुन रहा हूं। आखिर तुम कौन हो? कल तुम शायद यह लिख दो कि मुतालिब भी नहीं हो और मितारोव भी नहीं। मिसाल के तौर पर मैं अबुतालिब गफ़ूरोव हूं। मैं सबसे पहले तो लाक जाति का हूं, दूसरे दाग़िस्तानी हूं, तीसरे सोवियत देश का शायर हूं। या इसके उलट इस तरह कहा जा सकता है – सबसे पहले मैं सोवियत शायर हूं, दूसरे यह कि मैं दाग़िस्तान-जनतन्त्र में रहता हूं और तीसरे यह कि लाक जाति का हूं और लाक भाषा में लिखता हूं। यह सब कुछ मेरे साथ अविछिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यह मेरा सबसे क़ीमती खज़ाना है। मैं इनमें से किसी भी चीज़ से इन्कार नहीं करना चाहता। इनके लिये मैं अपनी जान की बाज़ी भी लगा दूंगा।"

प्रश्न (जर्मन जनवादी जनतन्त्र का संवाददाता) – "मेरे हाथों में चिकित्साशास्त्र के पी-एच० डी० साथी अलीकिशीयेव की पुस्तक है। इसका शीर्षक है – 'दाग़िस्तान में लम्बी उम्र'। इसमें लेखक ने एक सौ साल से ज़्यादा उम्र के लोगों के बारे में लिखा है

और यह साबित किया है कि लम्बी उम्र की दृष्टि से दाग़िस्तान का सोवियत संघ में पहला स्थान है। किन्तु आगे उसने इस बात की भी पुष्टि की है कि यहां की जातियों में धीरे-धीरे एक-दूसरी के निकट होने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है और अन्ततः दाग़िस्तान में एक ही जाति हो जाने की भी सम्भावना है। कुछ सालों के बाद अवार, दारगीन और नोगाई जाति के लोग अपने को दाग़िस्तानी मानने लगेंगे और पासपोर्ट में भी ऐसा ही लिखेंगे। मैंने आपके एक अन्य विद्वान के लेख भी पढ़े हैं जो इस बात की पुष्टि करता है कि आपका साहित्य जातियों की सीमायें तोड़कर पूरे दाग़िस्तान का साहित्य बनता जा रहा है। अगर विज्ञान के पी-एच० डी० और डी-लिट अपनी पुस्तकों और लेखों में ऐसे प्रश्न उठाते हैं तो इसका मतलब है कि ये प्रश्न महत्त्वपूर्ण और गहन हैं?"

अबुतालिब – "साथी अलीकिशीयेव से भी मैं परिचित हूं। वह हमारे ही इलाक़े का रहनेवाला है। यह विद्वान अनेक बुज़ुर्गों से इसलिये मिला कि वे उसे अपने जीवन के बारे में बतायें। लेकिन सभी जातियों की एक जाति बनाने का विचार शायद ही किसी सम्मानित बुज़ुर्ग ने प्रकट किया हो। यह उसके अपने ही दिमाग़ की उपज है। मैं बहुत-से ऐसे 'मिचूरिनों'* को जानता हूं जिन्होंने अपनी 'प्रयोगशालाओं' में विभिन्न भाषाओं को मिलाकर तथा उनपर खरगोशों की भांति तरह-तरह के प्रयोग करके एक संकरण भाषा बनाने की कोशिश की है। दाग़िस्तान के सात जातीय थियेटरों को मिलाकर एक थियेटर बनाने की कोशिश की गयी। दाग़िस्तान के पांच जातीय समाचारपत्रों को मिलाकर एक पत्र बनाने का प्रयास किया गया। हमारे लेखक-संघ के अनेक विभागों को एक विभाग में मिलाने का यत्न किया गया, लेकिन ये सारी

---

* मिचूरिन इवान व्लादीमिरोविच (१८५५-१९३५) – सोवियत वनस्पतिशास्त्री जिन्होंने विभिन्न वनस्पतियों के संकरण द्वारा वनस्पतियों की नयी क़िस्में उगायीं। – सं०

कोशिशें तो वैसी ही हैं जैसे कि अनेक शाखाओंवाले पेड़ को एक सीधे तने में बदलने की कोशिशें।"

प्रश्न—"मैं भारतीय समाचारपत्र का संवाददाता हूं। हमारे भारत में भी अनेक भाषायें हैं—हिन्दी, उर्दू, बंगाली... कुछ राष्ट्रवादियों ने यह चाहा कि उनकी भाषा ही सारे भारत की राजकीय भाषा बन जाये। इसके कारण वाद-विवाद और खूनी दंगे-फ़साद भी हुए। आपके यहां तो ऐसा कुछ नहीं हुआ?"

अबुतालिब—"एक बार दो लड़कों के बीच इस तरह का झगड़ा हुआ था। अवार और कुमिक जाति के दो लड़के एक गधे पर जा रहे थे। अवार जाति का लड़का चिल्ला रहा था—'ख़ुआ! ख़ुआ! ख़ुआमा!' और कुमिक लड़का चिल्ला रहा था—'एश! एश! एशेक!' इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ था—गधा। लेकिन लड़कों का झगड़ा इतना ज़्यादा बढ़ गया कि दोनों ही गधे से नीचे गिर गये और 'ख़ुआमा' तथा 'एशेक' के बिना रह गये। सम्भवतः यह तो बच्चों का वाद-विवाद है। हम अपनी भाषाओं को भेड़िये नहीं बनाते हैं। वे हमें चीरते-फाड़ते नहीं हैं। हमारे यहां तो यह भी कहा जाता है—'घरेलू मूर्ख अपने पड़ोसियों की निन्दा करता है, गांव का मूर्ख पड़ोस के गांवों की निन्दा करता है और राष्ट्रीय मूर्ख दूसरे देशों की निन्दा करता है।' जो आदमी किसी दूसरी भाषा के बारे में कुछ बुरा कहता है, उसे हमारे यहां आदमी ही नहीं माना जाता।"

प्रश्न—"तो आप यह कहना चाहते हैं कि इस सवाल को लेकर आपके यहां वाद-विवाद और किसी तरह की ग़लतफ़हमियां नहीं हुईं?"

अबुतालिब—"वाद-विवाद तो हुए। किन्तु हमारी भाषाओं के मामले में कभी और किसी ने भी गम्भीर हस्तक्षेप नहीं किया। हमारे नामों के मामले में भी। हर कोई उस भाषा में लिख, पढ़, गा और बातचीत कर सकता है जिसमें चाहता है। यह साबित करते हुए बहस तो की जा सकती है कि फ़लां चीज अच्छी या बुरी, सही या ग़लत और सुन्दर या कुरूप है। किन्तु

क्या पूरी की पूरी जातियां अथवा अल्प जातियां ग़लत, बुरी या कुरूप हो सकती हैं? इस विषय पर यदि वाद-विवाद हुए भी तो उनमें न तो किसी की जीत और न किसी की हार ही हुई।"

प्रश्न—"फिर भी क्या यह ज़्यादा अच्छा नहीं होगा कि दाग़िस्तान में एक ही जाति और एक ही भाषा हो?"

अबुतालिब—"अनेक लोग ऐसे कहते हैं—'काश, हमारी एक ही भाषा होती!' लंगड़े राजबादिन ने जार्जिया पर अपनी एक चढ़ाई के वक़्त ज़ार इराकली से यह कहा—'इस सारी मुसीबत की जड़ यह है कि हम एक-दूसरे की भाषा नहीं जानते।' हाजी-मुरात ने हाइदाक-ताबासारान से अपने इमाम को यह लिखा—'हम एक-दूसरे को नहीं समझे।'

"बेशक यह ज़्यादा अच्छा रहता है, जब लोग आसानी और पहले ही शब्द से एक-दूसरे को समझ जाते हैं। तब बहुत कुछ अधिक आसान हो जाता, कहीं कम श्रम से बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता। लेकिन अगर परिवार में बहुत बच्चे हों तो इसमें भी कुछ बुराई नहीं। परिवार को हर बच्चे की चिन्ता करनी चाहिये। बहुत कम माता-पिता ही बाद में इस चीज़ के लिये पछताते हैं कि उनके बहुत बच्चे हैं।

"कुछ लोग कहते हैं—'देर्बेन्त की सीमाओं से परे हमारी भाषा की किसे ज़रूरत है? हमें तो वहां कोई भी नहीं समझ पायेगा।'

"दूसरे कहते हैं—'अराकान दर्रे के आगे हमारी भाषा किस काम की है?'

"कुछ अन्य शिकायत करते हैं—'हमारे गीत तो सागर तक भी नहीं पहुंच सकेंगे।'

"लेकिन ऐसे लोग अपनी भाषाओं को अभिलेखागारों में भेजने की बहुत ही जल्दी कर रहे हैं।"

प्रश्न—"समेकन या एकजुटता के बारे में आपकी क्या राय है?"

अबुतालिब—"समेकन की पराये और बेगाने लोगों को ज़रूरत

होती है। भाइयों को समेकन से क्या लेना-देना है।"

प्रश्न—"फिर भी इसलिये कि भाई भाई से बात कर सकें उनकी एक ही भाषा होनी चाहिये।"

अबुतालिब—"हमारे यहां ऐसी एक भाषा है।"

प्रश्न—"कौन-सी?"

अबुतालिब—"वह भाषा जिसमें हम इस समय आपसे बातचीत कर रहे हैं। वह रूसी भाषा है। उसे अवार, दारगीन, लेज़्गीन कुमिक, लाक और तात, सभी जातियों के लोग समझते हैं (अबुतालिब ने लेर्मोन्तोव, पुश्किन और लेनिन के चित्रों की ओर संकेत किया।) इनके साथ तो हम एक-दूसरे को बहुत अच्छी तरह से समझते हैं।"

प्रश्न—"मैंने रसूल हम्ज़ातोव की दो खण्डों में प्रकाशित रचनायें पढ़ी हैं। पहले खण्ड में 'मातृभाषा' नामक कविता में उन्होंने अवार भाषा का गुणगान किया है, लेकिन दूसरे खण्ड में इसी शीर्षक की कविता में उन्होंने रूसी भाषा की स्तुति की है। क्या एकसाथ दो घोड़ों पर सवार हुआ जा सकता है? हम किस हम्ज़ातोव पर विश्वास करें—पहले या दूसरे खण्डवाले हम्ज़ातोव पर?"

अबुतालिब—"इस प्रश्न का स्वयं रसूल हम्ज़ातोव ही उत्तर दें।"

रसूल—"मैं भी यही समझता हूं कि एकसाथ दो घोड़ों पर सवार नहीं हुआ जा सकता। लेकिन दो घोड़ों को एक ही गाड़ी या बग्घी में ज़रूर जोता जा सकता है। दोनों बग्घी को खींचें। दो घोड़े—दो भाषायें दाग़िस्तान को आगे ले जाती हैं। उनमें से एक रूसी है और दूसरी हमारी—अवार जातिवालों के लिये अवार, लाकों के लिये लाक। मुझे अपनी मातृभाषा प्यारी है। मुझे अपनी दूसरी मातृभाषा भी प्यारी है जो मुझे इन पर्वतों, इन पहाड़ी पगडंडियों से पृथ्वी के विस्तार, बहुत बड़ी और समृद्ध दुनिया में ले गयी। सगे को ही मैं सगा कहता हूं। मैं दूसरा कुछ कर ही नहीं सकता।"

प्रश्न—"इस सम्बन्ध में मैं रसूल हम्ज़ातोव से कुछ और भी पूछना चाहता हूं। अपनी कविता में उन्होंने लिखा है—'अगर अवार भाषा के भाग्य में कल मरना बदा है तो मैं दिल के दौरे से आज ही मर जाऊं।' लेकिन आपके यहां तो यह भी कहा जाता है कि 'जब बड़ा आये तो छोटे को उठकर खड़ा हो जाना चाहिये।' रूसी भाषा आ गयी। क्या छोटी, स्थानीय भाषा को उसके लिये अपनी जगह नहीं छोड़नी चाहिये? आप लोगों के शब्दों में ही सिर पर दो टोपियां एकसाथ नहीं ओढ़नी चाहिये। या किसलिये एकसाथ ही दो सिगरेटें मुंह में ली जायें?"

रसूल—"भाषायें न तो टोपियां हैं और न सिगरेटें। भाषा की भाषा से दुश्मनी नहीं होती। एक गीत दूसरे गीत की हत्या नहीं करता। पुश्किन के दाग़िस्तान में आ जाने पर महमूद को अपनी मातृभूमि नहीं छोड़नी चाहिये। लेर्मोन्तोव किसलिये बातीराय की जगह ले! अगर कोई अच्छा दोस्त हमसे हाथ मिलाता है तो हमारा हाथ उसके हाथ में ग़ायब नहीं हो जाता। वह अधिक गर्म और मज़बूत ही हो जाता है। भाषायें सिगरेटें नहीं, जीवन के दीपक हैं। मेरे दो दीपक हैं। एक ने पैतृक घर की खिड़की से मेरा मार्ग रोशन किया। उसे मेरी मां ने जलाया था ताकि मैं रास्ते से भटक न जाऊं। अगर यह दीपक बुझ जायेगा तो सचमुच मेरा जीवन-दीप भी बुझ जायेगा। अगर मैं शारीरिक रूप से नहीं मरूंगा तो भी मेरा जीवन गहरे अन्धेरे में डूब जायेगा। दूसरा दीपक मेरे महान देश, मेरी बड़ी मातृभूमि रूस ने जलाया है, ताकि मैं बड़ी दुनिया में अपनी राह न भूल जाऊं। उसके बिना मेरा जीवन अन्धकारमय और तुच्छ हो जायेगा।"

अबुतालिब—"पत्थर को उठाना कैसे ज़्यादा आसान है—एक हाथ से कंधे पर से या दो हाथों से छाती पर से?"

प्रश्न—"फिर भी पहाड़ी लोग अपने उन घरों को छोड़कर जा रहे हैं जहां उनकी माताओं ने दीपक जलाये और जाकर मैदानों में बस रहे हैं?"

अबुतालिब—"किन्तु दूसरी जगहों पर जाकर बसने के समय

वे अपनी भाषा और अपने नाम भी अपने साथ ले जाते हैं। वे अपनी समूरी टोपी ले जाना भी नहीं भूलते। उनकी खिड़कियों में रोशनी भी वही जगमगाती है।"

प्रश्न – "लेकिन नयी जगहों पर नौजवान लोग अक्सर दूसरी जातियों की युवतियों से शादियां कर लेते हैं। वे किस भाषा में बात करते हैं? और बाद में उनके बच्चे किस भाषा में बात करते हैं?"

अबुतालिब – "हमारे यहां एक पुराना क़िस्सा है। एक नौजवान को किसी दूसरी जाति की युवती से मुहब्बत हो गयी और उसने उससे शादी करने का फ़ैसला किया। युवती ने कहा – 'मैं तुम्हारे साथ तब शादी करूंगी, जब तुम मेरी सौ इच्छायें पूरी कर दोगे।' नौजवान उसकी सनकें पूरी करने लगा। सबसे पहले तो उसने नौजवान को ऐसी चट्टान पर चढ़ने को मजबूर किया जिसमें पांव टिकाने के लिये आगे को बढ़ा हुआ एक भी हिस्सा नहीं था। इसके बाद इस चट्टान से नीचे कूदने को कहा। नौजवान कूदा और उसकी टांग पर चोट आ गयी। युवती ने तीसरी इच्छा यह प्रकट की कि वह लंगड़ाये बिना चले। खैर, नौजवान ने लंगड़ाना बन्द कर दिया। युवती ने उसे तरह-तरह के कार्यभार सौंपे, जैसे कि खुरजी को भीगने न देकर तैरते हुए नदी को पार करे, सरपट दौड़े आते घोड़े को रोक दे, घोड़े को घुटने टेकने को मजबूर करे, यहां तक कि उस सेब को भी काट डाले जिसे युवती ने अपनी छाती पर रख लिया था... नौजवान ने युवती के निन्यानवे आदेश पूरे कर दिये। सिर्फ़ एक ही बाक़ी रह गया। तब युवती ने कहा – 'अब तुम अपनी मां, पिता और भाषा को भूल जाओ।' यह सुनते ही नौजवान उछलकर घोड़े पर सवार हो गया और हमेशा के लिये उससे नाता तोड़कर चला गया।"

प्रश्न – "यह सुन्दर क़िस्सा है। मगर हक़ीक़त क्या है?"

अबुतालिब – हक़ीक़त तो यह है कि कोई नौजवान और युवती जब दाम्पत्य जीवन आरम्भ करते हैं तो अपने ऊपर बहुत-सी ज़िम्मेदारियां लेते हैं। लेकिन कोई भी दूसरे से अपनी भाषा भूल

जाने को नहीं कहता। इसके विपरीत, हर कोई दूसरे की भाषा जानने की कोशिश करता है।

"हक़ीक़त तो यह है कि हम बड़ी उदासी से और भर्त्सना करते हुए ऐसे बच्चों की तरफ़ देखते हैं जो अपने माता-पिता की भाषा नहीं जानते। खुद बच्चे ही माता-पिता की इसलिये भर्त्सना करने लगते हैं कि उन्होंने उन्हें अपनी भाषा नहीं सिखाई। ऐसे लोगों पर तरस आता है।

"हक़ीक़त यह है कि हम आपके सामने बैठे हैं। ये रहीं हमारी कवितायें, कहानियां, उपन्यासिकायें और पुस्तकें। ये हैं हमारी पत्र-पत्रिकायें। ये विभिन्न भाषाओं में छपती हैं और हर साल अधिकाधिक संख्या में छापी जाती हैं। विराट देश ने हमारी भाषाओं को पीछे नहीं धकेल दिया है। उसने उन्हें क़ानूनी मान्यता दी है, उनकी पुष्टि की है और वे सितारों की तरह जगमगा उठी हैं। 'और तारक तारिका से बात करता।'* हम दूसरों को देखते हैं और दूसरे हमें देखते हैं। अगर ऐसा न होता तो आपने भी हमारे बारे में कुछ न सुना होता, हममें कोई दिलचस्पी न ली होती। हमारी यह मुलाक़ात भी न हुई होती। तो हक़ीक़त ऐसी है..."

प्रश्न—उत्तर, प्रश्न—उत्तर। अगर वक़्त होता तो लगता है कि हमारा यह सम्मेलन कभी समाप्त न होता। सभी जनगण में लगातार भाषा के बारे में बातचीत होती रही है और हो रही है, किन्तु इस बातचीत का कभी अन्त होता नज़र नहीं आता।

"हमारा यह पत्रकार-सम्मेलन झूमर नृत्य-गान के खेल के समान है जिसमें कुछ लोग प्रश्न पूछते हैं और दूसरे उत्तर देते हैं," इस तरह के सम्मेलन के आदी न होने के कारण बुरी तरह से थके-हारे अबुतालिब ने अन्त में कहा।

प्रश्न—वह तो कमान से छोड़ा हुआ तीर है जो कहीं भी जा

---

* लेर्मोन्तोव की कविता की एक पंक्ति।—सं०

गिरे। जवाब – वह तो निशाने पर जा लगनेवाला तीर है। प्रश्न – उत्तर। प्रश्नसूचक चिह्न – विस्मयबोधक चिह्न। अतीत – प्रश्न है, वर्तमान – उत्तर है।

पुराना दाग़िस्तान पत्थर पर बैठी हुई बुढ़िया के समान था। वह प्रश्नसूचक चिह्न था। आज का दाग़िस्तान – विस्मयबोधक चिह्न है। वह म्यान से बाहर निकली और तनी हुई तलवार है।

जब दाग़िस्तान में क्रान्ति पहुंची तो उससे आतंकित लोगों ने कहा कि जल्द ही जातियां, भाषायें, नाम और रंग लुप्त हो जायेंगे। हमारी औरतों का मेसेदा नाम मारूस्या बन जायेगा और मर्दों का मूसा नाम वास्या हो जायेगा। यह भी कहा गया कि आदमी को यह तक सोचने की फ़ुरसत नहीं होगी कि वह किस जाति और किस जगह का है। सभी को एक साझे कम्बल के नीचे लिटा दिया जायेगा। बाद में अधिक शक्तिशाली लोग कम्बल को अपनी ओर खींच लेंगे और अधिक दुर्बल लोग ठिठुरते रह जायेंगे।

दाग़िस्तान ने ऐसे लोगों की बातों पर कान नहीं दिया। पर्वतीय सरकार के सदस्य, गाइदार बामातोव ने उसे विदेश ले जानेवाले जहाज़ पर चढ़ते हुए कहा था – "उनकी आत्माओं ने मेरे शब्दों को स्वीकार नहीं किया। देखेंगे कि आगे क्या होता है।"

आगे क्या हुआ, यह सभी देख रहे हैं। इसे पुस्तक में लिखा जा चुका है, गीतों में गाया जा चुका है। जिनके कान हैं – वे सुन लेंगे, जिनकी आंखें हैं – वे देख लेंगे।

एक पहाड़िये ने साझे कम्बल से डरकर दाग़िस्तान छोड़ दिया और तुर्की चला गया। पचास साल बाद वह दाग़िस्तान में यह देखने आया कि हमारे यहां ज़िन्दगी का रंग-ढंग कैसा है। मैंने उसे मखाचकला में, जो पहले पोर्ट-पेत्रोव्स्क कहलाता था, घूमने के लिये आमन्त्रित किया। रूसी ज़ार का नामवाला शहर अब दाग़िस्तान के क्रान्तिकारी मखाच का नाम धारण किये हुए है। मैंने मेहमान को दाग़िस्तान के सपूतों – बातीराय, उल्लूबी, कापीयेव – के सम्मान में उनके नामोंवाली सड़कें दिखायीं। मेहमान सागर तटवर्ती चौक में सुलेमान स्ताल्स्की के स्मारक को देर तक

देखता रहा। लेनिन सड़क पर उसने मेरे पिता – हम्ज़ात त्सादासा का स्मारक देखा। पता चला कि दाग़िस्तान छोड़कर जाने से पहले वह मेरे पिता जी से परिचित था।

विज्ञान अकादमी की शाखा के विद्वानों ने उससे भेंट की। उसने इतिहास, भाषा तथा साहित्य के वैज्ञानिक-अनुसन्धान इन्स्टीट्यूट के सहकर्मियों से बातचीत की। उसने दाग़िस्तान के इतिहास और कला-संग्रहालय के हॉलों को देखा। वह विश्वविद्यालय में भी गया जहां पहाड़ी युवक-युवतियां पन्द्रह विभागों में शिक्षा पाते हैं। शाम को हम राजकीय अवार थियेटर में गये। अवार जाति के नामवाले थियेटर में अवार लोग अवार लेखक का अवार युवती के बारे में लिखा हुआ नाटक देख रहे थे। यह हाजी ज़ालोव द्वारा लिखा गया 'अनख़ील मारीन' नाटक था। जब रूसी संघ की जन-कलाकार पातीमात हिज़रोयेवा ने, जो मारीन की भूमिका निभा रही थी, एक पुराना अवार गाना गाया तो हमारा मेहमान अपनी भावनाओं को वश में नहीं रख सका और उसकी आंखें छलछला आईं।

चौक में वह देर तक लेनिन के स्मारक के सामने खड़ा रहा। इसके बाद बोला –

"मैं यह सपना तो नहीं देख रहा हूं?"

"इस सपने के बारे में आप तुर्की में रहनेवाले अवार जाति के लोगों को बताइये।"

"वे यक़ीन नहीं करेंगे। अगर मैंने अपनी आंखों से यह सब न देखा होता तो ख़ुद भी यक़ीन न करता।"

अबुतालिब ने ऐसे कहा था – "पहली बार मैंने नरकट काटा, उसकी मुरली बनाई और उसे बजाया। मेरे गांव ने मेरी मुरली की आवाज़ सुनी। इसके बाद मैंने पेड़ की मोटी टहनी काटी, उसकी तुरही बनायी और उसपर दूसरा गाना बजाया। मेरी आवाज़ दूर पहाड़ों तक सुनी गयी। इसके बाद मैंने पेड़ काटकर

उसका ज़ुरना बनाया और उसकी आवाज़ सारे दाग़िस्तान में गूंज गयी। इसके बाद मैंने छोटी-सी पेंसिल लेकर काग़ज़ पर कविता लिख दी। वह दाग़िस्तान की सीमाओं से कहीं दूर उड़ गयी।"

तो भाषायें बांटनेवाले भगवान के दूत, तुम्हारा एक बार फिर से शुक्रिया, इस चीज़ के लिये शुक्रिया कि तुमने हमारे पर्वतों, हमारे गांवों और हमारे दिलों की अवहेलना नहीं की।

उन सब का भी शुक्रिया जो अपनी मातृभाषाओं में गाते और सोचते हैं।

गीत

"बाक्अन।" अवार भाषा के इस शब्द के दो अर्थ हैं—धुन, लय-सुर और तबीयत, किसी व्यक्ति का हालचाल, संसार का कुशल-मंगल। जब कोई व्यक्ति यह अनुरोध करना चाहता है—"मेरे लिये एक धुन बजा दो", तो "बाक्अन" शब्द कहा जाता है। जब यह पूछा जाता है—"तुम्हारी तबीयत कैसी है या तुम्हारा कैसा हालचाल है?—तब भी "बाक्अन" शब्द कहा जाता है। तो इस तरह हालचाल और गीत—एक ही शब्द में घुल-मिल जाते हैं।

पन्दूरे पर आलेख—

मृत्यु-सेज पर खंजर हंसता-गाता व्यक्ति सुलाये
पन्दूरा तो मरे हुए को, जीवित करे, उठाये।

शब्दों, बातचीत को छलनी में से छान लो—गीत बन जायेगा। घृणा, क्रोध और प्यार को छलनी में से छान लो—गीत बन जायेगा। घटनाओं, लोगों के काम-काज, पूरे जीवन को छलनी में से छान लो—गीत बन जायेगा।

"पहाड़ी लोगों का एक गाना तो विशेष रूप से अबुतालिब का मन छूता था। उसमें शब्द तो इने-गिने थे और उसका सारा सौन्दर्य

उसकी कारुणिक टेक 'आई! दाई, दालालाई!' में ही निहित था। येरोश्का ने गाने के शब्दों का अनुवाद किया—'एक नौजवान भेड़ों को चराने के लिये उन्हें गांव से पहाड़ पर ले गया, रूसी आ गये, उन्होंने गांव जला दिया, सारे मर्दों को मौत के घाट उतार दिया और सारी औरतों को बन्दी बना लिया। नौजवान पहाड़ से लौटा—जहां गांव था, वहां अब वीराना था, मां नहीं थी, भाई नहीं थे, घर नहीं था, सिर्फ़ एक पेड़ रह गया था। नौजवान पेड़ के नीचे बैठ गया और फूट-फूटकर रोने लगा। वह अकेला, अकेला रह गया और दुखी होते हुए गाने लगा—आई, दाई! दालालाई!' (लेव तोलस्तोय, 'कज़्ज़ाक')।

...आई, दाई, दाल्ला-लाई, दाल्ला, दाल्ला, दुल्ला-लाई-दुल्लालाई! पहाड़ों के प्यारे और दर्द भरे गीतो, तुम्हारा कब, कहां तथा कैसे जन्म हुआ? कहां से आ गये तुम इतने अद्भुत और इतने प्यारे?

पन्दूरे पर आलेख—

तुम्हें लगता है कि ये धुनें तारों का ही कमाल हैं
किन्तु ध्वनियों में गूंजता हमारे दिल का हाल है।

खंजर पर आलेख—

दो गीत, दो तेज़ फल, दो पक्ष, दिशायें हैं
उनमें शत्रु की मृत्यु, आज़ादी की सदायें हैं।

पालने पर आलेख—

व्यक्ति न कोई इस दुनिया में
अरे, पालने पर जिसके
प्यारी, प्यारी, मधुर लोरियां
गीत न मां के हों गूंजे।

सड़क-किनारे के पत्थर पर आलेख—

मार्ग और गाना, बस, ये ही बनते भाग्य जवान के
साथ सदा ही दोनों रहते, उसके जीवन-प्राण के।

क़ब्र के पत्थर पर आलेख –

वह गाता था, लोग उसे तब सुनते थे
अब वह सुनता, लोग यहां जब गाते हैं।

पुराने गीत, नये गीत... लोरियां, शादी के गीत, जुझारू गीत। लम्बे और छोटे गीत। कारुणिक और विनोदपूर्ण गीत। सारी पृथ्वी पर तुम्हें गाया जाता है! शब्द तो माला की तरह रुपहले धागे में पिरोये जाते हैं। शब्द तो कील की तरह मज़बूती से गड़ जाते हैं। शब्द तो मानो किसी सुन्दरी के आंसुओं की तरह सहजता से जन्म लेते और उभरते आते हैं। शब्द किसी सधे, अनुभवी हाथ द्वारा छोड़े गये तीर की तरह ठीक निशाने पर जाकर लगते हैं। शब्द तेज़ी से उड़ते हैं और पहाड़ी पगडंडियों की तरह, जिनपर आख़िर तो पृथ्वी के छोर तक जाया जा सकता है, दूर ले जाते हैं।

पंक्तियों के बीच का स्थान मानो सड़क है जिसपर तुम्हारी प्रियतमा का घर खड़ा है। यह स्थान तो पिता के खेत की मेंड़ है। यह तो दिन को रात से अलग करनेवाली उषा और सन्ध्या है।

काग़ज़ पर लिखे और काग़ज़ पर न लिखे हुए गीत। किन्तु चाहे कोई भी गीत क्यों न हो, उसे गाया जाना चाहिये। गाया न जानेवाला गीत तो मानो उड़ न सकनेवाला परिन्दा है, मानो स्पन्दित न होनेवाला, न धड़कनेवाला दिल है।

हमारे पहाड़ी इलाक़ों में कहा जाता है कि चरवाहे जब गीत नहीं गाते हैं तो भेड़ें घास चरना बन्द कर देती हैं। किन्तु जब पहाड़ की हरी-भरी ढलान के ऊपर गीत गूंजता है तो कुछ ही समय पहले जन्मे और घास चरना न जाननेवाले मेमने भी घास चरने लगते हैं।

एक पहाड़िये ने अपने पहाड़ी दोस्त से कहा कि वह अपनी

मातृभाषा में कोई गीत गाये। या तो मेहमान एक भी गाना नहीं जानता था, या उसे गाना नहीं आता था, लेकिन उसने यह जवाब दिया कि उसके जनगण में एक भी गाना नहीं है।

"तब तो यह देखना होगा कि आप स्वयं तो हैं या नहीं? गीत-गाने के बिना जनगण का अस्तित्व नहीं हो सकता!"

आई, दाई, दाल्लालाई! दाला-दाला, दुल्ला-लाई! गीत—ये तो वे चाबियां हैं जिनसे भाषाओं के निषिध सन्दूक़ खोले जाते हैं। आई, दाई, दाल्ला-लाई! दाला-दालादुल्ला-लाई!

मैं यह बताता हूं कि गीत का जन्म कैसे हुआ। इसके बारे में मैंने बहुत पहले ही एक कविता रची थी। यहां प्रस्तुत है।

खंजर और कुमुज़

युवक एक दर्रे के पीछे
रहता था जो पर्वत पर,
अंजीरों का पेड़, और था
उसकी दौलत, बस, खंजर।

एक अकेली बकरी जिसे
चराता था वन-प्रांगण में
किसी खान की बेटी सहसा
समा गयी उसके मन में।

युवक साहसी, समझदार भी
शादी का प्रस्ताव किया,
खान हंसा सुन बात युवक की
रूखा उसे जवाब दिया—

"एक पेड़, खंजर के मालिक
तुम अपना मुंह धो रखो,

जाओ, अपने घर जाकर तुम
बकरी अपनी रोज़ दुहो।"

बेटी की शादी की उससे
सोने की जिसके मुहरें,
ढेरों भेड़-बकरियां जिसकी
चरागाह में वहां चरें।

युवक निराशा-दुख में डूबा
राख हुआ दिल भी जलकर,
विरह-वेदना में ही उसने
लिया हाथ में तब खंजर।

बलि बकरी की उसने दे दी
और पेड़ भी काट दिया,
बड़े प्यार से जिसको रोपा
और सींचकर बड़ा किया।

पेड़-तने से कुमुज़ बनाया
बाजा यों तैयार किया,
अन्तड़ियां लेकर बकरी की
उसपर उनको तान दिया।

तार छेड़ते ही बाजे के
उनसे ऐसा स्वर निकला,
पावन-पुस्तक शब्द कि जैसे
जैसे कोई स्वर्ग-कला।

तब से कभी न बूढ़ी होकर
पास प्रेयसी है उसके,
कुमुज़ और खंजर – ये दो ही
सिर्फ़ ख़ज़ाने हैं जिसके।

घिरा धुंध में, चट्टानों से
सदा गांव ऊंचाई पर,

वहीं सामने लटक रहे हैं
कुमुज, साथ में ही खंजर।

कुमुज और खंजर। लड़ाई और गीत। प्यार और वीरता। मेरी जनता का इतिहास। इन दो चीज़ों को हमारे पहाड़ी लोग सर्वाधिक सम्मानित स्थान देते हैं।

पहाड़ी घरों में, दीवारी क़ालीनों पर ये दोनों निधियां एक-दूसरी के सामने ऐसे टंगी रहती हैं जैसे कुल चिह्न। पहाड़ी लोग बड़ी सावधानी, आदर और प्यार से इन्हें हाथों में लेते हैं। आवश्यकता के बिना तो बिल्कुल हाथ में नहीं लेते। जब कोई व्यक्ति खंजर को क़ालीन पर से उतारने लगता है तो पीछे से कोई बुज़ुर्ग ज़रूर यह कह उठता है–"सावधानी से, कहीं पन्दूरे के तार नहीं तोड़ देना।" जब कोई पहाड़िया पन्दूरे को दीवार पर से उतारता है तो पीछे से कोई बुज़ुर्ग ज़रूर यह कह उठता है–"सावधानी से, उंगलियां न काट लेना।" खंजर पर पन्दूरे और पन्दूरे पर खंजर की पच्चीकारी की जाती है। युवती की चांदी की पेटी और वक्ष के चांदी के गहनों पर कुमुज़ और खंजर को उसी तरह से साथ-साथ चित्रित किया जाता है, जैसे वे दीवारी क़ालीन पर साथ-साथ लटकते रहते हैं। पहाड़ी लोग युद्ध-क्षेत्र में जाते वक़्त खंजर और कुमुज़ को अपने साथ ले जाते थे। पहाड़ी घर की सम्मानित दीवार सूनी और नंगी-बुच्ची हो जाती थी।

"किन्तु युद्ध-क्षेत्र में पन्दूरा किसलिये ले जाया जाये?"

"अरे वाह! जैसे ही तारों को झनझनाया जाता है, जैसे ही उन्हें छुआ जाता है, वैसे ही बाप-दादों का क्षेत्र, प्यारा गांव और मां की स्मृतियोंवाला पहाड़ी घर–यह सभी कुछ हमारे पास आ जाता है। इसी के लिये तो लड़ने और मरने में कोई तुक है।"

"जब तलवारों की टनकार होती है तो गांव नज़दीक आ जाते हैं," हमारे सूरमा कभी कहा करते थे। किन्तु प्यारे गांवों

की राहें पन्दूरे की झनक से अधिक तो कोई कम नहीं करता।
"आई, दाई, दाल्ला-लाई। दाल्ला-दाल्ला-दुल्ला-लाई!"

महमूद कार्पेथिया के पहाड़ों में गाता था और अपने गांव, अपने प्यारे पर्वतों को अपने नज़दीक महसूस करता था। उसकी मरियम भी मानो उसके निकट होती थी। बाद में महमूद ने वसीयत की –

मेरी क़ब्र जहां हो उसपर, मिट्टी तुम कम डालना
ताकि न ढेले मिट्टी के, सुनने में बाधा बन पायें
ताकि हृदय औ' कान सुन सकें
गीत गांव में जो गायें।

मेरे प्यारे पन्दूरे को, तुम दफ़नाना मेरे साथ
ताकि न मेरे गीतों से, वे गहरी निद्रा सो जायें,
ताकि दर्द से भरी हुई आवाज़ गांव की सुन्दरियां
सब ही मेरी सुन पायें।

महमूद ने मानो ऐसे भी कहा था –

पर्वत तक भी झुक जाते हैं, मेरे पन्दूरे को सुनकर
किन्तु तुम्हारे दिल को कैसे द्रवित करूं, मरियम प्यारी?
सांप-नाग तक लगें नाचने, मेरे पन्दूरे की धुन पर
किन्तु तुम्हारे दिल को कैसे द्रवित करूं, मरियम प्यारी?

आप यह जानना चाहते हैं कि पहाड़ी गीत का कैसे जन्म हुआ?

जनता के सपनों में इसने जन्म लिया
नहीं किसी को ज्ञात कि कब था यह जन्मा,
यह तो चौड़ी छाती में मानो पिघला
गर्म रक्त की धाराओं में यह उबला।

यह तो तारों की ऊंचाई से आया
दाग़िस्तानी गांवों ने इसको गाया,
सुना सैकड़ों, बहुत पीढ़ियों ने इसको
उससे पहले, जब तुम सुन पाये इसको।

गीत – ये तो पहाड़ी जल-धारायें हैं। गीत – ये तो लड़ाई के मैदान से सरपट घोड़े दौड़ाते हुए समाचार लेकर आनेवाले हरकारे हैं। गीत – ये तो अचानक मेहमान के रूप में आ जानेवाले दोस्त हैं, मित्र हैं। आप अपने तरह-तरह के बाजे – पन्दूरा, चोंगूर, चागान, तुरही, केमांचू, जुरना, खंजड़ी, हार्मोनियम, ढोल हाथों में ले लें या चिलमची अथवा तांबे-कांसे की थाली ही ले लें। ताली से ही ताल दें। फ़र्श पर एड़ियां ही बजायें। सुनिये, तलवारें कैसे तलवारों से टकराती हैं। सुनिये, प्रेयसी की खिड़की में फेंका हुआ कंकड़ कैसी आवाज़ पैदा करता है। हमारे गीतों को गाइये और सुनिये। ये ग़म और ख़ुशी के दूत हैं। ये इज़्ज़त-आबरू और बहादुरी के पासपोर्ट हैं, विचारों और कार्यों के प्रमाणपत्र हैं। ये जवानों को साहसी और बुद्धिमान तथा बूढ़ों और बुद्धिमानों को जवान बनाते हैं। ये घुड़सवार को घोड़े से उतरने और इन्हें सुनने को विवश करते हैं। ये पैदल जानेवाले को उछलकर घोड़े पर सवार होने और पक्षी की तरह उड़ने को मजबूर करते हैं। नशे में धुत्त को ये नशा दूर करके गम्भीर बनाते हैं और अपने भाग्य के बारे में सोचने को विवश करते हैं और नशे में न होनेवाले को जांबाज़ दिलेर तथा मानो नशे में धुत्त करते हैं। इस दुनिया में किस-किस चीज़ के बारे में गीत नहीं हैं! पहाड़ी आदमी को अपने गर्म चूल्हे के पास बैठाइये, उसके लिये घरेलू, फेनवाली बियर से भरा सींग लाइये और उससे गाने का अनुरोध कीजिये। वह गाने लगेगा। अगर आप चाहेंगे तो वह सुबह तक गाता रहेगा, सिर्फ़ आप उससे ज़ोरदार अनुरोध करें और यह भी बता दें कि वह किस बारे में गाये। प्यार के बारे में? आप प्यार के बारे में भी गीत सुन सकेंगे।

आई, दाई, दालालाई!
प्यार रक्त-सा लाल, लाल गुललाला-सा
प्यार रात-सा, छल-फ़रेब-सा, काला-सा।
वह सफ़ेद है, रिबन कि जैसे हो सिर का
वह सफ़ेद है, कफ़न कि जैसे चादर का।
आसमान के जैसा, वह नीला हिम-सा
वह तो प्यारा तारों जैसी झिल-मिल-सा।
हिम गिर जाता और सूखती जल-धारा
प्रेम-पुष्प का रंग सदा रहता प्यारा।

—इस दुनिया में सबसे सुन्दर क्या है?

—पहाड़ों में बनफ़शा का फूल।

—पहाड़ों में बनफ़शा के फूल से अधिक सुन्दर क्या है?

—प्रेम।

—दुनिया में सबसे ज़्यादा उज्ज्वल क्या है?

—पहाड़ों में सुबह के वक़्त का सूरज।

—पहाड़ों में सुबह के वक़्त के सूरज से अधिक उज्ज्वल क्या है?

—प्रेम।

—आई, दाई, दालालाई! आपको और किस चीज़ के बारे में गीत सुनायें?

—प्रेम के कारण मरनेवाले प्रेमियों के बारे में।

—रोमियो और जूलियट, ताहिर और ज़ुहरा, त्रीस्तान और इज़ोल्डा...

क्या कुछ कम संख्या थी उनकी हमारे दाग़िस्तान में! कितने थे हमारे यहां ऐसे प्रेमी जो एक-दूसरे के नहीं बन सके! उनके सपने साकार नहीं हुए, उनके होंठ और हाथ नहीं मिल सके। अनेक जवानों को जंग निगल गयी और अनेक प्रेम के कारण मौत के मुंह में चले गये। वे उसकी आग में जल गये, ऊंची चट्टानों से नीचे कूद गये, तूफ़ानी नदियों की लहरों में समा गये। अज़ाइनी गांव की युवती और कुमुख गांव का युवक। तो यह है उनका

क़िस्सा, उनके प्यार का क़िस्सा। मैं आपको उनके प्यार का अन्त बताता हूं जिसे दाग़िस्तान में सभी जानते हैं।

कुमुख़ गांव का युवक अपनी प्रेमिका को एक नज़र देख लेने के लिये अजाइनी गांव में गया। किन्तु वह नज़र नहीं आई। युवक ने चार दिन और चार रातों तक राह देखी। पांचवें दिन वह अपने घर लौटने के लिये घोड़े पर सवार हो गया।

उसने नीचे देखा – सूखी धरती पड़ी नज़र
था नीला आकाश कि उसने जब देखा ऊपर।
अरे, कहां से बारिश आई, यह पानी बरसा
नौजवान का अरे, लबादा, जिसने भिगो दिया?
वहां प्रेयसी मेसेदा थी खड़ी हुई छत पर
आंसू बहते यों आंखों से ज्यों निर्झर झरझर।
–"चार दिनों-रातों तक मैंने तेरी राह तकी
किस कारण तुम रहीं कि मुझसे ऐसे छिपी-छिपी?"
–"बहुत दूर से ही घोड़े की टापों को सुनकर
चार द्वार, तालों का पहरा बिठा दिया मुझपर,
मेरे भाइयों ने ही मुझपर ऐसा जुल्म किया,
चार दिनों तक मैंने अपने मन को मार लिया।
किन्तु पांचवें दिन घोड़े पर जब तुम बैठ गये
मेरे धीरज और सब्र के बन्धन टूट गये,
मैंने चारों दरवाज़े भी, ताले तोड़ दिये
ऐसा प्यार प्रबल है मेरा, वह तूफ़ान लिये!
मुझे माल की तरह, यहां पर बेचा जाता है
सब सौदागर, नहीं किसी से मेरा नाता है।
उससे शादी करना चाहें, जिसे न प्यार करूं
तुम मत जाओ, रुको यहीं पर, तुमसे यही कहूं।"

...लेकिन कुमुख़ से आनेवाला नौजवान अब रुकना नहीं चाहता था।

–"ज़ीन कसा मैंने घोड़े पर, क्या उतार सकता?
क्या कुछ कहें पड़ोसी, साथी, यह भी ज़रा बता?
मंगलमय पथ कहा मित्र ने मुझको विदा किया
फिर से लौटूं उसके घर को, यह सम्भव है क्या?

मैं जाता हूं, हृदय तुम्हारे पास छोड़ जाता।"
–"भाई उसको यों नोचें ज्यों कौवा, नोच खाता।"
–"बड़ी खुशी से अपनी आंखें छोड़ यहां जाऊं।"
–"भाई चूसें उन्हें बाल सम, मैं यह बतलाऊं।
हर हालत में मुझे छोड़ना ही यदि चाह रहे
गांव-छोर तक घोड़ा ले जाओ धीरे-धीरे,
तुम लगाम को थाम, गांव के बाहर तक जाओ
घूम वहां तुम, नज़र ज़रा फिर मुझपर दौड़ाओ।
घाटी में अपने घोड़े को, घास खिलाना तुम
और नदी पर ठण्डा पानी, उसे पिलाना तुम,
जब हो जाये रात, लबादा ढककर सो जाना
जब जागो तो याद हृदय में मेरी तुम लाना,
जब बारिश हो यही समझना, आंसू जल बरसे
बर्फ़ गिरे तो समझो, मेरा दिल तड़पे, तरसे।"

गर्वीले नौजवान ने घोड़े पर तीन बार चाबुक बरसाया, तीन बार पीछे मुड़कर देखा और गांव से चला गया। तीन सप्ताह बीत गये। हिम ने पर्वतों को ढंक दिया। क़िस्मत की मारी मेसेदा ने उस व्यक्ति से शादी नहीं करनी चाही जिसे प्यार नहीं करती थी और इसलिये चट्टान से गिरकर आत्महत्या कर ली। उसी शाम को पिता और भाइयों ने आज्ञा का उल्लंघन करनेवाली मेसेदा को बर्फ़ के तूफ़ान में बाहर सड़क पर निकाल दिया था।

उस रात को वह यह गाती रही थी–

यही चाहती, सौ दुहितायें जन्म पिता के घर में लें
पिता उन्हें जल्दी से बेचें, धन लेकर शादी कर दें।
ताकि शादियों में वह उनकी, जी भर मौज करें
वह इतनी दौलत, सोना लें, लेकर उसे मरें।
यही कामना, धनी दुलहनें भाई भी ढूंढें
उनके साथ बितायें जीवन, प्यार न जिन्हें करें।
वे होंठों को नहीं कि अपनी दौलत को चूमें
हिमकण जो तन मेरा काटें, चांदी में बदलें
पांव छू रही नद-धारायें, रूपा रूप धरें,

पिता, भाइयों के लालच को, वे कुछ तृप्त करें।
मेरे प्रियतम, हिम का अंधड़, उसका शोर सुनो
रात बिताने को तुम कोई अच्छी जगह चुनो।
प्रियतम, पांव-तले हिम-परतें, पांव सम्भल, रखो
तुम मत पीछे नज़र घुमाओ, आगे को देखो।

या तो नौजवान को मौत के मुंह में जाती अपनी मेसेदा की आहें सुनायी दे गयीं या उसके दिल ने उसे सब कुछ बता दिया, लेकिन वह पसीने से तर-ब-तर अपने घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ कुमुख से यहां पहुंच गया। उसे शोकपूर्ण घटना का पता चला। उसने लगामें फेंक दीं, घोड़े को छोड़ दिया। उसने पेटी खोली और बन्दूक़ उतारकर फेंक दी। बन्दूक़ पत्थर से टकराकर टूट गयी। इस दुनिया से कूच कर चुकी अपनी प्रेयसी के पिता और भाइयों को सम्बोधित करते हुए नौजवान ने कहा—

—"नहीं चाहता भंग करूं मैं चैन आपके घर का
और यहीं पर तेज़ करूं मैं फल अपने खंजर का।
नहीं चलाना गोली चाहूं और न मैं तो खंजर
सिर्फ़ चाहता, देखूं उसका प्यारा मुखड़ा पल भर।
यौवन से मदमाती गोरी छाती मुझे दिखायें
मेरी आंखें झलक एक बस, अन्तिम उसकी पायें।"
यह सुन वृद्ध पिता ने उसके मुंह से कफ़न हटाया
चेहरा पीला हुआ युवक का, घिरी मौत की छाया।
गोरी छाती देखी उसने, सिर उसका चकराया
गिरा लड़खड़ा धरती पर वह, यों अन्तिम क्षण आया।

भाग्य ने उन्हें मिलाकर एक कर दिया था, सिर्फ़ उनके जिस्म ही अलग-अलग पड़े हुए थे। इन दोनों का कैसे अन्तिम संस्कार किया जाये, इन्हें कैसे दफ़नाया जाये? तब एक बहुत बड़ी सभा हुई। पूरे दाग़िस्तान से बुद्धिमान लोग आये, सब मिलकर सोच-विचार करने लगे।

प्रेम के जाने-माने पैग़म्बरों ने कहा—

जीवन-दीप बुझ गया इनका, रुका रक्त-संचार
किन्तु बहुत ही सच्चा, असली था दोनों का प्यार।
बेशक तन थे दो, लेकिन थी प्रीत एक ही पाई
दो जीवन थे, किन्तु इन्हें तो मौत एक ही आई।

इन दोनों के लिये बड़ी-सी क़ब्र एक ही खोदें
ताकि वहां पर किसी तरह भी, जगह न कम हो जाये,
जीवन ने कुछ क्षण को बेशक इनको अलग किया है
लेकिन इनकी मौत, इन्हीं दोनों को पुनः मिलाये।

एक लबादे में दोनों को, हम तो साथ लपेटें
एक ढेर से इन दोनों पर मिट्टी हम बिखरायें,
सोयेंगे जिस एक क़ब्र में ये दोनों ही प्रेमी
उसके ऊपर हम दोनों का पत्थर एक लगायें।

जैसा कहा गया, सब कुछ वैसे ही किया गया। इन दोनों प्रेमियों की क़ब्र पर लगे पत्थर के क़रीब एक लाल फूल खिल उठा। उसकी पंखुड़ियां तो बर्फ़ के नीचे भी नहीं मुरझाती थीं। बर्फ़ इस फूल को छूते ही पिघल जाती थी मानो यह लाल फूल आग हो। क़ब्र के नीचे एक चश्मा फूट निकला। लोग उसका पानी पीते हैं। क़ब्र के दोनों तरफ़ दो पेड़ उग आये। ऐसे सुन्दर पेड़ तो क़िस्से-कहानियों में भी नहीं होते। जब ठण्डी हवा चलती तो वे अपनी शाखाओं को इधर-उधर हिलाते-डुलाते हुए अलग हो जाते और जब गर्म हवा चलती तो फिर से मिल जाते मानो दो प्रेमी—कुमुख का नौजवान और अज़ाइनी की युवती—एक-दूसरे का आलिंगन कर रहे हों।

मैंने अली के बारे में भी एक गीत गा दिया होता, लेकिन वह बहुत ही लम्बा है। इसलिये मुझे इस बात की अनुमति दीजिये कि पहले गीत की भांति उसे कहीं तो गा दूं और कहीं अपने शब्दों में बयान कर दूं।

किसी गांव में अली रहता था। उसकी खूबसूरत और जवान बीवी तथा बूढ़ी मां थी। अली भेड़ें चराने के लिये लम्बे अरसे तक पहाड़ों में चला गया।

एक दिन कोई आदमी मां का यह हुक्म लेकर अली के पास आया कि वह अपनी भेड़ें छोड़-छाड़कर जल्दी से घर पहुंच जाये।

अली के दिल में बुरे-बुरे ख़्याल आने लगे। कोई बड़ी मुसीबत तो नहीं आ गयी? घर पर उसकी क्या ज़रूरत हो सकती थी? लेकिन अगर कोई बड़ी मुसीबत आ गयी है तो जवान बीवी के सिवा किससे इसकी उम्मीद की जा सकती है?

अली ने सन्देशवाहक से पूछा, मगर वह चुप रहा। अली बहुत ज़ोर देने, उसपर बिगड़ने और ख़ंजर दिखाकर धमकाने लगा। तब इस सन्देशवाहक ने उससे यह कहा –

–"अली, तुम्हारी बीवी बेहद सुन्दर है
रात मौन, जब घर में सब सो जाते हैं,
मुझे बताओ मित्र, अन्धेरे में धीरे
खिड़की के दरवाज़े क्यों खुल जाते हैं?

अली, तुम्हारी बीवी यौवन-मदमदाती
हिम से ढकी हुई लेकिन उस धरती पर,
मुझे बताओ, मीत भला क्यों पांवों के
चिह्न किसी के आते हैं यों वहां उभर?

नहीं हवा से खिड़की के पट खुलते हैं
उन्हें खोलती बीवी, जब हो प्रेम-मिलन,
नहीं अंगूठी पहने, जो थी तुमने दी
और न पहने मीत तुम्हारा वह कंगन।"

ज़ाहिर है कि अली जल्दी-जल्दी गांव की तरफ़ चल दिया। फ़ौरन मां के पास न जाकर वह सुन्दर जवान बीवी के पास गया। बीवी ने पति का लबादा और समूर की टोपी उतारकर नीचे रखनी चाही, घर की बनी बियर पिलानी चाही, यह चाहा कि वह सफ़र की थकान मिटा ले।

–"अपना कोट उतारो कपड़े
अभी बियर मैं ले आती,"

—"जब मैं यहां नहीं था किसको
रहीं लबादा पहनाती?"

—"मेरे स्वामी, फ़र की टोपी
अब उतार लो तुम, प्यारे,"
—"किसे पिलाती रहीं बियर, जब
रहा दूर मैं मन मारे?"

अली ने खंजर निकाला और दो बार बीवी पर वार किया।

—"अरे सूरमा अली, रहो क़िस्मतवाले
बरस तीन सौ जियो हमारी धरती पर,
मगर सूरमा अली, कि देखो ज़रा इधर
पड़ी खून में मैं अपने लथपथ होकर।

तुमपर अल्लाह अपनी रहमत बरसाये
दुनिया भर की खुशियां प्रियतम तुम पाओ,
केवल यह अनुरोध, उठाकर बांहों में
मुझे पलंग पर साजन मेरे ले जाओ।"

—"यह अनुरोध करूं पूरा, यदि बतलाओ
नहीं छिपाओ कुछ भी, कह दो सब खुलकर,
नहीं पहनतीं हो तुम कहो अंगूठी क्यों?
और कीमती कंगन आता नहीं नज़र।"

—"तुम खोलो सन्दूक़, सूरमा अली ज़रा
उसके तल में मिलें अंगूठी औ' कंगन,
पास नहीं थे जब तुम ही मेरे साजन
साज-सिंगार दिखाऊं किसे रूप, चितवन?"

अली भागकर मां के पास गया—
"किसलिये तुमने मुझे बुलवाया है, क्या बात हो गयी है?"
"तुम्हारे बिना तुम्हारी बीवी बहुत उदास हो गयी थी, बच्चे भी उदास हो रहे थे। फिर मैंने यह भी सोचा कि तुम भेड़ का

ताज़ा-ताज़ा गोश्त अपने साथ ले आओगे। बहुत दिनों से नहीं खाया।"

अली ने अपना सिर थाम लिया और वह भागकर पत्नी के पास गया।

ज्योति बुझी जाती थी उसके नयनों की
ठण्डे हाथ हुए पत्नी के, सांस नहीं आये,
आंसू-धारा बहे अली की आंखों से
पर पत्नी परलोक-धाम बढ़ती जाये।

खंजर लिया निकाल अली ने तब अपना
तेज़ धार का, और ख़ून से सना हुआ,
अपने ऊपर ख़ूब ज़ोर से वार किया
और निकट पत्नी के, वह भी वहीं गिरा।

तो ऐसे अन्त हुआ इस घटना का। इन दोनों को एक-दूसरे की बग़ल में दफ़नाया गया। इनकी क़ब्र के नज़दीक दो पेड़ उग आये।

तो मैं और किसकी दास्तान गाऊं? शायद कामालील बाशीर की? कौन था यह कामालील बाशीर? वह हमारे दाग़िस्तान का, यों कहा जा सकता है, डोन-जुआन था। लोगों का कहना है कि जब वह पानी पीता था तो उसके गले से निर्मल जल साफ़ तौर पर नीचे उतरता दिखाई देता था। इतनी कोमल थी उसकी त्वचा। उसकी इसी गर्दन को तो उसके पिता ने काट डाला था। किस कारण? इस कारण कि बेटा बहुत ही ज़्यादा ख़ूबसूरत था।

कामालील बाशीर तो मर गया, लेकिन प्यार के बारे में तो उसी तरह गाया जाता है, जैसे पहले गाया जाता था।

बच्चा तो पालने में ही होता है, लेकिन प्रेम का गीत उसके ऊपर गूंजने लगता है।

फिर से मैं हमारे एक सीधे-सादे लोक-खेल की याद दिलाना चाहता हूं।

यह खेल गीतिमयता, हाज़िरजवाबी, आवश्यक और जल्दी से

ठीक शब्द ढूंढ़ पाने की क्षमता का मुक़ाबला होता है। ऐसा खेल है यह। दाग़िस्तान के हर गांव में लोग इसे जानते हैं। जाड़ों की लम्बी रातों में गांव के किशोर-किशोरियां किसी पहाड़ी घर में जमा हो जाते हैं। वे न तो वोदका पीते हैं, न ताश खेलते हैं, न बीज छीलकर खाते हैं और न बेहूदा हरकतें करते हैं, बल्कि कविता का खेल खेलते हैं यानी बैंतबाज़ी करते हैं। यह बहुत बढ़िया बात है न!

एक छोटी-सी छड़ी लायी जाती है। कोई किशोरी उसे हाथ में ले लेती है। किशोरी इस छड़ी से किसी किशोर को छूती है और गाती है–

ले लो तुम यह छड़ी, सभी से जो सुन्दर
चुनो सुन्दरी, जो सबसे हो बढ़-चढ़कर।

किशोर किसी किशोरी को चुन लेता है और वह स्टूल पर बैठ जाती है। इन दोनों के बीच कविता में बातचीत शुरू होती है–

अरी हसीना, अरी हसीना
नाम तुम्हारा क्या है? यह तो बतलाओ,
अरी हसीना, अरी हसीना
किस कुल की, किस मात-पिता की, समझाओ।

बाक़ी सभी किशोर तालियां बजाते हुए गाते हैं–"आई, दाई, दालालाई!"

अपना नाम बताया मैंने
किसी और को, नहीं तुम्हें,
वचन प्यार का दे बैठी हूं
किसी और को, नहीं तुम्हें।

बाक़ी सभी तालियां बजाते हुए गाते हैं–"आई, दाई, दालालाई!"

किशोरी स्टूल से उठती है, छड़ी से किसी किशोर को चुनती है जो उसकी जगह बैठ जाता है। यह नया जोड़ा नया काव्य-वार्तालाप आरम्भ करता है –

किशोरी –

हिम से पर्वत ढके जा रहे
राह न कहीं नज़र आये,
ढूंढ़े घास मेमना प्यारा
कहां उसे, पर, वह पाये?

किशोर –

हिम तो हर क्षण पिघला जाता
बहे रुपहली हिम-धारा,
घास वक्ष पर तेरे पाये
अरे, मेमना वह प्यारा।

"आई, दाई, दालालाई!" नया जोड़ा सामने आता है।

किशोरी –

शीतल जल का कुआं जहां पर
निकट वहीं रहता अजगर,
बकरे का पानी पी लेना
वह कर देता है दूभर।

किशोर –

बेशक रहे वहां पर अजगर
नहीं किसी को उसका डर,
तेरी आंखों के प्यालों से
वह जल पी लेगा जी भर।

"आई, दाई, दालालाई!" नया जोड़ा सामने आता है।

किशोर –

दर्रे में तूफ़ान गरजता
बिछी नदी पर हिम-चादर,
तुमसे शादी करना चाहूं
और बसाना अपना घर।

किशोरी –

किसी दूसरी गली, गांव में
ढूंढो तुम अपनी दुलहन,
नहीं तीतरी अपना सकती
मुर्ग़ीख़ाने का बंधन।

"आई, दाई, दालालाई!" सभी तालियां बजाते और हंसते हैं। ऐसे बीतती हैं जाड़े की लम्बी रातें।

प्यार के बारे में दाग़िस्तानी गीत-गाने! जब तक इस किशोर ने इस चीज़ के लिये मिन्नत की कि यह किशोरी उससे शादी कर ले, दूसरे किशोर किसी तरह की औपचारिकता के बिना उसे चुरा ले जाते हैं।

जब तक इस किशोरी के दरवाज़े पर शिष्टतापूर्वक दस्तक दी जाती रही, दूसरे किशोर खिड़की में से कूदकर उसके पास जा पहुंचे।

सदियां बीतती रहती हैं, लेकिन गाने ऐसे ही जीते रहते हैं, ज़िन्दा रहते हैं। गायक उन्हें रचते हैं, लेकिन गीत सभी गायकों को जन्म देते हैं।

क्या गीत-गाने के बिना शादी हो सकती है, क्या गाने के बिना एक दिन भी बीत सकता है, क्या कोई आदमी गाने के बिना ज़िन्दगी बिता सकता है?

हमारे यहां यह कहा जाता है कि जो गाना नहीं जानता, उसे पशुओं के बाड़े में रहना चाहिये।

यह भी कहा जाता है कि प्यार से अपरिचित महाबली किसी प्रेम-दीवाने की कमर तक भी नहीं पहुंचता।

प्रथम महमूद के बारे में यह क़िस्सा सुनाया जाता है।

विश्व-युद्ध के वक़्त वह दाग़िस्तानी घुड़सवार रेजिमेंट के साथ कार्पेथिया के मोरचे पर था। उसने अपना प्रसिद्ध गीत 'मरियम' वहीं रचा और महमूद के फ़ौजी साथी उसे पड़ावों पर गाने लगे। इस गाने की कहानी यह है।

एक घमासान लड़ाई में रूसी फ़ौजों ने आस्ट्रियाई फ़ौजों को खदेड़कर एक गांव पर क़ब्ज़ा कर लिया। भागते दुश्मनों का पीछा करते हुए महमूद एक गिरजे के क़रीब पहुंच गया। एक डरा-सहमा हुआ आस्ट्रियाई गिरजे के दरवाज़े से लपककर बाहर आया, लेकिन गुस्से से धधकते एक पहाड़ी घुड़सवार को अपने सामने देखकर फिर से गिरजे में भाग गया।

इस घटना के कुछ दिन पहले महमूद का भाई लड़ाई में मारा गया था और वह बदला लेने को बेक़रार था। अधिक सोच-विचार किये बिना वह घोड़े से कूदा, खंजर निकालते हुए यह इरादा बना लिया कि अन्दर जाकर फ़ौरन इस आस्ट्रियाई की जान ले लेगा। लेकिन भागते हुए गिरजे में जाने पर महमूद स्तम्भित रह गया।

उसने आस्ट्रियाई को घुटने टेके हुए ईसा की मां मरियम की प्रतिमा के सामने प्रार्थना करते पाया।

दाग़िस्तान में तो घुटने टेक देनेवाले पर यों भी हाथ नहीं उठाया जाता और प्रभु ईसा की मां की प्रतिमा के सामने प्रार्थना करनेवाले पर हाथ उठाने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता था। इसके अलावा महमूद उस औरत के सौन्दर्य से भी स्तम्भित रह गया था जिसकी आस्ट्रियाई पूजा कर रहा था।

महमूद ने अचानक यह देखा कि उसके सामने उसकी प्रेयसी मूर्त है, उसी की आंखें हैं, आंखों में उसी की पीड़ा है, उसी का चेहरा-मोहरा, उसी की पोशाक है। महमूद के हाथ से खंजर गिर गया। यह तो मालूम नहीं कि इस घटना के बारे में आस्ट्रियाई ने बाद में क्या कहा, लेकिन गुस्से से उबलता महमूद भी उसके क़रीब ही घुटने टेककर ईसाइयों के ढंग से प्रार्थना करने, अटपटे ढंग से माथे, कंधों और छाती से अपनी उंगलियां छुआने लगा।

12 1165

आस्ट्रियाई कब वहां से खिसक गया, महमूद ने यह नहीं देखा। होश-हवास ठिकाने होने पर उसने अपनी प्रसिद्ध कविता 'मरियम' यानी मरीया के बारे में कविता रची। महमूद के लिये मूई और मरीया एक ही बिम्ब में घुल-मिल गयीं। उसने मरीया के बारे में कविता रची, लेकिन सोचता रहा मूई के बारे में, सृजन किया मूई के सम्बन्ध में, किन्तु सोचता रहा मरीया के सम्बन्ध में।

इसके बाद तो महमूद प्रेम के सिवा किसी दूसरी चीज़ को इस दुनिया में मान्यता ही नहीं देता था। उसकी आत्मा दूसरे गीतों को ग्रहण ही नहीं करती थी। दाग़िस्तान के कवियों में अन्य कोई भी ऐसा नहीं था जो उसकी भावनाओं के आवेग की ऊंचाई को छू सकता, उसके गीतों की गहराई तक जा सकता। उसे तो इस बात की चेतना ही नहीं रही थी कि वह कविता रच रहा है, कि कविता में बात कर रहा है, कि बोल नहीं रहा है, बल्कि गा रहा है। मानो कोई दूसरा ही उसकी जगह बोल और गा रहा हो। वह मूई और उसके प्रति अपनी भावनाओं को ही अपनी सारी सफलताओं का श्रेय देता था। अगर उसका कोई दोस्त उससे मूई की बात नहीं करता था तो वह उसकी बात ही सुनना बन्द कर देता था।

महमूद के बारे में मेरे पिता जी ने मुझे यह बताया था।

महमूद के पास बहुत से लोग आने लगे, लेकिन केवल प्रेम-दीवाने ही आते थे। वे महमूद के शब्दों की शक्ति को समझते थे और उससे अपने लिये कविता रचने का अनुरोध करते थे। ऐसा प्रेमी भी आता जिसे पहली बार किसी लड़की से प्रेम होता था और वह नहीं जानता था कि उससे इस बात की चर्चा कैसे करे। ऐसा प्रेमी भी आता था जिसकी प्रेयसी ने किसी दूसरे से शादी कर ली थी और वह बेचारा यह नहीं जानता था कि अपने विरह-व्यथित हृदय का क्या करे। ऐसा व्यक्ति भी आता जिसे किसी विधवा से प्रेम हो जाता जो अपने दिवंगत पति के प्रति ही निष्ठावान बनी रहती और प्रेमी यह नहीं जानता था कि

उस विधवा के दिल को कैसे मोम करे।

महमूद के पास ऐसे प्रेमी भी आते जिनकी प्रेयसियों ने उनके साथ बेवफ़ाई की थी। ऐसे भी आते जिनके दिल प्रेम का प्रतिदान न मिलने के कारण तड़पते थे। ऐसे भी आते जिनका अपनी प्रेयसियों से झगड़ा हो जाता था। ऐसे भी आते जो बिछुड़ जाते थे।

जितने लोग हैं, उतने ही प्रेम-दीवाने हैं। जितने प्रेम-दीवाने हैं, उनके प्रेम के रूप भी उतने ही भिन्न हैं। दो प्रेमी एक जैसे नहीं होते।

महमूद प्रत्येक विशेष प्रेम-समस्या के अनुरूप कविता रचता। प्रेमी आपस में मिल जाते, जिनके बीच झगड़ा हो गया था, उनमें सुलह हो जाती, कठोर और दुख में डूबी विधवा का दिल मोम हो जाता, झिझकते-घबराते युवक के दिल में साहस का संचार हो जाता, बेवफ़ाई करनेवाले शर्म से पानी-पानी हो जाते, धोखा खानेवाले क्षमा कर देते।

एक बार महमूद से पूछा गया –

"तुम बहुत ही अलग-अलग लोगों की मनःस्थिति के अनुरूप कवितायें कैसे रच लेते हो?"

"सब लोगों का भाग्य एक मानव के हृदय में ही समा सकता है। क्या मैं उनके बारे में कविता रचता हूं? उनके प्यार, उनकी वेदनाओं के बारे में? नहीं, मैं तो अपने बारे में कविता रचता हूं। लकड़ी का कोयला बनानेवाले एक ग़रीब आदमी के बेटे को यानी मुझे चढ़ती जवानी के दिनों में ही बेतला गांव की रहनेवाली मूई से प्रेम हो गया था। बाद में मूई की किसी दूसरे से शादी हो गयी। मेरा दिल खून के आंसू रो दिया। साल बीते और मूई के पति का देहान्त हो गया। मेरी आत्मा को पहले की तरह ही चैन नहीं मिला... नहीं, मैं प्रेम के बारे में सभी कुछ जानता हूं और मुझे दूसरों के सम्बन्ध में कविता रचने की कोई ज़रूरत नहीं।"

कहते हैं कि महमूद के पास युद्ध में खेत रहे या वीरगति

पानेवालों के बारे में कविता रचने का अनुरोध लेकर भी लोग आते थे। बेटों की मातायें, भाइयों की बहनें, पतियों की पत्नियां और वरों की मंगेतरें ऐसी प्रार्थनायें लेकर आतीं। किन्तु महमूद एक भी ऐसी कविता न रच पाता। वह उत्तर देता –

"अगर युद्ध में भी मैंने प्रेम की कवितायें रचीं तो मैं शान्तिपूर्ण गांव में युद्ध के बारे में कैसे लिख सकता हूं?"

लेकिन पहाड़ी लोग इस सिलसिले में यह भी कहते हैं – "शान्ति के गीत का असली महत्त्व तभी समझ में आता है जब लड़ाई होती है।" वे यह भी कहते हैं – "अपने प्रेम की परीक्षा लेनी हो तो युद्ध-क्षेत्र में जाइये।"

खंजर दुधारी होता है – उसकी एक धार है – मातृभूमि के प्रति प्यार, दूसरी – शत्रु के प्रति घृणा। पन्दूरे के दो तार होते हैं – एक तार घृणा का गीत गाता है, दूसरा प्यार का।

हमारे पहाड़ी लोगों के बारे में कहा जाता है कि जब वे एक हाथ से प्रेयसी का आलिंगन किये हुए लेटे होते हैं तो उनका दूसरा हाथ खंजर को थामे रहता है। अकारण ही तो हमारे बहुत-से गीत और पुराने क़िस्से-कहानियां खंजर के वार के साथ समाप्त नहीं होते हैं। लेकिन बहुत-से क़िस्से-कहानियां इस तरह भी खत्म होते हैं कि पहाड़ी आदमी अपनी प्रेमिका को ज़ीन पर अपने आगे बिठाये हुए गांव लौटता है।

पहाड़ों में जब पुरानी क़ब्रों को खोदा जाता है तो उनमें खंजर और तलवारें मिलती हैं।

"वहां पन्दूरा क्यों नहीं मिलता?"

"पन्दूरे जीवितों के लिये रह जाते हैं, ताकि जीवित दिवंगत वीरों के बारे में गाने गायें। इसलिये अगर हमारी पृथ्वी पर सारे शस्त्रास्त्र लुप्त हो जायेंगे, एक भी खंजर बाक़ी नहीं रहेगा, तो गीत तो तब भी लुप्त नहीं होगा।"

मेरे पिता जी कहा करते थे कि साधारण मेहमान तो तुम्हारे घर का मेहमान होता है। लेकिन गायक-अतिथि, संगीतज्ञ-अतिथि – वह सारे गांव का अतिथि होता है। सारा गांव उसका

स्वागत और उसे विदा करता है। मिसाल के तौर पर, महमूद का हर जगह पर गवर्नर से भी बढ़कर स्वागत-सत्कार किया जाता था। शायद इसीलिये गवर्नरों को स्वतन्त्र कवि-गायक अच्छे नहीं लगते थे?

पिता जी ने यह क़िस्सा सुनाया कि कैसे दो मुसाफ़िर दाग़िस्तान में से जा रहे थे। जब शाम का झुटपुटा हो गया तो एक मुसाफ़िर ने दूसरे से कहा –

"क्या हमारे लिये आराम करने का वक़्त नहीं हो गया? जल्द ही रात हो जायेगी। मैं देख रहा हूं कि तुम थक और ठिठुर गये हो। देखो, वह सामने गांव नज़र आ रहा है। हम उधर ही चले जाते हैं और वहां रात बिताने की कोई जगह ढूंढ़ लेते हैं।"

"मैं तो सचमुच ही थक और ठिठुर गया हूं। शायद मैं तो बीमार भी हो गया हूं। लेकिन इस गांव में मैं नहीं ठहरूंगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि यह गांव उदासी भरा है। यहां आज तक किसी ने किसी को गाते नहीं सुना।"

बहुत मुमकिन है कि मुसाफ़िरों के रास्ते में ऐसा गांव आ गया हो। लेकिन पूरे दाग़िस्तान के बारे में तो कोई भी यह नहीं कह सकता कि यह ऐसा देश है, जहां गाने सुनायी नहीं देते और इसलिये वह इससे बचकर निकल जायें।

बेस्तूजेव-मारलीन्स्की ने अपनी पुस्तक में दाग़िस्तानी गीतों को स्थान दिया है और बेलीन्स्की ने इनके बारे में यह कहा था कि वे स्वयं पुस्तक से अधिक मूल्यवान हैं। उन्होंने कहा था कि पुश्किन को भी उन्हें अपना कहते हुए शर्म महसूस न होती।

तरुण लेर्मोन्तोव भी तेमीरख़ान-शूरा में पहाड़ी गीत-गाने सुनते रहे थे। बेशक वह हमारी भाषा नहीं समझते थे, फिर भी उनसे आनन्द-विभोर होते थे।

प्रोफ़ेसर उस्लार ने कहा था कि गुनीब गांव की धुनें – मानवजाति के लिये अद्भुत उपहार हैं।

किसने हमें ये धुनें और ये गीत-गाने दिये? पहाड़ी लोगों में किसने ऐसी भावनायें पैदा कीं? उक़ाबों और घोड़ों ने, तलवारों और घास ने, पालने तथा चार कोइसू नदियों ने, कास्पी सागर की लहरों और महमूद की प्रेमिका मरियम ने, दाग़िस्तान के पूरे इतिहास और उसमें विद्यमान सभी भाषाओं ने, पूरे दाग़िस्तान ने।

अबुतालिब से एक बार पूछा गया –

"दाग़िस्तान में कितने कवि हैं?"

"कोई तीस-चालीस लाख होंगे।"

"यह कैसे? हमारी कुल आबादी ही दस लाख है!"

"हर आदमी की आत्मा में तीन-चार गीत-गाने होते हैं। हां, यह सही है कि न तो सभी और न हमेशा ही लोग उन्हें गाते हैं। सभी को यह मालूम भी नहीं होता।"

"फिर भी सबसे अच्छे गायक-कवि कौन-से हैं?"

"हमेशा ही अच्छे से भी अच्छा गायक-कवि मिल जायेगा। लेकिन एक का मैं उल्लेख कर सकता हूं।"

"कौन है वह?"

"दाग़िस्तानी मां। कुल मिलाकर पहाड़ी लोगों के यहां तीन गाने माने जाते हैं।"

"कौन-से?"

"पहला गाना तो पहाड़िन-मां तब गाती है, जब उसके यहां बेटे का जन्म होता है और वह उसके पालने के क़रीब बैठती है।"

"और दूसरा?"

"दूसरा गाना पहाड़िन-मां तब गाती है, जब बेटे से वंचित हो जाती है।"

"और तीसरा?"

"तीसरा गाना – बाक़ी सभी गाने हैं।"

हां, मां... वही खिलने और मुरझाने, जन्म लेने और मरने, इस दुनिया में आने तथा यहां से जानेवाले की सच्ची और अनुरागमयी साक्षी होती है। मां, जो पालना झुलाती है, बच्चे

को गोद में लिये रहती है और जो हमेशा के लिये छोड़कर जानेवाले बेटे को गले लगाती है।

यही है सौन्दर्य, सत्य और गौरव।

अच्छे-बुरे लोग होते हैं, यहां तक कि अच्छे-बुरे गीत-गाने भी होते हैं। किन्तु मां तो हमेशा अद्भुत होती है और मां का गाना भी अद्भुत होता है।

मेरे पालने के ऊपर जो गाने गाये गये, ज़ाहिर है, मुझे वे याद नहीं। लेकिन बाद में मैंने विभिन्न गांवों में बहुत-से अच्छे गाने, अच्छी लोरियां सुनीं। उदाहरण के लिये उनमें से एक प्रस्तुत है –

शक्ति बटोरोगे तुम बेटे और बड़े हो जाओगे
विकट भेड़िये के दांतों से, मांस छीन तुम लाओगे।

मेरे लाल, बड़े तुम होगे, फुरती ऐसी आयेगी
चीते के पंजों से वह तो, झपट परिन्दा लायेगी।

मेरे लाल, बड़े तुम होगे, तुमको सब फ़न आयेंगे
बात बड़ों की तुम मानोगे, मीत बहुत बन जायेंगे।

मेरे लाल, बड़े तुम होगे, समझदार बन जाओगे
तंग पालना हो जाने पर, पंख लगा उड़ जाओगे।

जन्म दिया है मैंने तुमको, मेरे पूत रहोगे तुम
जो दामाद बनाये तुमको, उसको सास कहोगे तुम।

मेरे बेटे, तुम जवान हो पत्नी प्यारी लाओगे
प्यारे देश, वतन की ख़ातिर, गीत मधुरतम गाओगे।

कितना विश्वास है इस लोरी में! पिता जी कहा करते थे कि एक भी ऐसी मां नहीं है जो गा न सकती हो। ऐसी मां नहीं है जिसकी आत्मा में कवि न बसा हो।

खुश्क, गर्म मौसम में बारिश – मेरे बच्चे, वह तुम हो।
बरसाती गर्मी में सूरज – मेरे बच्चे, वह तुम हो।
होंठ शहद से मीठे-मीठे – मेरे बच्चे, वे तुम हो।
काले अंगूरों-सी आंखें – मेरे बच्चे, वे तुम हो।
नाम शहद से बढ़कर मीठा – मेरे बच्चे, वह तुम हो।
चैन नयन को जो सुख देता – मेरे बच्चे वह तुम हो।
धड़क रहा है जो सजीव दिल – मेरे बच्चे, वह तुम हो।
स्पन्दित दिल की चाबी जैसे – मेरे बच्चे, वह तुम हो।
जो सन्दूक़ मढ़ा चांदी से – मेरे बच्चे, वह तुम हो।
जो सन्दूक़ भरा सोने से – मेरे बच्चे, वह तुम हो।

अब तुम धागे के गोले से
गोली फिर तुम बनो मगर,
बनो हथौड़ा ऐसा भारी जो
तोड़े पर्वत, पत्थर।
तीर बनोगे ऐसे जो तो
बैठे ठीक निशाने पर,
नर्तक तुम तो सुघड़ बनोगे
गायक जिसका मधुमय स्वर।
गली-मुहल्ले के लड़कों में
तेज़ सभी से दौड़ोगे,
घुड़दौड़ों में सब युवकों को
तुम तो पीछे छोड़ोगे।
घाटी में से तेज़ तुम्हारा
घोड़ा उड़ता जायेगा,
बादल बन नभ में जा पहुंचे
वह जो धूल उड़ायेगा।

मेरे पिता जी कहा करते थे कि जिसने मां की लोरी नहीं सुनी, वह बालक तो मानो अनाथ के रूप में ही बड़ा हुआ है। लेकिन जिसके पालने के ऊपर हमारे दाग़िस्तानी गाने गाये गये हैं, वह तो मां-बाप के बिना बड़ा होने पर भी अनाथ नहीं है। किन्तु यदि उसकी न तो मां है और न बाप तो किसने ये गाने गाये? खुद दाग़िस्तान, ऊंचे-ऊंचे पर्वतों ने ये गाने गाये, ऊंचे

पर्वतों से बहनेवाले नद-नालों ने गाये, पहाड़ों में रहनेवाले लोगों ने गाये –

स्वर्ण-सुनहरे धागों के गोले जैसी – बिटिया है मेरी।
रजत-रुपहले चमचम करते फ़ीते-सी – बिटिया है मेरी।
ऊंचे पर्वत पर जो चमके चन्दा-सी – बिटिया है मेरी।
पर्वत पर जो कूदे नन्ही बकरी-सी – बिटिया है मेरी।

कायर, बुज़दिल दूर हटो तुम
नहीं मिलेगी कायर को – बिटिया मेरी
झेंपू फाटक पर मत घूमो
नहीं मिलेगी झेंपू को – बिटिया मेरी।

वासन्ती, चटकीले सुन्दर फूलों-सी – बिटिया है मेरी।
वासन्ती, सुन्दर फूलों की माला-सी – बिटिया है मेरी।
हरित तृणों के कोमल क़ालीनों जैसी – बिटिया है मेरी।

रेवड़ तीन अगर भेजोगे भेड़ों के
नहीं भौंह तक बेटी की तुमको दूंगी,
तीन थैलियां सोने की यदि भेजोगे
नहीं गाल तक बेटी का तुमको दूंगी,
तीन थैलियों के बदले में मैं तुमको
नहीं गाल का गुल तक बेटी का दूंगी,
काले कौवे को मैं उसे नहीं दूंगी
और दयालु मोर, न उसको मैं दूंगी
अरी, तीतरी तुम मेरी
नन्ही-सी सारस मेरी।

दूसरी मां दूसरे ढंग से गाती है –

मार गिराये डंडे से जो चीते को
बेटी उसको दे दूंगी,
घूंसे से चट्टान तोड़ दे जो पत्थर
बेटी उसको दे दूंगी,
कोड़े से जो दुर्ग जीत ले, साहस से,

बेटी उसको दे दूंगी,
जो पनीर की तरह काट दे चन्दा को
बेटी उसको दे दूंगी,
जो रोके नदिया की बहती धारा को
बेटी उसको दे दूंगी,
किसी फूल की तरह सितारा जो तोड़े
बेटी उसको दे दूंगी,
पंख पवन के आसानी से जो बांधे
बेटी उसको दे दूंगी,
सेब सरीखे लाल-लाल गालोंवाली
प्यारी बिटिया तू मेरी।

या फिर इच्छा को व्यक्त करनेवाला यह गीत –

जब तक फूल कहीं पर कोई खिल पाये
मेरी बिटिया उससे पहले खिल जाये।

जब तक नदियां उमड़ें पानी से भरकर
घनी वेणियां बिटिया की गूंथूं सुन्दर।

नहीं गिरा है हिम तो अब तक धरती पर
आये लोग सगाई-सन्देसा लेकर।

लोग सगाई करने को ही यदि आ जायें
शहद भरा पीपा वह अपने संग लायें।

भेड़-बकरियां और मेमने वे लायें
है दुलहन का बाप, उन्हें हम बतलायें।

पास पिता के चुस्त, तेज, घोड़े भेजें
और पिता का वे ऐसे सम्मान करें।

पालने के ऊपर गाया जानेवाला यह कामना-गीत –

इससे पूर्व कि गीत भोर का पहला पक्षी गाये
गेहूं के खेतों में कोई बिटिया को बहलाये।

इससे पहले, दूर कहीं पर कोयल कूके वन में
मेरी बिटिया खेले-कूदे चरागाह-आंगन में।

सुन्दरियां सिंगार करें औ' निकलें जब तक सजकर
मेरी बिटिया ले आयेगी चश्मे से जल भरकर।

अगर लोरियां न होतीं तो दुनिया में शायद दूसरे गीत भी न होते। लोगों की ज़िन्दगी में रंगीनी न होती, वीर-कृत्य कम होते, जीवन में कविता कम होती।

मातायें—वही पहली कवयित्रियां होती हैं। वही अपने बेटों-बेटियों की आत्मा में कविता के बीज रोपती हैं जो बाद में अंकुर बनकर फूटते हैं, फूलों के रूप में खिलते हैं। पुरुष अपने जीवन के सबसे कठिन, बोझिल और भयानक दिनों में इन लोरियों को याद करते हैं।

एक डरपोक सैनिक से हाजी-मुरात ने कहा था—"शायद तुम्हारे पालने के ऊपर तुम्हारी मां ने लोरी नहीं गायी थी।"

किन्तु जब खुद हाजी-मुरात शामील के साथ ग़द्दारी करके उसके दुश्मनों से जा मिला तो शामील ने तिरस्कारपूर्वक कहा था—"वह मां की लोरी भूल गया है।"

और हाजी-मुरात की मां की लोरी यह थी—

मुख पर ला मुस्कान सुनो तुम
मैं जो गीत सुनाती हूं,
एक वीर का क़िस्सा तुमको
बेटे वीर, बताती हूं।

खड्ग बग़ल में बड़े गर्व से
वह अपनी लटकाता था,
सरपट घोड़े पर वह उछले
वश में उसको लाता था।

तेज़ पहाड़ी नदियों सम वह
लांघा करता सीमायें,
तेज़ खड्ग से काटे वह तो
ऊंची पर्वत-मालायें।

सदी पुराने शाह बलूत को
एक हाथ से वह मोड़े,
तू भी वीर बने वैसा ही
वीरों से नाता जोड़े।

मां बेटे के मुस्कराते हुए प्यारे-से चेहरे को देखती थी और अपनी लोरी के शब्दों पर विश्वास करती थी। वह नहीं जानती थी कि उसके बेटे, हाजी-मुरात को कैसी-कैसी कठिन परीक्षाओं का सामना करना होगा।

यह मालूम होने पर कि हाजी-मुरात अपने अगुआ शामील को छोड़कर उसके दुश्मनों के साथ जा मिला है, मां ने दूसरा गाना गाया –

तुम चट्टानों से भी खड्डों में कूदे
नहीं किसी ऊंचाई से तुम घबराये,
किन्तु गिरा है अब जितने गहरे तल में
उससे निकल न तू वापस घर को आये।

हमले जब-जब हुए पर्वतों पर तेरे
घने अन्धेरे कभी न आड़े आ पाये,
तू शिकार खुद बना, किन्तु अब दुश्मन का
नहीं लौटकर अब तो तू घर को आये।

मेरे, मां के दिन भी अब तो काले हैं
उनमें कटुता, सूनेपन के हैं साये,
उन फंदों से, उन फ़ौलादी पंजों से
निकल न सकता कभी न वापस घर आये।

तिरस्कार यदि करे ज़ार का, शामील का
बात समझ में सबकी यह तो आ जाये,
किया निरादर अरे, पर्वतों का तूने
कभी न वापस अब तो तू घर को आये।

जैसा कि सर्वविदित है, बाद में हाजी-मुरात ने रूसियों का साथ छोड़कर फिर से अपने लोगों के पास आना चाहा था। लेकिन भागने के वक़्त ही वह मारा गया था और मृत हाजी-मुरात का सिर काट दिया गया था। तब पहाड़ों में मां के एक अन्य गाने का जन्म हुआ—

चले हाथ भरपूर खड्ग के, कन्धों पर सिर नहीं रहा,
यह तो झूठी बात है,
बहुत ज़रूरत युद्ध-परिषदों और भिड़न्तों में उसकी
यह हम सबको ज्ञात है।

सड़क-किनारे दफ़न कहीं पर, सिर के बिन धड़ उसका है
ये बातें निस्सार हैं,
घिरे क़िलों, युद्धों में उसके, हाथ और कंधे अब तक
हम सबके आधार हैं।

तुम यह तलवारों से पूछो, तेज़ खंजरों से पूछो
क्या अब हाजी नहीं यहां?
चट्टानों से क्या बारूदी, गन्ध नहीं अब आती है?
और न उड़ता वहां धुआं?

उसका नाम गरुड़-सा उड़कर, पहुंचा ऊंचे शृंगों पर
किन्तु अन्त में धुंधलाया,
तलवारें सीधी कर देंगी, सब बल साथ मिटायेंगी
धब्बा जो उसपर आया।

मां का गाना—वह मानव के सभी गीतों का आरम्भ-बिन्दु, उनका स्रोत है। प्रथम मुस्कान और अन्तिम आंसू—ऐसा है मां का गीत।

गीतों का जन्म दिल में होता है, फिर दिल उन्हें ज़बान तक पहुंचाता है, इसके बाद ज़बान उनको सभी लोगों के दिलों तक पहुंचाती है और सभी लोगों के दिल गीत को आनेवाली सदियों को सौंप देते हैं।

ऐसे गीतों की चर्चा करना भी यहां उचित ही होगा।

शामील की मां का गीत

"गीत-गानों में दो में से कोई एक चीज़ हो सकती है—या तो हंसी या आंसू। इस वक़्त हम पहाड़ी लोगों को इन दोनों में से एक भी ज़रूरत नहीं। हम युद्धरत हैं। साहस को चाहे कैसी भी कठिन परीक्षाओं का सामना क्यों न करना पड़े, उसे न तो शिकवा-शिकायत करना चाहिये और न ही रोना-धोना चाहिये। दूसरी ओर, हमारे लिये खुश होने की भी कोई बात नहीं। हमारे दिल ग़म और दुख-दर्द से भरे हुए हैं। कल मैंने उन जवान लोगों को सज़ा दी जो मसजिद के क़रीब नाच और गा रहे थे। वे मूर्ख हैं। फिर कभी ऐसा देखूंगा तो फिर सज़ा दूंगा। अगर आप लोगों को कविता चाहिये तो क़ुरान पढ़िये। पैग़म्बर द्वारा रची गयी कविताओं को रटिये। उनकी कवितायें तो काअबा के फाटकों पर भी खुदी हुई हैं।"

तो इमाम शामील ने इस तरह दाग़िस्तान में गाने की मनाही कर दी। गानेवाली औरत को झाड़ू से पीटा जाता और मर्द को कोड़े से। हुक्म तो हुक्म ठहरा। उन सालों में बहुत-से गायकों को कोड़े लगाये गये।

लेकिन क्या गीत-गाने को ख़ामोश होने के लिये मजबूर किया जा सकता है? गायक को चुप रहने को विवश किया जा सकता है, किन्तु गाने को कभी नहीं। हम क़ब्रों पर बहुत-से पत्थर लगे देखते हैं, वहां लोग दफ़न हैं। लेकिन गीत-गानों की क़ब्रें किसने देखी हैं?

एक क़ब्र के पत्थर पर मैंने यह पढ़ा – "मर गया, मरते हैं, मरेंगे।" गीत के बारे में कहा जा सकता है – "नहीं मरा, नहीं मरता है, नहीं मरेगा।" इसलामी जिहाद के उस ज़माने में गीतों-गानों के साथ चाहे कैसा भी बुरा बर्ताव क्यों नहीं किया गया, फिर भी वे न केवल ज़िन्दा रहे और हमारे वक़्तों तक पहुंच गये, बल्कि भाग्य की विडम्बना देखिये कि उन्हें "शामील के गाने" कहा जाता है।

हां तो शामील की मां के गाने के बारे में... उन दिनों में दुश्मन की फ़ौजों ने अख़ूल्गो गांव पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस लड़ाई ने अनेक वीरों को जन्म दिया, किन्तु वे सभी वहां युद्ध-क्षेत्र में ही खेत रहे। उन घायलों ने, जो शत्रु के अधीन नहीं होना चाहते थे, अवार क्षेत्र की कोइसू नदी में कूदकर जान दे दी। दुश्मन के घेरे में आनेवालों में बच्चों सहित शामील की बहन भी थी।

इस बहुत ही कठिन समय में थका-हारा और घायल इमाम शामील अपने जन्म-गांव गीमरी में आया। उसने अपने मुरीदों को घोड़े की लगामें पकड़ायी ही थीं कि उसे एक गाना सुनायी दिया। अधिक सही तौर पर कहा जाये तो विलाप सुनायी दिया –

शोक मनाओ, अश्रु बहाओ, गांव-गांव में तुम लोगो
तुम यश गाओ, उन वीरों का, रहे नहीं जो धरती पर,
अब अख़ूल्गो पर दुश्मन ने, कर अपना अधिकार लिया
रहा न कोई जीवित, सबने प्राण किये हैं न्योछावर।

इस गाने में आगे उन सभी वीरों के नाम गिनाये गये थे जिन्होंने वीरगति पायी थी। गीत के रचयिता ने सभी से यह अनुरोध किया था कि वे मातमी पोशाक पहन लें। यह भी कहा गया था कि ऐसे शोक-दुख के बारे में सुनकर सभी पहाड़ी चश्मे सूख गये थे। इस गाने में अल्लाह से यह प्रार्थना की गयी थी कि वह पहाड़ी लोगों की रक्षा करे, इमाम शामील को शक्ति दे और

शामील के आठ वर्षीय बेटे जमालुद्दीन की जान बचाये जो पीटर्सबर्ग में गोरे ज़ार के बन्धकों में से एक था।

शामील एक पत्थर पर बैठ गया, उसने मेंहदी से रंगी हुई अपनी घनी दाढ़ी में उंगलियां खोंस लीं, अपने इर्द-गिर्द खड़े लोगों को पैनी नज़र से देखा और फिर एक से पूछा –

"यूनुस, इस गाने में कितनी पंक्तियां हैं?"

"एक सौ दो पंक्तियां हैं, इमाम।"

"इस गाने के रचयिता को ढूंढ़ो और उसे एक सौ कोड़े लगाओ। दो कोड़े मेरे लिये छोड़ देना।"

मुरीद ने फ़ौरन कोड़ा निकाल लिया।

"किसने यह गीत रचा है?"

सब खामोश रहे।

"मैं पूछता हूं, किसने यह गीत रचा है?"

इसी वक़्त शामील की झुकी कमरवाली और दुख में डूबी मां उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। उसके हाथ में झाड़ू थी।

"मेरे बेटे, यह गीत मैंने रचा है। हमारे घर में आज मातम है। तुम यह झाड़ू ले लो और अपना हुक्म पूरा करो।"

इमाम सोच में डूब गया। इसके बाद उसने मां के हाथ से झाड़ू ले ली और दीवार का सहारा ले लिया।

"मां, तुम घर चली जाओ।"

मुड़कर बेटे की ओर देखते हुए मां घर की ओर चली दी। जैसे ही वह कूचे में ग़ायब हुई, वैसे ही शामील ने तलवार और कमरबन्द तथा अपना चेर्केस्का उतार फेंका।

"मां को पीटा नहीं जा सकता। उसके क़ुसूर की मुझे, उसके बेटे शामील को सज़ा भुगतनी होगी।"

कमर तक नंगा होकर वह ज़मीन पर लेट गया और उसने अपने मुरीद से कहा –

"तुमने कोड़ा छिपा क्यों लिया? उसे निकालो और जो मैं कहता हूं, वह करो।"

मुरीद दुविधा में पड़ गया। इमाम की त्योरी चढ़ गयी और

मुरीद तो दूसरों से यह ज्यादा अच्छी तरह जानता था कि इसका क्या नतीजा हो सकता है।

मुरीद अपने इमाम को कोड़े मारने लगा, लेकिन बहुत हल्के-हल्के हाथ से मानो सज़ा न देकर पुचकार रहा हो। शामील अचानक उठकर खड़ा हुआ और चिल्लाया –

"मेरी जगह पर लेटो!"

मुरीद बेंच पर लेट गया। शामील ने उसका कोड़ा लेकर तीन बार खूब ज़ोर से उसपर बरसाया। मुरीद की पीठ पर लाल लकीरें उभर आईं।

"ऐसे मारने चाहिये कोड़े। समझ गये? अब शुरू करो और फिर से चालाकी करने की बात नहीं सोचना।"

मुरीद ज़ोर-ज़ोर से कोड़े मारने और गिनने लगा।

"अट्ठाईस, उनतीस..."

"नहीं, अभी तो सत्ताईस हुए हैं। बीच में से छोड़ो नहीं, छलांगें नहीं लगाओ।"

मुरीद पसीने से तर हो रहा था और वह बायें हाथ से उसे पोंछता जाता था। इमाम शामील की पीठ ऐसी पहाड़ी चोटी के समान लग रही थी जिसपर एक-दूसरे को काटते हुए अनेक रास्ते और पगडंडियां बनी हों अथवा टीले की उस ढाल जैसी जिसे घोड़ों के अनेक झुण्डों ने रौंद डाला हो।

आखिर यह यातना समाप्त हुई। मुरीद हांफता हुआ एक तरफ़ को हट गया। शामील ने कपड़े पहने, हथियार बांध लिये। लोगों को सम्बोधित करते हुए उसने कहा –

"पहाड़ी लोगो, हमें लड़ना है। हमारे पास गीत रचने और उन्हें गाने तथा क़िस्से-कहानियां सुनाने का वक़्त नहीं है। यही ज्यादा अच्छा होगा कि दुश्मन हमारे बारे में गीत गायें। हमारी तलवारें उन्हें यह सिखा देंगी। आंसू पोंछ लो और तलवारों की धारें तेज़ करो। हमने अखूल्गो खो दिया, लेकिन दाग़िस्तान तो अभी क़ायम है, लड़ाई तो ख़त्म नहीं हुई।"

इस दिन के पच्चीस साल बाद तक दाग़िस्तान दुश्मन से

लोहा लेता रहा, उस वक़्त तक जबकि आख़िरी लड़ाई ख़त्म नहीं हो गयी और गुनीब दुश्मन के हाथों में नहीं चला गया।

गुनीब की लड़ाई, जो कई दिनों तक जारी रही, जब अपने पूरे ज़ोर पर थी, तो एक दिन इमाम मसजिद में इबादत कर रहा था।

"ऐसी मुसीबत तो दाग़िस्तान ने पहले कभी नहीं जानी थी।" शामील की पहली, बड़ी बीवी ने कहा।

"तुम ग़लती कर रही हो, पातीमात, दाग़िस्तान इससे पहले भी एक मुसीबत जान चुका है।"

"वह कौन-सी?"

"जब मैंने तुम्हारे जैसी बीवी के होते हुए भी एक और बीवी बना ली थी यानी शुआइनात से शादी कर ली थी।"

शामील हंस पड़ा। इसी मसजिद में लेटे हुए उसके घायल मुरीद भी हंस पड़े। ऐसे लगा मानो इमाम को पहली बार हंसते सुनकर सारा दाग़िस्तान हंस पड़ा हो।

वह दाग़िस्तान की सबसे मुश्किल घड़ी में हंसा था, जब वह सब कुछ नष्ट हो रहा था जिसका उसने निर्माण किया गया था और जिसपर उसे गर्व था। वह अपने क़ैदी बनाये जाने के कुछ घण्टे पहले हंसा था।

शामील अचानक ख़ामोश और संजीदा हो गया। अपनी तीनों बीवियों को उसने गुनीब के पत्थरों पर अपने क़रीब बिठा लिया और उनसे अनुरोध किया –

"मुझे वह गाना सुनाओ जो अल्लाह को प्यारी हो गयी मेरी मां ने रचा था।"

पातीमात, नापीसात और शुआइनात ने गाना शुरू किया –

शोक मनाओ, अश्रु बहाओ
गांव-गांव में तुम लोगो...

गाने की अन्तिम ध्वनियां शान्त हो रही थीं। आसमान में चांद चमक रहा था। इमाम उदास हो गया...

"इसे फिर से गाओ।"

पातीमात, नापीसात और शुआइनात इसी गाने को फिर से गाने लगीं। इस बार यह गाना दूर तक पहुंच गया। इसे चांदनी में चमकती और दुख में डूबी चट्टानों, बेदमजनूं और गुनीब के चिनारों ने सुना।

"इसे तीसरी बार गाओ!" शामील ने ऊंची आवाज़ में कहा।

गाने की ध्वनियां और आगे पहुंच गयीं। इसे अब गुनीब के क़रीब जलते गांवों और दूर के पहाड़ों में ख़ामोश सभी गांवों तथा दिवंगत मुरीदों ने अपनी क़ब्रों में सुना। किन्तु इसी समय पौ फट गयी, फिर से घमासान लड़ाई होने लगी, आख़िरी लड़ाई। जब हथियारों का शोर और गूंज ख़त्म हुई तो गाने की ध्वनियां नहीं रही थीं।

इमाम शामील सम्मानित बन्दी बन चुका था। उसके शस्त्रास्त्र और घोड़े लौटा दिये गये थे, उसकी बीवियां भी उसके पास ही छोड़ दी गयी थीं, लेकिन उसका दाग़िस्तान उसके पास नहीं छोड़ा गया था, वे उसे कहीं दूर उत्तर में ले गये थे। दाग़िस्तान का तो एक गीत ही बाक़ी रह गया था जिसे उसकी बूढ़ी मां ने कभी रचा था। शुरू में सम्मानित बन्दी को उसकी तीन बीवियां यह गाना सुनाती रहीं। बाद में नापीसात और शुआइनात रह गयीं। कुछ और अरसे बाद, दूरस्थ अरब रेगिस्तान में आख़िरी सांस लेते हुए शामील को उसकी दोनों बड़ी बीवियों के बाद ज़िन्दा रह जानेवाली उसकी अन्तिम बीवी शुआइनात यह अन्तिम गाना सुनाती रही।

जब शुआइनात की चर्चा चलती तो मेरे पिता जी कहते—

"शामील के घर में वह सबसे ज़्यादा ख़ूबसूरत औरत थी। वह इमाम की आख़िरी बीवी और उसका पहला प्यार थी। सभी पहाड़ी लोगों की तरह इमाम भी हमारे रस्म-रिवाजों के मुताबिक़ शादियां करता था। लेकिन यह बीवी तो संयोग से मिलनेवाला पुरस्कार थी। जब शामील के एक बहुत ही बहादुर नायब

अखवेर्दिल मुहम्मद ने मोज़्दोक पर धावा बोला तो वह आर्मीनी सौदागर की बेटी, बहुत ही ख़ूबसूरत आन्ना को वहां से उड़ा लाया। आन्ना की शादी होने के कुछ दिन पहले ही ऐसा हुआ था। मुरीद अपने इस शिकार को लबादे में लपेटे हुए इमाम के महल में ले गया। जब लबादा उतारा गया तो इमाम को दो बड़ी-बड़ी, नीली आंखों के सिवा, जो मानो दाग़िस्तान के नीले आकाश से बनायी गयी हों, और कुछ भी नज़र नहीं आ रहा था। ये आंखें किसी भी तरह के डर-भय के बिना इमाम को एकटक देख रही थीं। वे पतले, नर्म चमड़े के बूट, इमाम के हथियार, उसकी दाढ़ी और आंखों को देख रही थीं। आर्मीनी युवती ने अपने सामने ऐसा आदमी देखा जिसे किसी तरह भी जवान या सुन्दर नहीं कहा जा सकता था। लेकिन उसकी शक्ल-सूरत में कुछ तो ऐसा था जो अपनी तरफ़ खींचतां था, आकर्षित करता था। उसके व्यक्तित्व में रोब-दाब और शक्ति के साथ-साथ कोमलता तथा उदारता की भी अनुभूति होती थी। इन दोनों की आंखें मिलीं। कठोर सैनिक ने अपने दिल में कुछ कमज़ोरी महसूस की। वह ऐसी कमज़ोरी का आदी नहीं था और इसलिये डर गया। इसी वक़्त उसकी रोबीली आवाज़ गूंज उठी—

"इस लड़की को फ़ौरन वहीं छोड़ आओ, जहां से लाये हो।"

"किसलिये इमाम? इतनी हसीन लड़की है। इसमें तो कहीं कोई कमी ही नहीं है।"

"मैं जानता हूं कि किसलिये ऐसा करना चाहिये और तुम्हारा काम तो घोड़े पर ज़ीन कसना है।"

"इसे वापस लौटाने के बदले में क्या लिया जाये?"

"बदले में कुछ भी लिये बिना ही लौटा देना।"

अखवेर्दिल मुहम्मद को बड़ी हैरानी हुई। शामील ने बदले में कुछ लिये बिना कभी कोई क़ैदी रिहा नहीं किया था। लेकिन वह इमाम के सामने एतराज़ करने की हिम्मत नहीं कर सकता था।

अपनी इस क़ैदी से उसने कहा—

"मैं अभी तुम्हें तुम्हारे मां-बाप के पास वापस छोड़ आता हूं। उन्हें बहुत खुशी होगी। तुम उनसे कह देना कि शामील डाकू-लुटेरा नहीं है।"

जब मुरीद के उक्त शब्दों का अनुवाद किया गया तो आन्ना ने हैरानी से शामील की तरफ़ देखा। सभी ने यह समझा कि उसे अपनी इस खुशक़िस्मती पर यक़ीन नहीं हो रहा है।

उससे दूसरी बार यह कहा गया –

"इमाम को उसका बहुत अफ़सोस है, जो हुआ है। वह बदले में कुछ भी लिये बिना तुम्हें मुक्त कर रहा है।"

तब खूबसूरत आन्ना ने शामील को सम्बोधित करते हुए कहा –

"ओ, दाग़िस्तान के रहनुमा। मुझे तो कोई भी भगाकर नहीं लाया है। मैं तो तुम्हारी बन्दी बनने के लिये खुद ही यहां चली आयी हूं।"

"यह कैसे, किसलिये?"

"ताकि उस सूरमा को अपनी आंखों से देख सकूं जिसकी सारा काकेशिया, सारी दुनिया चर्चा करती है। तुम्हारे मन में जो भी आये, तुम वह कर सकते हो, लेकिन अपनी मर्ज़ी से चुनी हुई इस क़ैद को मैं किसी भी हालत में नहीं बदलूंगी। मैं यहां से कहीं भी नहीं जाऊंगी।"

"नहीं, तुम्हारा यहां से जाना ही ज़्यादा अच्छा होगा।"

"यह तुम कह रहे हो, यह शामील कह रहा है जिसे सभी बहादुर मर्द मानते हैं।"

"ऐसा अल्लाह कह रहा है।"

"खुदा ऐसा नहीं कह सकता।"

"मेरा अल्लाह और तुम्हारा खुदा अलग-अलग ज़बान बोलते हैं।"

"दाग़िस्तान के रहनुमा, आज से मैं तुम्हारी बन्दी, तुम्हारी दासी हूं। आज से तुम्हारा अल्लाह ही मेरा खुदा होगा। बचपन में ही मैंने तुम्हारे बारे में गाने सुने थे। उनमें से एक मुझे याद रह

गया है। उसने मेरे दिल में घर कर लिया है।"

आर्मीनी युवती अचानक किसी की भी समझ में न आनेवाली भाषा में एक प्यारा गाना गाने लगी। ऊंचे पर्वतों के पीछे से आसमान में चांद निकल आया। और आर्मीनिया की बेटी अभी भी शामील के बारे में गाना गाती जा रही थी।

मुरीद अन्दर आया।

"इमाम, घोड़े पर ज़ीन कसा जा चुका है। मैं इस लड़की को ले जा सकता हूं?"

"इसे यहीं रहने दो। इसे यह गाना अन्त तक गाना होगा, बेशक इसके लिये उसे पूरी ज़िन्दगी ही दरकार हो।"

कुछ दिनों बाद दाग़िस्तान में दबी-दबी कानाफूसी होने लगी। सड़क पर एक आदमी दूसरे के कान में, एक गांव के लोग दूसरे गांव के लोगों के कानों में फुसफुसाते–

"सुना तुमने? शामील ने एक और बीवी बना ली है।"

"धर्म-ईमान को माननेवाले इमाम ने एक आर्मीनी लड़की से शादी कर ली है।"

"एक क़ाफ़िर लड़की अब इमाम की पगड़ी धोती है। प्रार्थना की जगह वह उसे गाने सुनाती है।"

सारे दाग़िस्तान में यह कानाफूसी होने लगी। लेकिन ये अफ़वाहें सच्ची थीं। इमाम ने तीसरी बीवी से शादी कर ली। आन्ना ने इसलाम क़बूल कर लिया, पहाड़ी ढंग से दुपट्टा ओढ़ लिया और अवार जाति का नाम ग्रहण करके आन्ना से शुआइनात बन गयी। इमाम को वही खाना सबसे ज़्यादा लज़ीज़ लगता था जो शुआइनात पकाती थी, वही बिस्तर सबसे ज़्यादा नर्म लगता था जो वह बिछाती थी। उसी का कमरा सबसे ज़्यादा रोशन और सुखद लगता था, उसी की बोली सबसे अधिक प्यारी लगती थी। इमाम का कठोर चेहरा नर्म, स्नेहपूर्ण और दयालु हो गया। मोज़्दोक से अनेक बार शुआइनात के माता-पिता द्वारा भेजे गये सन्देशवाहक यह अनुरोध लेकर शामील के पास आये कि वह बदले में कोई भी क़ीमत लेकर, जो खुद ही तय करे, उसे वापस

घर भेज दे। शामील यह सब शुआइनात को बताता, लेकिन उसका एक ही जवाब होता—

"इमाम, तुम मेरे पति हो। बेशक मेरी गर्दन काट डालो, लेकिन मैं घर नहीं जाऊंगी।"

इमाम मोज़्दोक से आनेवाले सन्देशवाहकों को बीवी का यही जवाब सुना देता। एक बार शुआइनात का सगा भाई इमाम के पास आया। इमाम ने उसका प्रेमपूर्वक आदर-सत्कार किया, उसे शुआइनात से मिलने और उससे बातचीत करने की इजाज़त दे दी। बहन-भाई दो घण्टे तक एकान्त में रहे। भाई ने बहन से पिता के दुख और मां के आंसुओं की चर्चा की, यह कहा कि घर पर उसकी ज़िन्दगी कितनी खुशी भरी होगी, उस बदक़िस्मत, जवान वर का ज़िक्र किया जो अभी तक उससे मुहब्बत करता था।

सब बेसूद रहा। शुआइनात ने इन्कार कर दिया और भाई अपना-सा मुंह लेकर वापस चला गया।

इमाम की पहली बीवी पातीमात ने अच्छा-सा मौक़ा पाकर शामील से कहा—

"इमाम, चारों तरफ़ ख़ून बह रहा है, लोग मर रहे हैं। तुम प्रार्थना की तरह शुआइनात के गाने कैसे सुन सकते हो? तुमने तो दाग़िस्तान में गाने की मनाही कर दी है। तुमने तो अपनी मां के गाने से भी इन्कार कर दिया था।"

"पातीमात," इमाम ने जवाब दिया, "शुआइनात वे गाने गाती है जो हमारे दुश्मन हमारे बारे में गाते हैं। अगर मैं आंसुओं से भरे गानों के प्रचार की इजाज़त दे देता तो वे दुश्मन तक पहुंच जाते और दुश्मन हमारे बारे में दूसरे ही ढंग से सोचने लगता। तब मुझे उन माताओं से आंखें मिलाते हुए शर्म आती जिनके बेटे मेरे साथ जंग के मैदानों में जाकर खेत रहे हैं। लेकिन दुश्मन हमारे बारे में बेशक गाने गाते रहें। मैं ख़ुशी से उन्हें सुनूंगा और उन्हें सुनने के लिये दूसरों को भी अपने पास बुला लूंगा।"

पातीमात के दुख का कारण यह नहीं था कि इमाम जवान बीवी के गाने सुनता था, बल्कि यह कि अपनी पहली दोनों बीवियों को वह पहले की तरह अपने दुख-सुख का भागी नहीं बनाता था। जल्द ही निम्न घटना घट गयी।

एक बार इमाम को यह सूचना दी गयी कि रूस का गोरा ज़ार उसके बेटे जमालुद्दीन को, जो उस वक़्त पीटर्सबर्ग के सैनिक विद्यालय में शिक्षा पा रहा था, शुआइनात के बदले में लौटाने को तैयार है। ऐसा करना तो बड़ा मुश्किल था। इमाम ने इन्कार कर दिया। इस तरह की सम्भावना के बारे में शामील ने किसी को नहीं बताया, लेकिन यह ख़बर किसी तरह पातीमात तक पहुंच ही गयी।

एक दिन वह अपनी जवान प्रतिद्वन्द्विनी के पास गयी।

"शुआइनात, मुझे यह वचन देती हो कि अल्लाह के सिवा हमारी बातचीत और कोई नहीं जान पायेगा?"

"वचन देती हूं।"

"तुम तो मुझसे कहीं बेहतर यह जानती हो कि पिछले कुछ अरसे से शामील को नींद नहीं आती है, वह बहुत परेशान और व्यथित रहता है।"

"हां, मैं यह देख रही हूं, पातीमात, देख रही हूं।

"तुम्हें मालूम है कि ऐसा क्यों है?"

"मुझे मालूम नहीं।"

"मुझे मालूम है। अगर तुम चाहो तो उसका इलाज कर सकती हो।"

"तो वह इलाज मुझे बताओ, मुझे बताओ, मेरी प्यारी।"

"तुमने मेरे और शामील के बेटे जमालुद्दीन के बारे में तो ज़रूर सुना होगा?"

"हां, सुना है।"

"उसका यहां लौट आना तुमपर निर्भर करता है। तुम अपनी मां को याद करती रहती हो। मैं भी मां हूं। मैंने दस साल से अपने बेटे को नहीं देखा है। मदद करो! मेरी ख़ातिर नहीं,

शामील की खातिर ही ऐसा करो।"

"शामील की खातिर मैं सब कुछ करने को तैयार हूं। लेकिन कैसे मदद करूं?"

"अगर तुम अपने मां-बाप के यहां वापस चली जाओ तो जार हमें हमारा बेटा जमालुद्दीन लौटा देगा। मुझे मेरा बेटा लौटा दो। इसके लिये अल्लाह तुम्हें जन्नत में जगह देगा। मैं तुम्हारी मिन्नत करती हूं।"

शुआइनात की आंखों में आंसू चमक उठे।

"सब कुछ करूंगी, पातीमात, सब कुछ करूंगी," उसने कहा और चली गयी।

अपने कमरे में जाकर वह क़ालीन पर गिर गयी। शुरू में देर तक रोती रही, फिर दर्द भरा गीत गाने लगी। शामील घर आया।

"क्या माजरा है, शुआइनात?"

"इमाम, मुझे मेरे माता-पिता के यहां जाने की इजाज़त दे दो।"

"यह तुम क्या कह रही हो?"

"मुझे उनके पास लौटना ही चाहिये।"

" किसलिये? कैसी बात कह रही हो? तुमने तो खुद ही इन्कार किया था और अब मैं तुम्हें इसकी इजाज़त नहीं दे सकता।"

"शामील, मुझे मेरे घर भेज दो। दूसरा कोई चारा नहीं है।"

"लगता है कि तुम बीमार हो।"

"मैं चाहती हूं कि तुम जमालुद्दीन से मिल सको।"

"ओह, तो यह मामला है! तुम कहीं नहीं जाओगी, शुआइनात। अगर मैं उसे तुम्हारे बदले में ही हासिल कर सकता हूं तो मैं हमेशा के लिये उसके बिना रहना बेहतर समझूंगा। अगर वह मेरा बेटा है तो खुद ही अपनी मां, अपने वतन तक पहुंचने की राह खोज लेगा। मैं तुम्हारे बनाये रास्ते पर अपने बेटे

के पास नहीं जाऊंगा। मैं उसके पास पहुंचने का ऐसा रास्ता खोजूंगा जो मेरी और उसकी शान के लायक़ होगा। यही ज़्यादा अच्छा कि तुम मेरा घोड़ा ले आओ।"

शुआइनात फाटक से इमाम का घोड़ा ले आई। उसने खूंटी से चाबुक उतारकर उसे दे दिया।

शामील के सभी अभियानों, उसकी सभी यात्राओं में—वे चाहे दाग़िस्तान, पीटर्सबर्ग, कालूगा या अरब धरती से सम्बन्धित थीं—उसकी बीवी शुआइनात इमाम की ज़िन्दगी की आख़िरी घड़ी तक हमेशा उसके साथ रही। आज भी, हमारे ज़माने में भी इस अद्भुत औरत के बारे में क़िस्से-कहानियां सुनाये जाते हैं। आख़िर तो उसने इस चीज़ में भी मदद की कि इमाम का बेटा जमालुद्दीन उसके पास लौट आया। लेकिन यह एक अलग कहानी है।

जमालुद्दीन का गाना

आठ वर्ष की उम्र में बन्धक बनाया गया जमालुद्दीन चौबीस वर्षीय जवान के रूप में दाग़िस्तान लौटा। बेटे को वापस लाने के लिये इमाम शामील को बहुत-सी शक्ति लगानी पड़ी, बहुत सब्र और चालाकी से काम लेना पड़ा। शामील ने ज़ार के सामने बन्दी बनाये गये अनेक रूसी सैनिकों को बेटे के बदले में देने के प्रस्ताव पेश किये, लेकिन ज़ार राज़ी नहीं हुआ। ज़ार को दाग़िस्तान के किशोर की पीटर्सबर्ग में ज़रूरत थी। उसे मौत के घाट उतार देने की धमकी देकर ज़ार शामील को व्यर्थ की लड़ाई ख़त्म करने को मजबूर करना चाहता था। इमाम ने इन धमकियों की कोई परवाह नहीं की। बेटे की तरफ़ से (शायद ख़ुद बेटे ने) इमाम को यह लिखा कि ज़ार बहुत शक्तिशाली है और उसपर जीत हासिल करने की कोई उम्मीद नहीं की जा सकती। दाग़िस्तान में ख़ून बह रहा है और ज़ार के विरुद्ध जूझते रहने से

हानि तथा दुख-दर्द के सिवा कुछ भी नहीं मिलेगा।

हठी इमाम ने किसी भी बात पर कान नहीं दिया।

ऐसा हुआ कि कुछ मुरीदों के साथ हाजी-मुरात रूसियों से जा मिला। किन्तु अपने परिवार–मां, बीवी, बहन और बेटे को उसने पहाड़ों में ही छोड़ दिया। ज़ाहिर है कि वे सब शामील के हाथों में आ गये। "अगर तुम वापस नहीं आओगे," शामील ने हाजी-मुरात को लिखा, "तो तुम्हारे बेटे बूलिच का सिर काट डालूंगा और तुम्हारी मां, बहन तथा बीवी को उनकी मिट्टी पलीद करने के लिये फ़ौजियों के हवाले कर दूंगा।"

उधर हाजी-मुरात भी अपने परिवार को बचाने के रास्ते ढूंढ़ रहा था और इस तरह ज़िद्दी इमाम के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये अपने को आज़ाद कर लेना चाहता था। उन दिनों में उसने यह कहा था–"मैं रस्सी से बंधा हुआ हूं और रस्सी का सिरा शामील के हाथ में है।" बदले में धन-दौलत देकर परिवार छुड़ाने का कोई सवाल ही नहीं पैदा होता था। शामील को जब यह मालूम हुआ कि उसका भूतपूर्व मुरीद धन-दौलत देकर अपना परिवार छुड़ा लेना चाहता है तो उसने कहा–"लगता है कि और सब चीज़ों के अलावा, हाजी-मुरात का दिमाग़ भी चल निकला है।"

लेकिन अगर शामील के हाथों में हाजी-मुरात को बांधनेवाली रस्सी का सिरा था तो हाजी-मुरात के हाथों में वह धागा था जो सीधा शामील के दिल तक पहुंचता था। यह धागा जमालुद्दीन था। हाजी-मुरात ने वोरोन्त्सोव से अनुरोध किया–"ज़ार से कहिये कि वह जमालुद्दीन को उसके पिता को लौटा दें। तब यह मुमकिन है कि शामील मेरे परिवार के लोगों को आज़ाद कर दे। जब तक मेरा परिवार शामील के हाथों में है, मेरे लिये उसके विरुद्ध लड़ने का मतलब है–अपने ही हाथों से अपनी मां, बेटे और बीवी यानी पूरे कुनबे को क़त्ल कर डालना।"

वोरोन्त्सोव ने ज़ार को यह सब कुछ बताया और ज़ार इसके लिये राज़ी हो गया। शामील को यह लिखा गया–"अगर तुम

हाजी-मुरात के परिवार को छोड़ दोगे तो तुम्हें तुम्हारा बेटा मिल जायेगा।"

शामील के सामने अब यह यातनापूर्ण चुनाव था। तीन रातों तक न तो वह खुद और न उसका परिवार ही सोया। चौथे दिन इमाम ने हाजी-मुरात के बेटे बूलिच को अपने पास बुलवाया।

"तुम हाजी-मुरात के बेटे हो?"

"हां, मैं हाजी-मुरात का बेटा हूं, इमाम।"

"तुम जानते हो कि उसने क्या किया है?"

"जानता हूं, इमाम।"

"इसके बारे में तुम क्या कहोगे?"

"इसके बारे में क्या कहा जा सकता है?"

"उससे मिलना चाहते हो?"

"बेहद चाहता हूं।"

"मैं तुम्हें तुम्हारी मां, दादी, पूरे परिवार के साथ उसके पास जाने को आज़ाद करता हूं।"

"नहीं, मैं पिता के पास नहीं जा सकता। मेरा स्थान दाग़िस्तान में है। लेकिन वहां तो दाग़िस्तान नहीं है।"

"तुम्हें जाना चाहिये, बूलिच। यह मेरा हुक्म है।"

"मैं नहीं जाऊंगा, इमाम! यही बेहतर होगा कि आप यहीं और इसी वक़्त मेरी जान ले लें।"

"मैं देख रहा हूं कि अपने बाप की तरह तुम भी हुक्म मानना नहीं जानते।"

"हम सब आपका हुक्म मानने को तैयार हैं, इमाम। लेकिन मुझसे यह नहीं कहिये कि मैं वहां जाऊं। यही ज़्यादा अच्छा होगा कि आप मुझे जंग में भेज दें। मैं अपनी जान की परवाह नहीं करूंगा।"

"पिता के ख़िलाफ़ लड़ने को?"

"दुश्मनों के ख़िलाफ़।"

उस दिन शामील ने अपना एक सबसे अच्छा खंजर बूलिच को भेंट किया।

"अपने पिता की तरह ही इसके इस्तेमाल में कमाल हासिल करो। लेकिन हमेशा यह ध्यान रखना कि इससे किसपर वार करना है।"

हाजी-मुरात की सौदेबाज़ी कामयाब नहीं हुई। उसका बेटा उसके पास नहीं गया। जमालुद्दीन भी इमाम के पास वापस नहीं आया।

लेकिन इसी बीच शामील ने अपने दूसरे उपाय किये। उसने अपने दूसरे बेटे, काज़ी-मुहम्मद को जार्जियाई रियासत त्सिनानदाली पर धावा बोलने को भेज दिया। इसके फलस्वरूप प्रिंसेस चावचावाद्ज़े, प्रिंसेस ओर्बेलियानी और इनके साथ उनकी फ़्रांसीसी शिक्षिका भी बन्दी बना ली गयीं। नीना ग्रिबोयेदोवा की बहन येकातेरीना चावचावाद्ज़े को मुरीदों ने पेड़ के कोटर में छिपा पाया और उन्होंने उसे वहां से निकालकर क़ैदी बना लिया।

अब तो शामील ज़ार को अपनी शर्तें मानने के लिये मजबूर कर सकता था।

कारण कि ज़ार हर हालत में जार्जियाई प्रिंसेसों को बचाना चाहेगा।

"अपने बेटे के बदले में ही प्रिंसेसों को लौटाऊंगा," शामील ने अपना आख़िरी फ़ैसला सुना दिया।

तो वह दिन आया। चौड़ी नदी बह रही थी। उसके एक तट पर बन्दी बनाकर लायी गयी प्रिंसेसें अपने आज़ाद होने की राह देख रही थीं। दूसरे तट पर रूसी फ़ौजियों के साथ इमाम का बेटा सामने आया। शामील भी अपने घोड़े पर सवार होकर नदी-तट पर आ गया। वह दूसरे तट पर अन्य लोगों के बीच अपने बेटे को देखने-पहचानने की कोशिश कर रहा था। उन्होंने इतने बरसों तक एक-दूसरे को देखा जो नहीं था। क्या बाप और बेटा अब एक-दूसरे को पहचान सकेंगे?

इमाम को सुनहरी फीतियोंवाला फ़ौजी ओवरकोट पहने हुए एक सुघड़-सुडौल रूसी फ़ौजी अफ़सर दिखाया गया। यह अफ़सर दूसरे रूसी अफ़सरों से बातचीत कर रहा था, उसने उनसे विदा

ली और उन्हें गले लगाया। इसके बाद वह एक ओर को अलग खड़ी हुई एक युवती के पास गया और उसने उसका हाथ चूमा। जब-तब वह सफ़ेद घोड़े पर सवार अपने पिता की तरफ़ भी देख लेता था।

"क्या यही है मेरा बेटा?" इमाम ने इस अफ़सर को टकटकी बांधकर देखते और उसकी किसी भी गति-विधि को नज़र से न चूकने देने की कोशिश करते हुए पूछा।

"हां, यही है जमालुद्दीन।"

"चेर्केस्का और हमारे हथियार उस तट पर ले जाकर उसे दे दो। इस क्षण से वह ज़ार की फ़ौज का अफ़सर नहीं, बल्कि दाग़िस्तान का सैनिक है। जो कपड़े वह इस वक़्त पहने है, उन्हें नदी में फेंक दो। वरना मैं बेटे को अपने क़रीब नहीं आने दूंगा।"

जमालुद्दीन ने पिता की इच्छानुसार अपने कपड़े बदल लिये। पहाड़ी चेर्केस्का के ऊपर उसने पहाड़ी लोगों के हथियार बांध लिये। लेकिन चेर्केस्का और समूर की बड़ी टोपी के नीचे जमालुद्दीन का दिल तथा सिर तो जहां के तहां रह गये थे और उन्हें तो किसी तरह भी बदलना मुमकिन नहीं था।

आख़िर वह नदी पार करके अपने पिता के पास आया।

"मेरा प्यारा बेटा!"

"मेरे अब्बा!"

जमालुद्दीन को घोड़ा दे दिया गया। वेदेनो तक के पूरे रास्ते में बाप और बेटा साथ-साथ सवारी करते रहे। इमाम शामील कभी-कभी पूछता –

"जमालुद्दीन, यह बताओ, तुम्हें ये जगहें याद हैं? तुम इन चट्टानों को भूल तो नहीं गये? तुम्हें हमारे गीमरी गांव की याद है? अख़ूल्गो याद है?"

"अब्बा, तब तो मैं बहुत छोटा था।"

"यह बताओ कि तुमने दाग़िस्तान के लिये कभी एक बार भी अल्लाह के दरबार में इबादत की? तुम हमारी इबादत तो

नहीं भूल गये, क़ुरान की नज़्में तो नहीं भूल गये?"

"वहां, जहां मैं रहता था, क़ुरान नहीं था," जमालुद्दीन ने मन मारकर जवाब दिया।

"क्या तुमने एक बार भी सर्वशक्तिमान अल्लाह के सामने सिर नहीं झुकाया? उसकी इबादत नहीं की? रोज़े नहीं रखे? नमाज़ अदा नहीं की?"

"अब्बा, हमें कुछ बातें करनी चाहिये।"

लेकिन शामील ने कोई बात न करके घोड़े को एड़ लगा दी।

अगले दिन इमाम ने बेटे को अपने पास बुलवा भेजा।

"देखो, जमालुद्दीन, पहाड़ों के पीछे से सूरज ऊपर उठ रहा है। बहुत ख़ूबसूरत नज़ारा है न?"

"हां, ख़ूबसूरत है, अब्बा।"

"तुम इन पहाड़ों, इस सूरज के लिये अपनी ज़िन्दगी क़ुर्बान करने को तैयार हो?"

"अब्बा, हमें कुछ बातें करनी चाहिये।"

"तो कर लो।"

"अब्बा, ज़ार महान है, बहुत अमीर है, बड़ा ताक़तवर है। हमें इन पहाड़ों की ग़रीबी, ख़स्ताहाली और जहालत की रक्षा करने की क्या ज़रूरत है? रूस में महान साहित्य, महान संगीत और महान भाषा है। ये सब हमारे हो जायेंगे। रूस के साथ मिल जाने पर दाग़िस्तान का भला ही होगा। आंखें खोलकर सचाई को देखने, हथियार फेंकने और घावों को भरने का वक़्त आ गया है। यक़ीन मानिये कि मैं दाग़िस्तान को आपसे कुछ कम प्यार नहीं करता हूं..."

"जमालुद्दीन!.."

"अब्बा जान, दाग़िस्तान में एक भी तो ऐसा गांव नहीं है जो कम से कम एक बार न जला हो। एक भी तो ऐसी चट्टान नहीं है जो घायल न हुई हो। एक भी तो ऐसा पत्थर नहीं है जो ख़ून से न रंगा गया हो।"

"मैं देख रहा हूं कि तुम न तो इन घायल चट्टानों की

हिफाजत करने को तैयार हो और न ऐसा करने के लायक़ ही हो।"

"अब्बा जान!"

"मैं तुम्हारा अब्बा नहीं हूं। और तुम मेरे बेटे साबित नहीं हुए। तुम्हारे लफ़्ज़ सुनकर तो मुर्दों को क़ब्रों से निकल आना चाहिये। लेकिन जब मैं तुम्हारे मुंह से यह सब कुछ सुनता हूं तो मैं ज़िन्दा आदमी क्या करूं? देखते हो, चट्टानें कैसे काली हो गयी हैं?"

शामील ने अपने सबसे वफ़ादार लोगों और घरवालों को बुलवा भेजा।

"लोगो, मैं आपको वह बताना चाहता हूं जो मेरा बेटा कहता है। वह कहता है कि गोरा ज़ार महान है, कि दुश्मन बहुत ताक़तवर है, कि ज़ार का राज्य बहुत बड़ा है और हम बेकार ही उसके ख़िलाफ़ लड़ रहे हैं। उसका कहना है कि हमें अपने हथियार फेंककर बड़ी नम्रता से ज़ार के सामने अपना सिर झुका देना चाहिये। मैं यह मानता था कि जो आदमी न केवल ऐसा कहने, बल्कि ऐसा सोचने की भी हिम्मत करेगा, मैं उसे एक घण्टे तक भी दाग़िस्तान में नहीं रहने दूंगा। आज ये शब्द सुनायी दे रहे हैं और वह भी कहां? हमारे घर में। कौन कह रहा है ये शब्द? मेरा बेटा! इसके साथ, ऐसे आदमी के साथ क्या किया जाये जिसे ज़ार ने दाग़िस्तान और मुझे बेइज़्ज़त करने के लिये यहां भेजा है? आप लोग बहुत अच्छी तरह से यह जानते हैं कि दुश्मन की संगीनों ने कितनी बार दाग़िस्तान और ख़ुद मेरी छाती को भी ज़ख़्मी किया है। लेकिन जो संगीन मैंने ख़ुद बनायी थी, ज़ार ने उसे तेज करके उससे मेरे ही दिल को निशाना बनाया है। बताइये, अब क्या किया जाये?"

इमाम के नज़दीकी लोगों ने बड़े दुखी मन से उसके ये शब्द सुने। सिर्फ़ मां ही इस सब पर यक़ीन करने को तैयार नहीं थी।

शामील ने जमालुद्दीन को सम्बोधित करते हुए कहा—

"ओ, पहाड़ों के दुश्मन! तुम वहां रहोगे, जहां से मुझे

तुम्हारी आवाज सुनायी न दे। न तो अब तुम्हारा कोई बाप है, न दाग़िस्तान है। मैंने जार्जियाई प्रिंसेसों से तुम्हें बदल लिया, लेकिन तुम्हें किससे बदलूं? मैं तुम्हारा क्या करूं?"

"अपने बेटे के साथ आप जो भी चाहें, वही कर सकते हैं। बेशक जान ले लीजिये, लेकिन पहले मेरी बात सुन लीजिये।"

"रहने दो अपनी बात। मैं हमेशा अल्लाह की बात सुनता रहा हूं, लेकिन आज उसे भी नहीं सुन रहा हूं। अल्लाह कह रहा है-"इस दुश्मन को क़त्ल कर डालो!" मगर मैं उसे जवाब देता हूं कि यह दुश्मन नहीं, गुमराह हो जानेवाला बेटा है। मैं उससे कहता हूं कि मुझमें अपने हाथ की उंगली काटने की हिम्मत नहीं है। इसलिये तुम ज़िन्दा रहो, लेकिन खंजर उतार दो। हथियार की उसे ज़रूरत होती है जो दुश्मन से लोहा लेने को तैयार हो।"

शामील ने अपने बेटे को दूर के एक गांव में भेज दिया। जमालुद्दीन वहां पेड़ से अलग हुए पत्ते की तरह रहता था। अवसादपूर्ण विचारों से क्षीण होने, बुरी खुराक और ऐसे जलवायु के कारण, जिसका वह आदी नहीं था, जमालुद्दीन को तपेदिक़ हो गया। इमाम दुश्मन से मोरचा ले रहा था और उधर बेटे के लिये सांस लेना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा था। उसे उसके भाग्य पर छोड़ दिया गया था। इसी वक़्त इमाम से चोरी-छिपे जमालुद्दीन की मां, पातीमात, उसके पास गयी। वह रोटी से बनाये गये खिलौने अपने साथ ले गयी थी। ऐसे एक खिलौने की शक्ल खंजर जैसी थी, दूसरे की उक़ाब और तीसरे की तलवार जैसी। इसके बाद उसने अहाते से उपले लाकर आग जलायी। पातीमात ने रोटी के खिलौने गर्म किये, अपने घुटनों पर रगड़कर उनकी राख साफ़ की और उनमें से एक खिलौने को तोड़कर जमालुद्दीन को ऐसे दिया मानो वह बच्चा हो।

"जब मां का अपना दूध नहीं उतरता तो वह बच्चे को पहाड़ी बकरी के दूध का आदी बनाने की कोशिश करती है," पातीमात ने कहा।

जमालुद्दीन हैरत से मां को देख रहा था। उसे लगा मानो वह उसे पहली बार देख रहा हो। अचानक वह जवान और सुन्दर नारी के रूप में उसे याद हो आयी। बचपन में वह उसे ऐसी ही रोटियां खिलाया करती थी। घोड़े की शक्लवाले पालने के क़रीब बैठकर वह उसे शेरनी का दूध पिलाकर पाले-पोसे गये तरुण के बारे में गाना सुनाया करती थी। उसके सिरहाने, छोटे-से तकिये के नीचे लकड़ी का छोटा-सा खंजर रखा रहता था।

"अम्मां!" जमालुद्दीन बचपन के वक़्त की तरह ही चिल्ला उठा।

"जमाल, मेरे बेटे, तुम फिर से मेरा बेटा बन जाओ!" पातीमात ने कहा।

जमालुद्दीन ने अपनी मां को पहचान लिया। चूल्हे की बुझती आग के क़रीब बैठकर और बीमार बेटे के ऊपर झुककर मां उसे उसी तरह से लोरियां सुना रही थी, जिस तरह उसके जीवन की उषावेला में।

बेटा अपने जिस बाप को समझ नहीं पाया था, वह मुरीदों के साथ कहीं दूर मोरचे पर जूझ रहा था। और उसकी बीवी पातीमात आख़िरी सांसें गिनते हुए अपने पहलौठे के लिये चिर विदा-गान गा रही थी।

जमालुद्दीन को लगा कि कहीं नज़दीक ही चट्टानों के बीच कोई दरिया कराह रहा है। उसे ऐसा आभास हुआ कि दरवाज़े के पास कटी और सूखी घास पर बछड़ा लेटा हुआ है।

उसे गीमरी में अपने घर, अपने पिता, अपने पहले घोड़े की याद आ गयी। मां ख़ुशमिज़ाज डिंगीर-डानगारचू के बारे में गाना गा रही थी जो बारिश की धार के सहारे आकाश में चढ़ गया था।

—"कहां गये थे यह बतलाओ, डिंगीर-डंगारचू?"
—"वन में ज़रा गया था मैं तो, डिंगीर-डंगारचू।"
—"तुम क्या करने वहां गये थे, डिंगीर-डंगारचू?"

–"लकड़ी लाने वहां गया था डिंगीर-डंगारचू।"
–"तुम्हें ज़रूरत क्या लकड़ी की, डिंगीर-डंगारचू?"
–"ताकि बनाऊं मैं घर अपना, डिंगीर-डंगारचू।"
–"तुम्हें ज़रूरत है क्या घर की, डिंगीर-डंगारचू?"
–"शादी करना चाह रहा मैं, डिंगीर-डंगारचू।"
–"चाह रहा क्यों शादी करना, डिंगीर-डंगारचू?"
–"ताकि जन्म दूं मैं वीरों को, डिंगीर-डंगारचू।"
–"तुम्हें ज़रूरत क्या वीरों की, डिंगीर-डंगारचू?"
–"ताकि गर्व हो जग को उनपर, डिंगीर-डंगारचू।"

जमालुद्दीन की नज़रों के सामने उसके अपने, प्यारे पर्वत उभर आये। हिम पिघल रहा है, जल-धाराओं में कंकड़-पत्थर शोर मचा रहे हैं। पर्वतमाला पर बादल रेंग रहे हैं। पराये क्षेत्र में रहते हुए वह जिस दाग़िस्तान को भूल गया था, उसने उसे सभी ओर से घेर लिया। और मां गाती जा रही थी, गाती जा रही थी। उनमें वे गीत भी थे जो शिशु के जन्म पर गाये जाते हैं और वे भी जो बेटों के मरने पर गाये जाते हैं। उनमें यह भी कहा गया था कि बेटों के मर जाने पर उनके बारे में गीत बने रहते हैं। मां गा रही थी शामील के सम्बन्ध में, हाजी-मुरात, काज़ी-मुहम्मद, हम्ज़ात-बेक, बहादुर खोचबार, पार्तू-पातीमात, नादिरशाह के छक्के छुड़ाये जाने और उन बहादुरों के बारे में जो युद्ध के अभियानों से वापस नहीं आये।

चूल्हे में आग बुझती जा रही थी। दाग़िस्तान युद्ध की ज्वालाओं में जल रहा था। जमालुद्दीन की आंखों में अब ये दोनों लपटें प्रतिबिम्बित हो रही थीं। मां के गीत ने उसे उद्वेलित कर दिया। बेटे के दिल में दाग़िस्तान के प्रति प्रेम ने पलक खोल ली, वह भड़क उठा। वह उसे पिता की बग़ल में खड़ा होने के लिये पुकारने लगा।

"मां, मैं तो अभी दाग़िस्तान में लौटा हूं। अपने अब्बा से अभी मिला हूं। मुझे हथियार ला दो। मैं–शामील का बेटा हूं।

मुझे घर के चूल्हे के पास दम नहीं तोड़ना चाहिये। मुझे वहां जाने दो, जहां गोलियां चलती हैं।"

तो इस तरह मां के गीत ने वह कर दिखाया जो क़ुरान और पिता के हुक्म नहीं कर पाये थे।

लेकिन यह तो शोले के भड़क उठने के समान था। मां की लोरियां और गाने जमालुद्दीन के दिल में बसे हुए दूसरे गानों को मूक नहीं बना सकते थे। वह पीटर्सबर्ग को नहीं भूल सकता था, जहां बड़ा हुआ था। वह दाग़िस्तान के पहाड़ी लोगों की समझ में न आनेवाली भाषा और उनकी समझ में न आनेवाली पंक्तियां सुनाता था –

> प्यार तुम्हें बेहद करता हूं, ओ, तुम पीटर की रचना
> प्यारा मुझको रूप तुम्हारा, सुघड़, धीर-गम्भीर बना,
> नेवा की संयत धारा भी
> प्यारी पत्थर तट-कारा भी,
> प्यारे लोहे के जंगले भी, जिनपर नक़्क़ाशी सुन्दर,
> चिन्तन में डूबीं रातें भी
> पारदर्शी झुटपुटे शाम के
> तम-प्रकाश की घातें भी,
> और चांद के बिना चमक जो
> छाई रहती है नभ पर,
> अपने कमरे में मैं इससे बिना दीप के भी पढ़ता
> ऊंचे-ऊंचे भवन ऊंघते, सड़कें निर्जन, नीरवता,
> मुझे स्पष्ट सब कुछ दिखता
> और "एडमिरल्टी" के ऊपर इस्पाती छड़-डंड चमकता।

धुएं से भरे हुए पहाड़ी घर में इन शब्दों की गूंज अजीब-सी लगती। जमालुद्दीन को रातों को सपने आते मानो वह फिर से ज़ार के सैनिक-विद्यालय में शिक्षा पा रहा है, मानो ग्रीष्मकालीन उद्यान के जंगले के क़रीब वह जार्जियाई सुन्दरी नीना से मिल रहा है...

जमालुद्दीन के दिल में दो उक़ाब साथ-साथ जी रहे थे और दोनों उसे अपनी-अपनी तरफ़ खींचते थे। उसकी आत्मा में दो गीत

गूंजते रहते थे। उसकी प्यारी नीना बहुत दूर थी। उनके बीच प्रबल नदी की धारा थी। इस नदी के पार डाक भी नहीं जाती थी। रूसी अफ़सर, दाग़िस्तान के इमाम का बेटा मानो इस नदी में डूब गया। यह नदी उसके सारे सपनों को बहा ले गयी और उन सपनों में उसका एक सबसे बड़ा सपना भी था।

जमालुद्दीन का एक सबसे प्यारा सपना इस प्रबल नदी के ऊपर एक पुल बनाना था, दोनों तटों को जोड़ना था, युद्ध की क्रूरता, अर्थहीन मार-काट की जगह दोस्ती, प्यार और ज़िन्दगी के सुखद सूत्र स्थापित करना था। वह पहाड़ों में गाये जानेवाले गीतों, मां के गीतों को समझता था, लेकिन साथ ही पुश्किन के गीतों को भी। उसके दिल में दो गीत एक-दूसरे के साथ घुल-मिल गये थे। काश, उसके पिता यह समझ पाते! काश, सभी यह समझ पाते! काश, गीत एक-दूसरे को समझ लेते और प्यार करते!

किन्तु गीत तो तलवारों के समान थे। वे हवा में टकराते थे, उनसे चिंगारियां निकलती थीं। ख़ून से लथपथ होता हुआ दाग़िस्तान ख़ून, बहादुरों, कौवों द्वारा नोची जानेवाली आंखों, घोड़ों की हिनहिनाहट, खंजरों की खनक और उस घोड़े के बारे में ही गीत गाता था जो अपने सवार को युद्ध-क्षेत्र में खोकर घर वापस आ जाता था।

और जब गीत एक-दूसरे को समझ जाते थे, जब एक तट के लोग दूसरे तट के लोगों को समझ जाते थे तो गोलियां चलनी बन्द हो जाती थीं, खंजरों की खनक शान्त हो जाती थी, ख़ून बहना बन्द हो जाता था, हाथ बदला लेने को नहीं उठता था और हृदय में क्रोध के बजाय प्यार हिलोरें लेने लगता था।

वालेरिक नदी के तट पर हुई लड़ाई में शामील का ज़ख्मी हो जानेवाला मुरीद मोल्ला-मुहम्मद रूसियों के हाथों में पड़ गया। गांव के लोगों ने यह मानते हुए कि वह लड़ाई में मारा गया,

उसका मातम भी मना लिया। लेकिन एक महीने बाद वह जीता-जागता और बिल्कुल स्वस्थ व्यक्ति के रूप में घर वापस आ गया। आश्चर्यचकित लोग उससे पूछने लगे कि उसे आज़ाद होने में कैसे कामयाबी मिल गयी। मुरीद को यह बात बुरी लगी और उसने कहा –

"यह मत सोचिये कि मोल्ला-मुहम्मद झूठ या ख़ुशामद की बदौलत आज़ाद होकर आ गया है। मैं बुज़दिल नहीं हूं।"

"हम जानते हैं कि तुम बहादुर मुरीद हो। शायद तुमने तलवार की मदद से आज़ादी हासिल की है।"

"मेरे पास तलवार नहीं थी। और अगर होती भी तो वह मेरी मदद न कर पाती।"

"तो तुम कैसे बचकर निकल आये?"

"मुझे तहख़ाने में बन्द कर दिया गया। दरवाज़े पर ताला लगा दिया गया।"

"तो वहां तुमने अपने को कैसे महसूस किया?"

"फंदे में फंस गये पहाड़ी बकरे की तरह। लेकिन इस तहख़ाने में मुझे अचानक अली के बारे में, जिसे उसके मक्कार भाइयों ने ऊंची चट्टान पर अकेला छोड़ दिया था, गाना याद आ गया। मैंने यह गाना गाया। इसके बाद मैं दूसरे गीत गाने लगा। मैंने वसन्त में लौटनेवाले मौसमी परिन्दों, पतझर में उड़ जानेवाले सारसों के बारे में गाने गाये, उस हिरन के सम्बन्ध में भी गाना गाया, जिसे अकुशल शिकारी ने नौ बार घायल किया था, पतझर और जाड़े के बारे में भी गाने गाये। मैं ऐसे गाने गाता रहा जिन्हें अभी तक किसी ने नहीं गाया था। तीन दिन तक मैंने गीत गाने के सिवा और कुछ भी नहीं किया। पहरेदारों ने कोई बाधा नहीं डाली। अगर गाने के शब्द सभी की समझ में न आयें तो भी गाना तो गाना ही होता है। गाने को सभी सुनते हैं। एक दिन एक जवान अफ़सर पहरेदारों के पास आया। मैंने सोचा कि अब मेरा काम तमाम हुआ। इस अफ़सर के साथ एक और आदमी भी था जो हमारी भाषा जानता था। उस आदमी

ने मुझसे कहा – 'अफ़सर जानना चाहता है कि तुम किस बारे में गाना गा रहे हो। तुम्हारे गीत का क्या विषय है? तुम हमारे लिये इसे एक बार फिर गाओ।' मैं आग की लपटों में जलते दाग़िस्तान के बारे में गाने लगा। मुझसे और गाने का अनुरोध किया गया। मैंने बेचारी मां और प्यारी पत्नी के बारे में गाया। अफ़सर सुनता और पहाड़ों की तरफ़ देखता जाता था। पहाड़ बादलों से ढके हुए थे। उसने पहरेदारों से कहा कि मुझे छोड़ दिया जाये। हमारी भाषा जाननेवाले आदमी ने मुझे बताया – 'यह अफ़सर तुम्हें रिहा करते हैं। इन्हें तुम्हारे गीत बहुत अच्छे लगे हैं और इसलिये वह तुम्हें तुम्हारी मातृभूमि जाने की इजाज़त देते हैं।' इसके बाद मैं कभी-कभी यह सोचता हूं कि शायद ख़ून बहाने के बजाय दाग़िस्तान को हमेशा अपने गाने ही गाने चाहिये।"

लेकिन शामील ने दुश्मन की क़ैद से रिहा होकर आनेवाले मुरीद से पूछा –

"मैंने तो गाने की मनाही कर दी है, फिर तुम किसलिये गाते रहे?"

"इमाम, तुमने दाग़िस्तान में गाने की मनाही की है, लेकिन वहां गाने की तो नहीं।"

"तुम्हारा जवाब मुझे पसन्द आया है," शामील ने कहा। और कुछ देर सोचने के बाद इतना और जोड़ दिया – "तुम्हें गाने की आज़ादी देता हूं, मोल्ला-मुहम्मद।"

इस वक़्त से लोग मोल्ला-मुहम्मद को ऐसा मुहम्मद कहने लगे जिसे गाने ने बचा लिया।

दाग़िस्तान को बचाने के लिये भी गाने की ज़रूरत थी। लेकिन क्या सभी ने उसे उसी तरह से समझ लिया होता जैसे उस अफ़सर ने समझा? और कौन था वह फ़ौजी अफ़सर? क्या लेफ़्टिनेंट लेर्मोन्तोव नहीं? उसने भी तो वालेरिक की लड़ाई में हिस्सा लिया था।

एक अन्य घटना प्रस्तुत है। तेमीरख़ान-शूरा पर कामयाबी से

धावा बोलने के बाद हाजी-मुरात अपनी फ़ौज के साथ वापस लौट रहा था। सड़क से कुछ दूर एक जंगल में उसे दो रूसी सैनिक दिखाई दिये। वे अलाव के क़रीब चैन से बैठे हुए गाने गा रहे थे। हाजी-मुरात ने थोड़ी-बहुत रूसी समझनेवाले अपने एक सैनिक से पूछा –

"ये किस बारे में गा रहे हैं?"

"अपनी मां, अपनी प्रेमिका और दूरस्थ मातृभूमि के बारे में।"

हाजी-मुरात देर तक रूसी गाना सुनता रहा। इसके बाद धीरे से बोला –

"ये लोग दुश्मन नहीं हैं। इन्हें परेशान नहीं करना चाहिये। गाते रहें मां के बारे में अपना गाना।"

इस तरह गाने ने लोगों को गोलियों का निशाना बनने से बचा लिया। अगर लोग एक-दूसरे को समझ सकते तो कितनी ही ऐसी गोलियां चलने से रुक जातीं, लोगों की जानें बच जातीं!

तीसरी घटना। दाग़िस्तान की क्रान्तिकारी समिति के अध्यक्ष मख़ाच ने मशहूर शायर महमूद को एक बहुत महत्त्वपूर्ण रुक्क़ा देकर ख़ूंज़ह के छापेमारों के पास भेजा और उससे कहा –

"ख़ंजर से नहीं, बल्कि पन्दूरे से अपने लिये रास्ता बनाना।"

त्सादा गांव में महमूद को गिरफ़्तार करके काल-कोठरी में बन्द कर दिया गया। महमूद के पास से उन्हें मख़ाच का रुक्क़ा भी मिल गया और, ज़ाहिर है, कि उसे गोली मार दी गयी होती। काल-कोठरी में बैठा हुआ शायर महमूद अपने प्यार के बारे में गाने लगा। सारा गांव उसका गाना सुनने को जमा हो गया, दूसरे गांवों तक के लोग भी आ गये। तब नज्मुद्दीन गोत्सीन्स्की यह समझ गया – "अगर मैं आज इस गायक की जान ले लेता हूं तो कल सभी पहाड़ी लोग मुझसे मुंह मोड़ लेंगे।" शायर महमूद को रिहा कर दिया गया।

इरची कज़ाक कहा करता था कि साइबेरिया के निर्वासनकाल में अगर गाने उसका साथ न देते तो ग़म से उसकी जान चली गयी होती।

ऐसे अनेक क़िस्से-कहानियां हैं। उनपर विश्वास करना चाहिये। गीतों-गानों ने अनेक लोगों की जानें बचायीं, अनेक प्यादों को घुड़सवार बना दिया। बहादुरों के बारे में गाना सुनकर अनेक डरपोक लोगों ने डरना छोड़ दिया।

यह क़िस्सा मैंने अबुतालिब से सुना।

जब मैं भारत से लौटा तो अबुतालिब ने इस देश के बारे में मुझसे बहुत कुछ पूछा। मैंने उसे बताया कि किसी तरह से भारत में फ़क़ीर, सांपों को वश में करनेवाले सपेरे एक ख़ास तरह की बीन बजाते हुए कोबरा नाग को बैले-नर्तकी की तरह नचाते हैं।

"यह तो कोई ख़ास हैरानी की बात नहीं है," अबुतालिब ने कहा, "हमारे चरवाहे भी तो ऊंचे पहाड़ों में मुरली बजाकर पहाड़ी बकरों को नाचने के लिये विवश किया करते थे। मैंने अपनी आंखों से यह देखा कि हमारे सबसे डरपोक हिरन भी संगीत की धुन पर कितनी ख़ुशी से उसकी तरफ़ खिंचे आते थे। मैंने ज़ुरने की स्वर-लहरियों पर रज्जु-नर्तकों की तरह भालुओं को रस्से पर नाचते देखा है।" अबुतालिब कुछ क्षण तक चुप रहा और इसके बाद बोला—"संगीत ने मेरे जीवन में भी मदद की है। तुम तो शायद यह जानते ही हो कि ज़ुरने को ही मैं सबसे ज़्यादा प्यार करता हूं। उसकी आवाज़ दूर तक गूंजती है। वह तो बेटे के जन्मदिन, दोस्त के आगमन और शादी-ब्याह की घोषणा करता है। कोई कुश्ती में जीतता है या घुड़दौड़ में—दाग़िस्तान में ज़ुरना ही सभी ख़ुशियों की सूचना देता है। सभी संगीत-वाद्यों या साज़ों के बीच उसकी हैसियत दावत के टोस्ट-मास्टर जैसी है। मैं इस कारण भी ज़ुरने को प्यार करता हूं कि जवानी के दिनों में इसने मेरा पेट भरा, मुझे रोटी दी। एक बार मेरे साथ जो घटना घटी, मैं तुम्हें वह सुनाना चाहता हूं।

"यह मेरे जवानी के दिनों की बात है। एक बार मुझे एक

दूर के पहाड़ी गांव में शादी में हिस्सा लेने के लिये बुलाया गया। सर्दियों के दिन थे। खूब जोर से बर्फ़ गिर रही थी। रास्ता सांप की तरह टेढ़ा-मेढ़ा और बल खाता हुआ था। मैं थककर एक पत्थर पर आराम करने के लिये बैठ गया। गांव अभी इतना दूर था कि सिगरेट पीते-पीते तम्बाकू की पूरी थैली खत्म हो जाती। अचानक मोड़ के पीछे से घण्टियों की आवाज़ सुनायी दी और एक फ़िटन सामने आयी। फ़िटन में खूब पेट भरकर खाने और शराब पीने के बाद शोर-गुल मचानेवाले तीन आदमी बैठे थे। ये अमीर लोग थे। फ़िटन में जुते दो घोड़ों में से एक चीनी की तरह सफ़ेद और दूसरा काला था जिसके माथे पर सफ़ेद पद्म था। "अससलामालेकुम" – "वाससलामालेकुम" – सलाम-दुआ हुई। यह मालूम होने पर कि फ़िटन में सवार ये लोग भी उसी शादी में जा रहे हैं जिसमें मुझे जाना था, मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे मुझे अपने साथ बिठा लें। लेकिन उन्होंने उसी तरह, जिस तरह आजकल कारवाले बुरे लोग या टैक्सी-ड्राइवर करते हैं, इन्कार कर दिया और इसके अलावा मेरा मज़ाक़ भी उड़ाया – 'कोई बात नहीं, तुम अगली शादी तक गांव पहुंच जाओगे। लगता है कि इसमें तो तुम्हारे बिना ही काम चल जायेगा।'

"मैंने, थके-हारे और उनके उपहास के कारण जले-भुने व्यक्ति ने अपना ज़ुरना निकाला और उसे बजाने लगा। ऐसा बढ़िया ज़ुरना मैंने पहले कभी नहीं बजाया था। बस, कमाल ही हो गया। ज़ुरना सुनकर घोड़े ऐसे रुक गये मानो उनके पैरों में कील ठोंक दी गयी हो। फ़िटन में बैठे लोग आपे से बाहर हो रहे थे, घोड़ों पर चाबुक बरसा रहे थे, लेकिन बेसूद। घोड़े टस से मस नहीं हो रहे थे। शायद उन्हें मेरी धुन अच्छी लगी थी। सम्भवतः घोड़ों में उनके मालिकों की तुलना में ज़्यादा मानवीयता थी। देर तक यह खींचातानी चलती रही। घोड़ों ने मेरा साथ दिया और मालिकों को मजबूर होकर मुझे अपनी फ़िटन में बैठाना पड़ा। तो मेरे ज़ुरने ने इस तरह मेरी मदद की। गीत ही तो मुझे तहखाने से बाहर निकालकर आदर और सम्मान के बड़े मार्ग पर ले गये।"

मैंने अबुतालिब से पूछा –

"तुम तो मुरली, ज़ुरना और सभी तरह की बांसुरियां भी बजाते हो। तुम न केवल उन्हें बजाना जानते हो, बल्कि अपने हाथों से उन्हें बनाते भी हो। लेकिन तुम वायलिन क्यों नहीं बजाते? तुम तो जानते हो कि पहाड़ी लोगों को वायलिन बेहद पसन्द है।"

"तुम्हें बताऊं कि मैं वायलिन क्यों नहीं बजाता? तो सुनो। जब मैं जवान था तो वायलिन बजाता था। एक बार हमारे लाक गांव में एक बदक़िस्मत और थका-हारा अवार आया। उसने अपने एक गांववासी की हत्या कर दी थी और इसके लिये उसे गांव से निकाल दिया गया था। इस तरह के निर्वासित व्यक्ति को हमेशा गांव के छोरवाला पहाड़ी घर रहने को दिया जाता है। लोग उसके यहां नहीं आते-जाते हैं। वह भी किसी के यहां नहीं आता-जाता है। चूंकि मैं थोड़ी-सी अवार भाषा जानता था तो कभी-कभी उसके यहां आने-जाने लगा। एक शाम को मैं अपनी वायलिन लेकर उसके यहां गया। वह चूल्हे के क़रीब बैठा हुआ पतीले के नीचे फूस के अंगारों को हिला-डुला रहा था। पतीले में भी फूस उबल रहा था। मैं वायलिन बजाने लगा और क़िस्मत का मारा अवार आग को देखता तथा चुपचाप उसे सुनता रहा। इसके बाद उसने अचानक मेरी वायलिन अपने हाथ में ले ली, उसे ग़ौर से देखा, उसे इधर-उधर घुमाया, उसके कुछ तार कसे और बजाने लगा।

"वाह, वाह, कितनी बढ़िया वायलिन बजाता था वह, रसूल! ज़िन्दगी भर उसका वायलिन बजाना नहीं भूल सकूंगा। चूल्हे में फूस जलता जा रहा था। कभी-कभी वह ज़ोर से भड़क उठता और तब उसकी लपट की रोशनी में हमारी आंखें चमक उठतीं। हमारी आंखों से कभी-कभी आंसू बहते होते। मैं अपनी वायलिन इस अवार के यहां ही छोड़कर घर चला गया। अगले दिन मैं

पहाड़ों में गया, मैंने उसका गांव खोजा और फिर उसके रक्त-प्रतिशोधियों को ढूंढ़ा। मैं उन्हें उसके गांव से निर्वासित किये गये अवार के घर लाया। दिन को वे मेरे घर में बैठे रहते और रातों को मेरे साथ यह सुनने जाते कि उनका ख़ूनी दुश्मन कितनी बढ़िया वायलिन बजाता है। लगातार तीन रातों तक यह सिलसिला चलता रहा। चौथे दिन ख़ून का बदला ख़ून से लेने के इच्छुकों ने अपनी इस इच्छा से इन्कार कर दिया। उन्होंने अपने गांववासी से कहा—'तुम घर लौट आओ, हमने तुम्हें माफ़ कर दिया।' मुझसे विदा लेते समय उस अवार ने मेरी वायलिन मुझे लौटानी चाही, लेकिन मैंने उसे नहीं लिया। मैंने उससे कहा—'तुम्हारी तरह वायलिन बजाना मुझे कभी नहीं आ सकेगा और उससे बुरे ढंग से मैं अब इसे बजा नहीं सकता। इसलिये इस वायलिन की अब मुझे ज़रूरत नहीं।' तब से मैंने कभी वायलिन हाथ में नहीं ली। लेकिन जिस संगीत ने ख़ूनी दुश्मनों के बीच सुलह करवा दी, उसे भी मैं कभी नहीं भूलूंगा। मैं अक्सर यह सोचता हूं कि अगर सभी लोग वायलिन पर ऐसा संगीत सुन सकते तो बुराई करनेवाला एक भी आदमी दुनिया में न मिलता और कहीं भी वैर-भाव न होता।"

अब मैं अपने पिता जी से सम्बन्धित दो घटनाओं का उल्लेख करता हूं।

गोत्साल्ल गांव के निवासी हाजी नाम के एक व्यक्ति ने ख़ूंजह में एक रेस्तरां खोला। उसने मेरे पिता जी को बुलाकर उनसे कहा—

"आप पहाड़ी इलाक़ों में बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। आप मेरे रेस्तरां के बारे में एक गीत रच दें, उसमें उसकी कुछ प्रशंसा कर दें, ताकि सभी लोग उसके बारे में जान जायें। इसके लिये पारिश्रमिक देने के मामले में ज़रा भी देर नहीं होगी।"

पिता जी ने सचमुच ही एक गीत रच दिया और गोत्साल्ल गांव के निवासी के इस रेस्तरां को मशहूर भी कर दिया, लेकिन

गन्दे और बेहूदा रेस्तरां के रूप में। इसके बाद सभी लोग इस रेस्तरां और इसके मालिक की तरफ़ इशारा करते हुए कहते – "यह है वह आदमी जिसे हमारे हमज़ात ने धूल में मिला दिया।"

रेस्तरां के मालिक को जब यह पता चला कि उसके रेस्तरां के बारे में एक ऐसा गीत है तो वह परेशान हो उठा।

उसने पिता जी से कहा कि अगर वह अपने इस गीत का आम लोगों में प्रचार नहीं करेंगे तो इसके बदले में वह उन्हें ज़ीन समेत घोड़ा देने को तैयार है। किन्तु यदि कोई शब्द एक दर्रे को लांघ जाता है तो वह सारे पहाड़ों में पहुंच जाता है और कोई भी उसे नहीं रोक पाता। क़िस्मत के मारे इस हाजी के बारे में रचा गया यह गीत जल्द ही सभी गांवों में पहुंच गया। लोग उसे अभी तक गाते हैं। और हाजी को अपना रेस्तरां बन्द करना पड़ा।

एक बार हमारे घर से भेड़ की बग़लों का धूप में सुखाया गया मांस ग़ायब हो गया। उसके वापस आने की कोई उम्मीद नहीं हो सकती थी। लेकिन अचानक गांव में यह अफ़वाह फैल गयी कि हमज़ात ने चोर के बारे में एक गीत रचा है। नतीजा यह निकला कि सुखाया हुआ यह मांस उसी दिन हमारे छज्जे में फेंक दिया गया, यद्यपि मेरे पिता जी का ऐसा गीत रचने का ज़रा भी इरादा नहीं था।

नवदम्पतियों में कभी-कभी झगड़ा हो जाता है। ऐसे मौक़ों पर नवदम्पतियों के मित्र, अक्सर तो जवान पति के मित्र घर की खिड़की के नीचे खड़े होकर चोंगूर बाजा बजाने लगते हैं। चोंगूर की ध्वनियां नवदम्पति को अपने छोटे-से झगड़े के बारे में भूलने को मजबूर कर देती हैं।

मेरा भी अमीन चुतूयेव नाम का एक बहुत अच्छा दोस्त था, फ़ोटोग्राफ़र और संगीतज्ञ। मेरी शादी के पहले साल में उसे मेरी खिड़कियों के नीचे अक्सर चोंगूर बजाना पड़ा।

अमीन चुतूयेव, तुम अपनी वायलिन लेकर दुनिया की

खिड़कियों के नीचे उसे क्यों नहीं बजाते, ताकि हमारे युग के झगड़े सुलझ जायें, शान्त हो जायें?

शिकागो की एक भेंट में एक अमरीकी सहयोगी के साथ मेरी बहुत ही गर्मागर्म बहस हो गयी। बहस ने बड़ा ही उग्र रूप ले लिया और ऐसे लगता था कि यह कभी ख़त्म नहीं हो सकेगी। किन्तु बाद में अमरीकी ने अचानक अपने भाई की, जो पहले युद्ध के समय खेत रहा था, कविता सुना दी। मैंने भी उसी समय मौत के मुंह में चले जानेवाले अपने भाई की कविता वहां सुनाई। हमारा वाद-विवाद शान्त हो गया। केवल कवितायें ही बाक़ी रह गयीं। काश हम अक्सर ही वीरगति को प्राप्त होनेवालों को याद करते, काश कि हम अक्सर ही कविताओं और गीतों की ओर ध्यान देते!

मेरे पूर्वज पड़ोस के जार्जिया पर अक्सर हमले करते थे। ऐसे ही एक हमले के वक़्त वे जवान दविद गुरामिश्वीली को, जो बाद में जार्जिया का क्लासिक कवि बना, वहां से भगाकर अवार पर्वतों में ले आये।

ऊंचे पहाड़ी उन्त्सूकूल के एक गहरे तहख़ाने में बन्द यह बदक़िस्मत बन्दी जार्जियाई गाने गाता रहता। वहीं वह कविता रचने लगा। उसे उन्त्सूकूल से रूस भागने में सफलता मिल गयी और वहां से वह उक्रइना चला गया।

इस अनूठे कवि की जयन्ती के समय मैं त्बिलीसी गया। मुझसे वहां बोलने को कहा गया। मैंने मज़ाक़ करते हुए कहा कि दविद गुरामिश्वीली जैसे बड़े कवि के लिये जार्जिया हमारा, हम दाग़िस्तानियों का आभारी है। अगर हम उसे न भगा ले जाते, गहरे तहख़ाने में न बन्द कर देते तो शायद वह कविता न रचने लगता, रूस और उक्रइना न पहुंच सकता। उसकी जीवनी ने दूसरा ही रूप ले लिया होता। लेकिन इसके बाद मैंने यह भी कहा – "मेरे पूर्वज जब जवान प्रिंस को भगाकर लाये थे तो यह नहीं जानते थे कि एक कवि को भगाकर ले जा रहे हैं। अगर उन्हें यह मालूम होता तो वे कभी ऐसा न करते। ख़ैर, जो

हुआ सो हुआ, लेकिन इतना ज़रूर है कि अगर पहले दाग़िस्तान ने दविद गुरामिश्वीली को अपना बन्दी बनाया था तो अब दाग़िस्तान उसके काव्य के जादू में बंधा हुआ है। कितना उलट-फेर हुआ है ज़माने में!"

अब नये गीत गाये जाते हैं। लेकिन हम पुराने गीतों को भी नहीं भूले। अब दाग़िस्तान की जनता अपनी इन बहुमूल्य निधियों को सारी दुनिया को भेंट करती है।

पर्वतों में प्रकृति अपना कठोर रूप दिखाती है। पुराने वक़्तों में यहां बड़ी संख्या में बच्चे मरते थे। लेकिन जो ज़िन्दा रह जाते थे, वे बहुत लम्बी उम्र तक, सौ साल से अधिक समय तक जीते रहते थे।

गाये गये सभी गीत ज़िन्दा नहीं रहे, मगर जो ज़िन्दा रह गये हैं, वे सदियों तक जीवित रहेंगे।

बचपन में अधिकतर लड़के ही मरते थे। लड़कियां अधिक शक्तिशाली, अधिक जानदार सिद्ध होती थीं।

गीतों के बारे में भी यही ठीक है। मर्दाना, जवान सूरमाओं के गीत, युद्ध के गीत, हमलों और मार-काट के गीत, क़ब्रों, प्रतिशोध, ख़ून, साहस तथा वीरता के गीत प्यार के गीतों की तुलना में कहीं कम जीवित रहे हैं।

किन्तु सभी पुराने गीत मानो दाग़िस्तान के नये संगीत की भूमिका हैं। पुराने पन्दूरे पर नये तार लगाये जा रहे हैं और अब पहाड़ी औरतों की फुरतीली उंगलियां पियानो के सफ़ेद और काले परदों पर भी भागती हैं।

गीतोंवाले घर में मेरा जन्म हुआ और वहीं मैं बड़ा हुआ। मैंने बहुत झिझकते-झिझकते पेंसिल हाथ में ली। मैं कविता से नाता जोड़ते हुए घबराता था, मगर ऐसा किये बिना रह नहीं सकता था। मेरी स्थिति बड़ी विकट थी। हमज़ात त्सादासा के बाद रसूल त्सादासा (यानी त्सादा गांव के वासी) की किसे ज़रूरत हो सकती थी! उसी गांव, उसी घर और उसी दाग़िस्तान के रसूल की!

मैं कहीं भी क्यों न गया, किसी भी जगह मुझे लोगों से मिलने और बात करने का मौक़ा क्यों न मिला, अभी भी, जब मेरे अपने बाल पक गये हैं, हर जगह और हमेशा यही कहा जाता है–"अब हमारे हमज़ात के बेटे रसूल से अपने विचार प्रकट करने का अनुरोध किया जाता है।" बेशक यह सही है कि हमज़ात का बेटा होना कुछ कम सम्मान की बात नहीं है, लेकिन मन चाहता है कि मेरी अपनी अलग पहचान हो।

एक बार मैं एक पहाड़ी क्षेत्र में गया। कई गांवों में जाने के बाद मेरे रास्ते में त्सुमादा नाम का एक ही गांव बाक़ी रह गया था। मैंने दूर से देखा कि गांव के छोर पर बहुत-से लोग जमा हैं। ज़ुरना-वादन और गानों की ध्वनियां सुनायी दे रही थीं। किसी का स्वागत होनेवाला है। लेकिन मेरे सिवा तो वहां कोई आनेवाला नहीं था। मुझे यह अच्छा भी लगा और कुछ शर्म भी महसूस हुई, क्योंकि मैं तो मानो अभी ऐसे बढ़िया स्वागत-सत्कार के लायक़ नहीं हुआ था। हमारी मोटर लोगों के नज़दीक पहुंची। हम मोटर से बाहर निकले। लोगों ने पूछा–

"बुज़ुर्ग हमज़ात कहां हैं?"

"हमज़ात तो मखाचकला में हैं। उनका तो यहां आने का कोई प्रोग्राम नहीं था। मैं हमज़ात का बेटा रसूल आपके पास आया हूं।"

"लेकिन हमें तो यह बताया गया था कि हमज़ात आयेंगे।"

लोग अपने घरों को जाने लगे। कुछ जवान लोग ही मेरे साथ रह गये। हम गीत गाने लगे। हमने बहुत गाने गाये। वे गाने, जिन्हें जनता ने रचा, जिन्हें मेरे पिता जी ने रचा और यहां तक कि मेरे द्वारा रचा गया एक गीत भी।

मेरा यह गीत उस लड़के के समान था जो हाथ में छोटा-सा चाबुक लिये ज़ीन ले जानेवाले पिता के पीछे-पीछे ज़ीने पर चढ़ता जाता है।

हमारे पहाड़ी पन्दूरे! ज्यों-ज्यों मेरी आयु बढ़ती जाती है, ज्यों-ज्यों मुझे जीवन, लोगों और दुनिया का अधिकाधिक ज्ञान

होता जाता है, त्यों-त्यों मैं तुझे हाथ में लेते हुए अधिकाधिक घबराता हूं। हज़ारों सालों से तुम्हारे तारों को कसा और सुर में किया गया है। हज़ारों गायकों ने तुझमें से अद्भुत ध्वनियां निकाली हैं। जब मैं तेरे तार कसने लगता हूं तो मेरे दिल की धड़कन बन्द हो जाती है। अगर इस क्षण तार टूट जायेगा तो, मुझे लगता है, कि मेरे दिल के भी टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। तार तो बहुत आसानी से टूट सकता है। इसका मतलब है कि गीत की हत्या हो जायेगी।

लेकिन चाहे कुछ भी क्यों न हो, मुझे तुझे हाथ में लेना ही होगा, सुर में करना और अपना गीत गाना होगा। बेशक वह दाग़िस्तान के अन्य गीतों में खो जाये, क्योंकि मेरी आवाज़ तो पुराने गायकों की आवाज़ की बराबरी नहीं कर सकती। फिर हमारे गाने भी तो भिन्न हैं।

"क्या महमूद के बाद कभी किसी ने मुहब्बत नहीं की? लेकिन अब प्रेम-गीत सुनायी नहीं देते।"

"मुहब्बत तो की गयी है। लेकिन गीतों की क्या ज़रूरत है? आज की मूई जैसी प्रेमिका को प्रेम-गीत सुनाने और भगाकर ले जाने की ज़रूरत नहीं रही। वह तो खुद ही चली आती है।"

"क्या शामील के बाद बहादुरों का नाम-निशान मिट गया? अब तो वीरों के वीर-कृत्यों और शानदार लड़ाइयों के गीत सुनायी नहीं देते।"

"बहादुर तो शायद अभी भी हैं। लेकिन अब लड़ाइयों के गीतों की क्या ज़रूरत है, जबकि खुद तलवार भी चैन चाहती है।"

इससे भला क्या फ़र्क़ पड़ता है कि मेरी आवाज़ दाग़िस्तान की दूसरी आवाज़ों में खो जायेगी। दूसरे गायक आयेंगे जो वह गा देंगे जिसे मैं नहीं गा पाया।

बुढ़ापा आदमी को ज़िन्दगी की बहुत-सी खुशियों से वंचित कर देता है। वह इन्सान की ताक़त, आंखों की तेज़ रोशनी, अच्छी तरह सुनने की क्षमता छीन लेता है, उसके सामने झुटपुटे

का परदा गिराकर उसे दुनिया से अगल कर देता है। कभी-कभी तो उसका हाथ शराब का जाम तक नहीं सम्हाल पाता।

लेकिन मैं बुढ़ापे से नहीं डरता हूं, क्योंकि वह मुझसे सब कुछ छीनकर भी मेरा गीत नहीं छीन पायेगा। वह मुझसे मेरा महमूद, बातीराय, पुश्किन, हाइने, ब्लोक, सभी महान गायकों को, जिनमें दाग़िस्तान जैसा गायक भी शामिल है, कभी नहीं छीन सकेगा। जब तक दाग़िस्तान है, हमारे लिये चिन्ता करने की कोई बात नहीं। वह बना रहेगा तो हमारा बाल भी बांका नहीं होगा, हम भी बने रहेंगे।

एक पहाड़ी गांव में बच्चों का एक खेल है जिसे कुछ ऐसा नाम दिया जा सकता है—"जो खोजता है, उसे मिलता है, जिसे मिलता है, वह उसी का हो जाता है।" एक बार मैंने इस खेल में हिस्सा लिया।*

एक लड़के को दूसरे कमरे में भेज दिया जाता है, ताकि वह यह न देख सके कि लड़कियों में से कोई एक कहां छिपी है। इतना ही नहीं, लड़के की आंखों पर पट्टी भी बांध दी जाती है। कुछ देर बाद यह लड़का उस कमरे में जाकर, जहां लड़की छिपी हुई है, उसे ढूंढ़ने लगता है। सभी लड़के-लड़कियां मिलकर "आई, दाई, दालालाई" गाते हैं। लड़का जब ग़लत जगह पर ढूंढ़ता है तो गानेवाले धीमी और करुण आवाज़ में गाते हैं। जब वह ठीक दिशा में बढ़ता है तो वे बड़े उत्साह और ख़ुशी भरी आवाज़ में गाने लगते हैं। जब वह लड़की को ढूंढ़ लेता है तो सभी तालियां बजाते हैं और उन दोनों को नाचने के लिये मजबूर करते हैं। इस तरह से गाना उस लड़के को, जिसकी आंखों पर पट्टी बंधी होती है, सही रास्ता दिखाता है और उसे मनवांछित लक्ष्य पर पहुंचाता है।

गीतोंवाले घर, गीतोंवाले दाग़िस्तान, गीतोंवाले रूस और गीतोंवाली दुनिया में मेरा जन्म हुआ है। मैं गीत की शक्ति, गीत

* यह हमारे आंख-मिचौनी के खेल जैसा ही है।—अनु०

का महत्त्व जानता हूं। अगर दाग़िस्तान के पास गीत न होते तो कोई भी उसे ऐसे न जानता, जैसे सब लोग आज जानते हैं। तब दाग़िस्तान भटके हुए पहाड़ी बकरे जैसा होता। किन्तु हमारा गीत हमें खड़ी पहाड़ी पगडंडियों से विराट संसार में ले गया, उसने हमें दोस्त दिये।

"तुम गाना गा दो और मैं तुम्हें बता दूंगा कि तुम कैसे आदमी हो," अबुतालिब कहा करता था। दाग़िस्तान ने अपना गाना गाया और दुनिया उसे समझ गयी।

पुस्तक

अवार भाषा में त्येह शब्द के दो अर्थ हैं—भेड़ की खाल और पुस्तक।

कहा जाता है कि "हर किसी को अपना सिर और सिर पर समूरी टोपी को सुरक्षित रखना चाहिये।" जैसा कि सभी जानते हैं, हमारे यहां समूरी टोपी भेड़ की खाल से बनायी जाती है। लेकिन पहाड़ी आदमी का सिर सैकड़ों सालों तक वह एकमात्र अलिखित पुस्तक था जिसमें हमारी भाषा, हमारा इतिहास, हमारी दास्तानें, हमारे क़िस्से-कहानियां, आख्यान, रीति-रिवाज और वह सभी कुछ सुरक्षित रहा जिसकी जनता ने कल्पना की। भेड़ की खाल ने सदियों तक दाग़िस्तान की इस अलिखित पुस्तक—पहाड़ी आदमी के सिर—की रक्षा की, उसे गर्माया, उसे सहेजा। बहुत कुछ तो सुरक्षित रह गया और हम तक पहुंच गया, लेकिन बहुत कुछ खो भी गया, रास्ते में भटक गया और हमेशा के लिये तबाह हो गया।

इस पुस्तक के कई पृष्ठ वैसे ही नष्ट हो गये, जैसे युद्ध की आग में वीर नष्ट हो जाते हैं (समूरी टोपी गोली और तलवार से तो नहीं बचा सकती), लेकिन कुछ उन बदक़िस्मत राहगीरों की तरह नष्ट हो गये जो रास्ते से भटक जाते हैं, बर्फ़ीले तूफ़ान

में घिर जाते हैं, जिनकी ताक़त जवाब दे जाती है, जो खाई-खड्ड में गिर जाते हैं, हिमानी की लपेट में आ जाते हैं, किसी डाकू-लुटेरे के खंजर के शिकार हो जाते हैं।

कहा जाता है कि भूला और खोया हुआ ही सबसे अच्छा और महान होता है।

क्योंकि जब हम कविता सुनाते हैं और कोई एक पंक्ति भूल जाते हैं तो हमें उसी की सबसे अधिक ज़रूरत महसूस होती है।

क्योंकि जब मर जानेवाली गाय की याद आती है तो लगता है कि वही दूसरी गउओं से ज़्यादा दूध देती थी और उसी का दूध सबसे अधिक गाढ़ा होता था।

महमूद के पिता ने अपने शायर बेटे की पाण्डुलिपियों से भरा हुआ सन्दूक़ जला डाला था। पिता को ऐसे लगा था कि कवितायें उनके निकम्मे बेटे का सत्यानास करती हैं। अब सभी यह कहते हैं कि उस सन्दूक़ में महमूद की सबसे अच्छी कवितायें थीं।

बातीराय अपने एक गीत को कभी दो बार नहीं गाता था। वह अक्सर शादी के वक़्त नशे में धुत्त लोगों के सामने गाया करता था। ये गीत वहीं रह गये, किसी ने भी उन्हें नहीं सहेजा। अब सभी लोग यह कहते हैं कि वही उसके सबसे अच्छे गीत थे।

इरची कज़ाक ने शामहाल* के दरबार में बहुत-से गीत गाये। लेकिन उसके बहुत कम गीत ही दरबार की सीमा से बाहर आम लोगों तक पहुंचे। इरची कज़ाक खुद यह कहा करता था—चाहे कितना ही क्यों न गाओ, न तो शामहाल और न गधा ही गीतों को समझता है।

कहा जाता है कि इरची कज़ाक की दरबार में खो जानेवाली कवितायें ही सबसे अच्छी थीं।

आग में जला दिये गये पन्दूरों की आवाज़ हम तक नहीं पहुंची। नदी में फेंक दिये गये चोंगूरों की मधुर धुनें हम तक नहीं पहुंच सकीं। मौत के घाट उतार दिये गये और हताहत लोगों के

* शामहाल—दाग़िस्तान के सामन्तशाह की उपाधि।—सं०

लिये आज मेरा दिल उदास होता है।

किन्तु जो कुछ बाक़ी बच गया है, जब मैं उसे सुनता और पढ़ता हूं तो मेरा दिल खिल उठता है। मैं सच्चे दिल से ग़रीब पहाड़ी लोगों को धन्यवाद देता हूं जो हमारी अलिखित पुस्तकों को अपने हृदयों में सहेजे रहे और उन्हें हमारे समय तक लाये।

ये दास्तानें, ये क़िस्से-कहानियां, ये गीत-गाने मानो अब क़लम से कागज़ पर लिखे और किताबों के रूप में छपे हुए से कहते हैं–"हम, जो अलिखित हैं, सैकड़ों सालों तक सभी तरह की कठिनाइयों का सामना करते हुए ज़िन्दा रहे और तुम तक पहुंच गये। लेकिन यह जानना दिलचस्प होगा कि तुम जो इतने सुन्दर ढंग से छपे हुए हो, अगली पीढ़ी तक भी पहुंच पाओगे या नहीं? हम देखेंगे," वे कहते हैं, "पुस्तकालय, पुस्तक संग्रहालय या मानवीय हृदय अधिक भरोसे लायक़ पुस्तक-भण्डार हैं।"

बहुत कुछ विस्मृत हो जाता है। सैकड़ों पंक्तियों में से केवल एक पंक्ति बची रह जाती है और अगर वह बची रह जाती है तो हमेशा के लिये।

कहा जा चुका है कि पहले अनेक बच्चे बहुत ही छोटी उम्र में मर जाते थे।

इमाम शामील घायलों को नदी में कूदने के लिये मजबूर करता था। लुंज-पुंज सैनिकों की उसे ज़रूरत नहीं होती थी, क्योंकि वे दुश्मन से लोहा लेने में असमर्थ होते थे, मगर उन्हें खिलाना-पिलाना तो ज़रूरी होता था।

अब दूसरा ज़माना है। बच्चों की बहुत अच्छी देख-भाल की जाती है, डाक्टर उनकी चिन्ता करते हैं। घायलों की मरहम-पट्टी की जाती है। लंगड़े-लूलों को नक़ली टांगें और पांव दिये जाते हैं। लोगों के मामले में तो इन परिवर्तनों को बहुत ही सराहनीय और मानवीय माना जा सकता है।

किन्तु लुंज-पुंज विचारों, कमजोर कविताओं, अधमरी भावनाओं और मुर्दा ही पैदा होनेवाले गीतों के मामले में तो ऐसा नहीं होता? सब कुछ पुस्तक में ही रह जाता

है। सब कुछ कागज पर ही रह जाता है।

पहले यह कहा जाता था—"जबानी कही बात खो जाती है, लिखी हुई बाक़ी रह जाती है।" कहीं अब इसके उल्टा ही न हो जाये!

मगर आप यह नहीं समझ लीजियेगा कि मैं पुस्तक और लिखित भाषा की निन्दा कर रहा हूं। वे तो उस सूर्य की भांति है जिसने पर्वतों के पीछे से ऊपर उठकर घाटी को रोशन कर दिया, अन्धेरे और जहालत को छिन्न-भिन्न कर डाला।

मेरी मां ने मुझे एक लोमड़ी और एक पक्षी का क़िस्सा सुनाया था। वह इस प्रकार था।

किसी पेड़ पर एक विहगी रहती थी। उसका मज़बूत और खासा गर्म घोंसला था जिसमें वह अपने बच्चे पालती थी। सब कुछ अच्छे ढंग से चल रहा था। लेकिन एक दिन लोमड़ी आयी, पेड़ के नीचे बैठकर गाने लगी—

ये सारी चट्टानें मेरी,
यह सारा मैदान भी,
सभी खेत-खलिहान भी।
अपनी इस धरती पर मैंने
अपना पेड़ उगाया है,
इसी पेड़ पर लेकिन तूने
अपना नीड़ बनाया है।
इसीलिये तू दे दे मुझको
सिर्फ़ एक अपना बच्चा
वरना काटूं पेड़, मरें सब
हाल न कुछ होगा अच्छा।

अपने प्यारे पेड़, प्यारे घोंसले और बाक़ी बच्चों को बचाने के लिये विहगी ने अपना सबसे छोटा बच्चा लोमड़ी को दे दिया।

अगले दिन लोमड़ी फिर से आ गयी, उसने फिर से अपना वही गाना गाया। विहगी को अपना दूसरा बच्चा क़ुर्बान करना पड़ा। इसके बाद तो विहगी अपने बच्चों का शोक भी नहीं मना

पाती थी – हर दिन ही एक बच्चा लोमड़ी के मुंह में चला जाता था।

दूसरे पक्षियों को इस विहगी के दुर्भाग्य के बारे में पता चला। वे सभी उड़कर उसके पास आये, पूछने लगे कि क्या मामला है। बुद्धू विहगी ने अपनी दर्द-कहानी सुनायी। समझदार पक्षियों ने गाते हुए उससे कहा –

तुम तो खुद दी दोषी चिड़िया
तुम भोली हो, बुद्धू हो,
धूर्त्त लोमड़ी ने तो उल्लू
खूब बनाया है तुमको।
पेड़ भला कैसे काटेगी
हमें बताओ, क्या दुम से?
तेरे बच्चों तक पहुंचेगी
हमें बताओ, क्या दुम से?
कहां कुल्हाड़ी उसकी, बोलो?
और कहां पर आरी है?
रहने लगी चैन से अब तो
चिड़िया वहां हमारी है।

लेकिन लोमड़ी तो यह कुछ भी नहीं जानती थी और फिर से डराने-धमकाने और बच्चा मांगने के लिये आयी। वह फिर से यह गाने लगी कि पेड़ काट डालेगी, विहगी के सारे बच्चों को मार डालेगी। किन्तु वही शब्द, जिनसे विहगी बुरी तरह भयभीत हो उठती थी, अब उसे हास्यास्पद, अपनी डींग हांकनेवाले और व्यर्थ प्रतीत हुए। विहगी ने लोमड़ी को जवाब दिया –

जड़ें बहुत गहरी इस तरु की,
हो कुदाल, तब ही काटो।
तना बड़ा मजबूत पेड़ का
कहां कुल्हाड़ा, जो काटो।
मेरा नीड़ बड़ा ऊंचा है,
सीढ़ी लाओ तो पहुंचो।

लोमड़ी अपना-सा मुंह लेकर चली गयी और उसने वहां आना बन्द कर दिया। विहगी तो अब भी वहां रहती है, बच्चे पैदा करती है, बच्चे बड़े होते हैं और तराने गाते हैं।

दाग़िस्तान ने अपनी जहालत, पिछड़ेपन और अज्ञान के कारण अपने कितने बच्चों को नष्ट कर डाला है! खुद को जानने के लिये किताब की ज़रूरत है। दूसरों को जानने के लिये भी किताब की ज़रूरत है। पुस्तक के बिना कोई भी जाति उस आदमी के समान है जिसकी आंख पर पट्टी बंधी हो, जो इधर-उधर भटकता रहता है और दुनिया को नहीं देख सकता। पुस्तक के बिना कोई भी जाति उस व्यक्ति के समान है जिसके पास दर्पण न हो, वह अपना चेहरा नहीं देख सकती।

"पिछड़े हुए और जहालत के मारे लोग," दाग़िस्तान की यात्रा करनेवालों ने हमारे बारे में ऐसा लिखा और कहा। इन शब्दों में श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति या दुर्भावना की तुलना में सचाई ज़्यादा है। "ये–वयस्क बालक हैं," हमारे सम्बन्ध में एक विदेशी ने लिखा।

"इनके पास ज्ञान नहीं है, इसका लाभ उठाना चाहिये," हमारे शत्रुओं का कहना था।

"अगर यहां के जनगण युद्धशास्त्र में प्रवीण हो जायें तो कोई भी इनपर हाथ उठाने की जुर्रत न करे," एक सेनापति ने कहा था।

"काश हम हाजी-मुरात की दिलेरी और महमूद की प्रतिभा में अपना आज का ज्ञान जोड़ सकते!" पहाड़ी लोग कहते हैं।

"इमाम, हम रुक क्यों गये?" एक बार हाजी-मुरात ने शामील से पूछा। "हमारी छाती में दिल धधक रहा है और हाथ में तेज़ खंजर है। इन्तज़ार किस बात का है? हम आगे बढ़कर अपने लिये रास्ता बनायेंगे।"

"ज़रा सब्र से काम लो, जल्दी नहीं करो, हाजी-मुरात, तेजी से दौड़नेवाली नदियां कभी सागर तक नहीं पहुंचतीं। मैं किताब

से सलाह लूंगा–वह क्या सलाह देगी। किताब–बड़ी समझदारी की चीज़ है।"

"इमाम, शायद तुम्हारी किताब समझदारी की चीज़ हो, लेकिन हमें तो बहादुरी की ज़रूरत है। और बहादुरी है तेज़ तलवार तथा घोड़े की सवारी में।"

"किताबें भी बहादुर होती हैं।"

किताब... अक्षर, पंक्तियां, पृष्ठ। हां, पृष्ठ एक मामूली-सा कागज़ लग सकता है। लेकिन वह शब्दों का संगीत है, भाषा के सुरीलेपन और विचारों का भण्डार है। यह तो मैं हूं जिसने उसे लिखा, वे दूसरे लोग हैं जिनके बारे में मैंने लिखा, जिन्होंने अपने बारे में लिखा। यह कागज़ तो तेज़ गर्मी है, जाड़े का बर्फ़ीला तूफ़ान है, कल की घटनायें, आज के सपने, भविष्य का कार्य है।

विश्व-इतिहास और हर आदमी के भाग्य को दो भागों में बांटना चाहिये–पुस्तक के प्रकट होने के पहले और उसके बाद का भाग। पहला भाग–काली रात है, दूसरा भाग–उजला दिन। पहला भाग–तंग, अन्धेरा दर्रा है और दूसरा भाग खुला मैदान या पर्वत-शिखर है।

"शायद जहालत ही वह गुनाह है जिसके लिये इतिहास ने हमें इतनी देर तक और इतनी सख़्त सज़ा दी है," पिता जी कहा करते थे।

दो कालावधियां–पुस्तकवाली और पुस्तक के बिना। इन्सान के पास अब बहुत जल्द ही, उसी वक़्त जब वह पहला डग भरने लगता है, ककहरे के रूप में किताब आ जाती है। लेकिन दाग़िस्तान के पास हज़ारों साल बीतने पर ही पुस्तक आई। दाग़िस्तान ने बहुत देर से, बहुत ही देर से पढ़ना-लिखना सीखा।

इसके पहले पहाड़ी लोगों के लिये अनेक सदियों तक आकाश पृष्ठ था और तारे वर्णमाला। नीलगूं बादल दवात थे, बारिश स्याही, पृथ्वी कागज़, घास और फूल–अक्षर थे और ख़ुद ऊंचाई ऐसे पृष्ठ पर पढ़ने के लिये झुक जाती थी।

सूरज की लाल किरणें पेंसिलें थीं। उन्होंने चट्टानों पर हमारा

भूलों से भरा हुआ इतिहास लिखा।

मर्द का बदन–दवात था, खून–स्याही और खंजर–पेंसिल। तब मौत की किताब लिखी गयी, उसकी भाषा हर किसी की समझ में आ जाती थी, उसके अनुवाद की ज़रूरत नहीं होती थी।

औरत का दुर्भाग्य–दवात था, आंसू–स्याही, तकिया–कागज़। तब दुख-दर्दों की किताब लिखी गयी, लेकिन बहुत कम ही किसी ने उसे पढ़ा, पहाड़ी औरतें दूसरों को अपने आंसू नहीं दिखातीं।

पुस्तक, लिखित भाषा... ये हैं वे दो निधियां जो भाषायें बांटनेवाला हमें देना भूल गया।

पुस्तकें–वे घर की खुली खिड़कियां हैं, लेकिन हम बन्द दीवारों के भीतर बैठे रहे... खिड़कियों में से पृथ्वी और सागर का विस्तार तथा लहरों पर तैरनेवाले अद्भुत जहाज़ों को देखा जा सकता था। हम उन पक्षियों के समान थे, जो, न जाने क्यों, जाड़े में गर्म प्रदेश में न जाकर ठण्ड में ही रह जाते हैं और ठिठुरने पर खिड़कियों पर अपनी चोंचें मारते हैं, ताकि उन्हें घर के भीतर, गर्माहट में आ जाने दिया जाये।

पहाड़ी लोगों के होंठ सूखे और प्यास के कारण मुरझाये हुए हैं... हमारी आंखें भूखी और जलती हुई हैं।

अगर हम कागज़ और पेंसिल का इस्तेमाल करना जानते होते तो खंजर से इतना अक्सर काम न लेते।

हम तलवार बांधने, घोड़े पर ज़ीन कसने, उछलकर घोड़े पर सवार होने तथा युद्ध-क्षेत्र में पहुंचने में कभी देर नहीं करते थे। इस मामले में हमारे यहां न तो लंगड़े-लूले, न बहरे और न अंधे होते थे। लेकिन हमने बहुत छोटे-छोटे, मानो नगण्य अक्षरों को जानने में बहुत देर कर दी। यह तो सर्वविदित है कि जिसके भाव, जिसके विचार लुंज-पुंज हैं, उसकी तो सहारा देनेवाली लाठी भी कोई सहायता नहीं कर सकती।

डेढ़ हज़ार साल पहले आर्मीनिया के विख्यात योद्धा मेसरोप

माशतोत्स के दिमाग़ में यह ख़्याल आया कि लिखित भाषा शस्त्रास्त्र से अधिक शक्तिशाली है और उसने आर्मीनी वर्णमाला की रचना की।

मैं मातेनादारान जा चुका हूं, जहां प्राचीनतम पाण्डुलिपियां सुरक्षित रखी जा रही हैं।

वहां बहुत ही दुखी मन से मैं दाग़िस्तान के बारे में सोचता रहा जिसने किताबों और लिखित भाषा के बिना हज़ारों साल बिता दिये। समय की छलनी में से इतिहास छनता रहा और उसके ज़रा भी निशान बाक़ी नहीं रहे। केवल धुंधले और ऐसे आख्यान और गीत ही, जो हमेशा प्रामाणिक नहीं होते थे, एक व्यक्ति के मुंह से दूसरे व्यक्ति के मुंह तक, एक हृदय से दूसरे हृदय तक जाते हुए हमारे पास पहुंचते रहे।

है आसान कथा-क़िस्सों में
विस्मृत को स्मृत रख पाना,
मां से सुना कभी जो क़िस्सा
यहां चाहता दुहराना।

किसी गांव में किसी वीर ने
ऊंचा नाम कमाया जब,
बड़े ख़ान ने, शक्तिमान ने
पास उसे बुलवाया तब।

नाम सलीम, हमारा हीरो
बड़े महल में जब आया,
एक एक कर सब दरवाज़ों
को उसने खुलते पाया।

थे क़ालीन, झाड़ जगमग थे
और रुपहले फ़व्वारे,
धनी ख़ान ने माल-ख़ज़ाने
खोल दिये अपने सारे।

जो कुछ देखा यहां वीर ने
मुश्किल वह सब बतलाना,
जो कुछ भी है इस दुनिया में
सम्भव यहां देख पाना।

कहा ख़ान ने – "सुनो सूरमा,
जो भी चाहो, तुम ले लो,
दिल-दिमाग़ को जो रुच जाये
दे दूंगा मैं वह तुमको।

"यहां सभी चीज़ें बढ़िया हैं
किन्तु याद इतना रखना,
हो अफ़सोस न तुम्हें बाद में
मत उतावली तुम करना।"

उत्तर दिया वीर ने उसको –
"दो तलवार, मुझे खंजर,
घोड़ा तेज़ मुझे तुम दे दो
करूं सवारी मैं जिसपर।

"हीरे-मोती, माल-ख़ज़ाने
किन्तु न मैं ये सब चाहूं,
है तलवार, अगर घोड़ा भी
यह सब तो मैं ख़ुद पाऊं।"

अरे, पूर्वज मेरे तुमने
कैसी कर डाली ग़लती,
ली तलवार, लिया घोड़ा भी
किन्तु भुला क्यों पुस्तक दी?

क्यों न कहो, थैले में अपने
काग़ज़, पेंसिल भी रक्खी?
भूल गये किसलिये लेखनी?
भूल बड़ी यह तुमने की।

बेशक मन था निर्मल तेरा
किन्तु अक़्ल की रही कमी,
पुस्तक खंजर से बढ़कर है
बात न दिल में यही जमी।

भाग्य सौंप लोहे को अपना
जान नहीं हम यह पाये,
खंजर, घोड़ों से वह बढ़कर
पुस्तक जो कुछ सिखलाये।

सूझ-बूझ के राज़ छिपे हैं
सुन्दरता के भी उसमें,
हम सदियों तक पिछड़ गये हैं
होकर खंजर के वश में।

यह परिणाम भूल का तेरी
छात्र देर से ज्यों आये,
पाठ कभी का शुरू हुआ यदि
वह तो पीछे रह जाये।

पर्वतमाला के पीछे, हमारे बिल्कुल निकट ही जार्जिया है। अनेक शताब्दियां पहले शोता रुस्तावेली ने अपना अमर महाकाव्य 'बाघ की खाल में सूरमा' रचकर जार्जियाई लोगों को भेंट कर दिया। जार्जियाई लोग बहुत अरसे तक महाकवि की क़ब्र की खोज करते रहे, उन्होंने पूरब के सभी देश छान मारे। "महाकवि की क़ब्र तो कहीं नहीं है, लेकिन उनके जीवित हृदय की धड़कन हर जगह सुनी जा सकती है," एक औरत ने कहा।

मानवजाति काकेशिया की चट्टान से बंधे हुए प्रोमेथ्यू की दास्तान पढ़ती है।

अरब लोग हज़ारों सालों से कवितायें पढ़-पढ़कर सिर धुनते हैं।

हज़ारों साल पहले हिन्दुओं ने ताड़ के पत्तों पर अपने सत्यों और भ्रांतियों को लिखा। मैंने कांपते हाथों से इन पत्तों को छुआ और अपनी आंखों से लगाया।

तीन पंक्तियोंवाली जापानी कविता वास्तव में ही बड़ी लालित्यपूर्ण है! कितनी प्राचीन है चीन की भाषा जिसमें हर अक्षर, अधिक सही तौर पर हर चिह्न के पीछे एक पूरी धारणा छिपी हुई है!

अगर ईरान के शाह आग और तलवार के बजाय फ़िरदोसी की बुद्धिमत्ता, हफ़ीज़ की मुहब्बत, शेख़ सादी का साहस और अबीसिन के विचार लेकर दाग़िस्तान आते तो उन्हें यहां से सिर पर पांव रखकर न भागना पड़ता।

नीशापुर में मैं उमर ख़य्याम की क़ब्र पर गया। वहां मैंने सोचा – "मेरे दोस्त ख़य्याम! ईरान के शाह की जगह अगर तुम हमारे यहां आये होते तो पहाड़ी जनगण ने कितनी ख़ुशी से तुम्हारा स्वागत किया होता!"

बीजगणित का जन्म हो चुका था और हम गिनती करना भी नहीं जानते थे। भव्य महाकाव्य गूंजते थे और हम "मां" शब्द भी नहीं लिख सकते थे।

रूसी सैनिकों से ही हमारा पहले वास्ता पड़ा और रूसी कवियों से हमारा बाद में परिचय हुआ।

अगर पहाड़ी लोगों ने पुश्किन और लेर्मोन्तोव को पढ़ा होता तो शायद हमारा इतिहास दूसरा ही मार्ग अपना लेता।

जब किसी पहाड़ी आदमी को लेव तोलस्तोय की 'हाजी-मुरात' पुस्तक पढ़कर सुनायी गयी तो उसने कहा – "ऐसी बुद्धिमत्तापूर्ण पुस्तक तो मानव नहीं, भगवान ही लिख सकता था।"

पुस्तक के लिये जो कुछ चाहिये, हमारे यहां वह सब कुछ था। दहकता हुआ प्यार, वीर-नायक, दुखद घटनायें, कठोर प्रकृति, केवल स्वयं पुस्तक ही नहीं थी।

रहा वास्ता कितने ही दुख-दर्दों से इस धरती का
और ईर्ष्या से जलते मर्दों ने ले अपने खंजर,
कई पहाड़ी देज़्देमोना को हाथों से क़त्ल किया
निर्दयता से चला दिये थे खंजर उनकी छाती पर।

सदियों के लम्बे अरसे में, क्या-क्या यहां नहीं बीता
उच्च पर्वतों की इस धरती, मानो दुनिया की छत पर,
यहां जूलियट औ' ओफ़लियां, हुए अनेकों ही हेमलेट
हुआ सभी कुछ किन्तु यहां पर, पैदा हुआ न शेक्सपियर।

यहां मधुर संगीत गूंजता, करती हैं नदियां कलकल,
यहां तराने पक्षी गायें, निर्झर झरते हैं झरझर,
किन्तु बाख़ तो फिर भी कोई, इस धरती पर नहीं हुआ
और न गूंजा यहां बिथोवन की रचनाओं का ही स्वर।

किसी जूलियट के जीवन का दुखद अन्त जब होता था
कौन यहां करते थे चर्चा, उसका हाल बताते थे?
वही लोग जो उसे मारकर, बदला अपना लेते थे
और न कवि तो उसके दुख की, गौरव-गाथा गाते थे।

कुमुख गांव के क़रीब तैमूर के गिरोहों के साथ भयानक लड़ाई के बाद पहाड़ी लोग जब जीत का माल लूट रहे थे तो एक मुर्दा सैनिक की जेब से उन्हें पुस्तक मिल गयी। हमारे सैनिकों ने उसके पृष्ठ उलटे-पलटे, अक्षरों पर झुककर उन्हें बहुत ग़ौर से देखा। लेकिन उनमें एक भी ऐसा नहीं था जो उन्हें पढ़ सकता हो। तब पहाड़ियों ने उसे जला देना चाहा, उसे फाड़कर उसके पृष्ठों को हवा में उड़ा देना चाहा। लेकिन समझदार और बहादुर पार्तू-पातीमात ने आगे बढ़कर कहा—

"दुश्मन से मिले हथियारों के साथ इसे भी सम्भालकर रखिये।"

"हमें इसकी क्या ज़रूरत है? हममें से तो कोई भी इसे पढ़ नहीं सकता।"

"अगर हम नहीं पढ़ सकते तो हमारे बेटे-पोते इसे पढ़ेंगे।

आख़िर हम तो यह नहीं जानते कि इसमें क्या लिखा हुआ है। हो सकता है कि इसी में हमारा भाग्य छिपा हो।"

अरबों के साथ सुराकात तानुसीन्स्की की लड़ाई के वक़्त एक अरब क़ैदी ने पहाड़ी लोगों को अपना घोड़ा, हथियार और ढाल भी दे दी, लेकिन किताब को छाती के साथ चिपकाकर छिपा लिया, उसे नहीं देना चाहा। सुराकात ने घोड़ा और हथियार क़ैदी को लौटा दिये, मगर किताब छीन लेने का हुक्म दिया। उसने कहा –

"घोड़ों और तलवारों की तो ख़ुद हमारे पास भी कुछ कमी नहीं है, मगर किताब एक भी नहीं है। तुम अरबों के पास तो अनेक किताबें हैं। तुम्हें इस एक को देते हुए क्यों अफ़सोस हो रहा है?"

सैनिकों ने हैरान होकर अपने सेनापति से पूछा –

"हमें इस किताब का क्या करना है? हम तो न केवल इसे पढ़ना ही नहीं जानते, बल्कि हमें तो इसे ढंग से हाथ में लेना भी नहीं आता। घोड़े और हथियारों के बजाय इसे लेना क्या समझदारी की बात है?"

"वह वक़्त आयेगा, जब इसे पढ़ा जायेगा। वह वक़्त आयेगा, जब यह पहाड़ी लोगों के लिये चेर्केस्का, समूरी टोपी, घोड़े और खंजर की जगह ले लेगी।"

दाग़िस्तान पर हमला करनेवाले ईरान के शाह की जब ख़ासी पतली हालत हो गयी तो उसने अपना सोना-चांदी और हीरे-मोती, जिन्हें हमेशा अपने साथ रखता था, ज़मीन में गाड़ दिये। इस गड्ढे के ऊपर शिला-खण्ड रखकर उसपर सूचना के अक्षर खोद दिये गये। साक्षियों को शाह ने मरवा डाला। लेकिन मुरताज़-अली ख़ान ने फिर भी इस गड्ढे को ढूंढ़ लिया और सोने-चांदी और हीरे-मोतियों से भरे सन्दूक़ – वह सभी कुछ जो ईरान के शाह ने अब तक लूटा था – निकाल लिये। बीस ख़च्चरों पर शाह की यह सारी दौलत लादकर लायी गयी। बाक़ी क़ीमती चीज़ों के अलावा फ़ारसी की कुछ किताबें भी थीं। मुरताज़-अली

बात के पिता सुरहात ने, जिसके दोनों हाथ कटे हुए थे, यह सारा ख़ज़ाना देखकर कहा –

"मेरे बेटे, बहुत बड़ा ख़ज़ाना ढूंढ़ा है तुमने। इसे सैनिकों में बांट दो, अगर चाहो तो बेच दो। यह तो हर हालत में ख़त्म हो जायेगा। लेकिन सौ साल बाद भी पहाड़ी लोगों को इन किताबों में छिपे हुए मोती मिल जायेंगे। तुम इन्हें नहीं दो। ये सभी क़ीमती चीज़ों से ज़्यादा मूल्यवान हैं।"

इमाम शामील का मुहम्मद ताहिर अल-काराख़ी नाम का सेक्रेटरी था। शामील उसे कभी भी ख़तरनाक जगह पर नहीं जाने देता था। मुहम्मद ताहिर को इस कारण बहुत बुरा लगता था। एक दिन उसने कहा –

"इमाम, शायद तुम मुझपर भरोसा नहीं करते हो? मुझे जंग के मैदान में जाने दो।"

"अगर सब मर जायें तुम्हें तो तब भी ज़िन्दा रहना चाहिये। तलवार हाथ में लेकर लड़ तो कोई भी सकता है, मगर इतिहास लिखने का काम हर कोई नहीं कर सकता। तुम हमारे संघर्ष की किताब लिखते रहो।"

मुहम्मद ताहिर अपनी किताब पूरी किये बिना ही इस दुनिया से कूच कर गया। लेकिन उसके बेटे ने पिता के अधूरे छोड़े गये काम को पूरा किया। इस पुस्तक का नाम है – 'कुछ लड़ाइयों में इमाम की तलवार की चमक।'

इमाम शामील का बहुत बड़ा निजी पुस्तकालय था। पच्चीस सालों तक वह दसियों खच्चरों पर उसे जहां-तहां ले जाता रहा। उसके बिना तो उसे चैन ही नहीं मिलता था। बाद में, गुनीब पर्वत पर क़ैदी बनने के वक़्त उसने अनुरोध किया कि उसकी तलवार और किताबें उसके पास ही रहने दी जायें। कालूगा में रहते हुए वह किताबें पाने के लिये लगातार मिन्नत करता रहा। वह कहा करता था – "तलवार के कारण तो बहुत लड़ाइयां हारी गयीं, लेकिन किताब के कारण एक भी नहीं।"

इमाम का बेटा जमालुद्दीन जब रूस से लौटा तो इमाम

ने उसे पहाड़ी पोशाक पहनने को मजबूर किया, लेकिन उसकी किताबों को छुआ तक नहीं। जिन लोगों ने इमाम से यह कहा कि "काफ़िरों की किताबें" नदी में फेंक दी जायें, उसने उन्हें यह जवाब दिया – "इन किताबों ने हमारी धरती पर, हमपर गोलियां नहीं चलायीं। इन्होंने हमारे गांव नहीं जलाये, लोगों को मौत के घाट नहीं उतारा। जो कोई किताब की बेइज़्ज़ती करेगा, वह उसकी बेइज़्ज़ती कर देगी।"

काश, अब हम यह जान सकते कि जमालुद्दीन पीटर्सबर्ग से कौन-सी किताबें अपने साथ लाया था?

अपनी लिखित भाषा न होने के कारण दाग़िस्तान के लोग परायी भाषाओं में कभी-कभार एकाध शब्द लिखते थे। ये पालनों, खंजरों, छत के तख़्तों और क़ब्रों के पत्थरों पर लिखे जानेवाले आलेख होते थे जो अरबी, तुर्की, जार्जियाई और फ़ारसी में लिखे जाते थे। इस तरह के आलेखों, बेल-बूटों की संख्या बहुत बड़ी है, इन सभी को जमा करना सम्भव नहीं। लेकिन अपनी भाषा में पढ़ने के लिये कुछ भी नहीं। अपना नाम तक न लिखना जाननेवाले पहाड़ी लोग तलवारों, घोड़ों और पर्वतों के रूप में इसे अभिव्यक्त करते थे।

क़ब्रों पर लिखे गये कुछ आलेखों का अनुवाद किया जा सकता है –

"यहां बुग्ब-बाई नाम की औरत दफ़न है जो अपनी मनपसन्द उम्र तक ज़िन्दा रही और दो सौ साल की होने पर मरी", "यहां कूबा-अली दफ़न है जो अदजारख़ान के साथ हुई लड़ाई में तीन सौ साल की उम्र में मारा गया।"

बहुखण्डीय इतिहास की जगह कुछ दयनीय अंश, बिखरे-बिखराये शब्द और वाक्य।

जब मैं साहित्य-संस्थान का विद्यार्थी था तो पके बालोंवाले दयालु सेर्गेई इवानोविच रादत्सिग हमें प्राचीन यूनानी साहित्य पढ़ाते थे। उन्हें प्राचीन साहित्य मुंहज़बानी याद था, वह प्राचीन यूनानी भाषा में बड़े-बड़े खण्ड सुनाते थे, प्राचीन यूनानियों के

दीवाने थे और उन्हें अपने मन पर पड़नेवाली उनकी छापों की चर्चा करना बहुत अच्छा लगता था। प्राचीन कवियों की कविताओं का वह ऐसे पाठ करते थे मानो स्वयं रचयिता कवि उनका पाठ सुन रहे हों, मानो पक्के मुसलमान की तरह डरते हों कि कहीं अचानक क़ुरान पढ़ते हुए कोई ग़लती न हो जाये। उनका ख़्याल था कि वह हमें जो कुछ बताते हैं, हम बहुत पहले से और बड़ी अच्छी तरह जानते हैं। वह तो इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकते थे कि कोई 'ओदिसी' या 'इलियाड' से अनजान हो सकता है। वह यही समझते थे कि जंग के मोरचे से अभी-अभी लौटनेवाले ये नौजवान चार साल पहले यानी जब लड़ाई में नहीं गये थे तो बस होमर, एसख़ील और एवरीपीड को ही पढ़ते रहते थे।

एक बार यह देखकर कि यूनानी साहित्य की हमारी जानकारी कितनी कम है, वह लगभग रो पड़े।

मैंने तो उन्हें ख़ास तौर पर बहुत हैरान किया। दूसरे तो थोड़ा-बहुत जानते ही थे। जब उन्होंने मुझसे होमर के बारे में पूछा तो मैं मक्सिम गोर्की के ये शब्द याद करके कि उन्होंने सुलेमान स्ताल्स्की को बीसवीं सदी का होमर कहा था, उनके बारे में बताना शुरू कर दिया। बड़े दुख के साथ मेरी ओर देखकर प्रोफ़ेसर ने मुझसे पूछा –

"तुम किस जगह बड़े हुए हो कि तुमने 'ओदिसी' भी नहीं पढ़ी?"

मैंने जबाब दिया कि मैं दाग़िस्तान में बड़ा हुआ हूं, जहां किताब कुछ ही वक़्त पहले प्रकट हुई है। अपने अपराध की थोड़ी सफ़ाई देने के लिये मैंने अपने को असभ्य पहाड़िया बताया। तब प्रोफ़ेसर ने वे शब्द कहे जिन्हें मैं कभी नहीं भूल सकूंगा –

"नौजवान, अगर तुमने 'ओदिसी' नहीं पढ़ी तो तुम असभ्य पहाड़ियों से भी गये-बीते हो। तुम तो निरे जंगली और बर्बर हो।"

अब मैं जब कभी यूनान और इटली जाता हूं तो अपने

16*

प्रोफ़ेसर, उनके शब्दों और प्राचीन साहित्य के प्रति उनके रवैये की मुझे अक्सर याद आती रहती है।

लेकिन अगर मैं रूसी भाषा भी बड़ी मुश्किल से बोल और लिख सकता था तो होमर, सोफ़ोकल, अरस्तू और हेमिओड को कैसे जान सकता था? दुनिया में बहुत कुछ ऐसा था जो दाग़िस्तान की पहुंच के बाहर था, बहुत-से ख़ज़ाने उसके लिये नहीं थे।

मैं इस बात का उल्लेख कर चुका हूं कि हमारे गायक तातम मुरादोव का गाना सुनते हुए माक्साकोवा* कैसे रोयी थी। मुरादोव ने किसी भी तरह की तालीम हासिल नहीं की थी और उस वक़्त उसकी उम्र साठ के क़रीब थी। सभी ने यह सोचा था कि गायक की आवाज़ ने माक्साकोवा के दिल को छू लिया है, लेकिन उसने कहा था –

"मैं तो अफ़सोस के कारण रो रही हूं। कैसी ग़ज़ब की आवाज़ है! अगर ठीक वक़्त पर इस गायक को शिक्षक मिल जाते तो इसने अपने गाने से दुनिया को हैरत में डाल दिया होता। लेकिन अब कुछ भी नहीं हो सकता।"

दाग़िस्तान के भाग्य के बारे में सोचते हुए मुझे उक्त शब्द बहुत बार याद आते हैं। वे केवल तातम के बारे में ही नहीं कहे गये हैं। क्या हमारे अनेक गायक, योद्धा, चित्रकार, पहलवान अपने गुणों, अपनी प्रतिभा का परिचय दिये बिना ही क़ब्रों में नहीं चले गये हैं? उनके नाम अज्ञात ही रह गये। शायद हमारे भी अपने शाल्यापिन,** अपने पोद्दूब्नी*** थे। अगर ओसमान अब्दुर्रहमानोव को, हमारे हरकुलीस को ताक़त के साथ उस कुश्ती

* माक्साकोवा म० प० (१९०२–१९७४) – प्रसिद्ध रूसी गायिका। – सं०

** शाल्यापिन फ़० इ० (१८७३–१९३८) – प्रसिद्ध रूसी गायक। – सं०

*** पोद्दूब्नी इ० म० (१८७१–१९४९) – प्रसिद्ध रूसी पहलवान। – सं०

की कला की शिक्षा और पारंगतता भी मिल जाती तो शायद कोई भी उससे जीत न सकता। लेकिन उसे शिक्षा देनेवाला कोई नहीं था। हमारे यहां संगीत-महाविद्यालय, थियेटर, इन्स्टीट्यूट, अकादमियां, यहां तक कि स्कूल भी नहीं थे।

शिला-लेख बीती सदियों की नहीं बनायें गाथाएं,
उनसे वंचित, किन्तु हमारी राह नहीं रुक जायेगी,
तलवारों से अरे, बुजुर्गों ने जो क़िस्से लिखे कभी
उसे लेखनी ही अब मेरी, आगे और बढ़ायेगी।

पहाड़ी लोग पेंसिल हाथ में लेने, उससे अक्षर लिखने का ढंग नहीं जानते थे। उन शत्रुओं को, जो उनसे घुटने टेकने को कहते थे, वे उन्हें ठेंगा ही दिखाते थे। या फिर कुछ और साफ़ ढंग से इसे चित्रित करके दुश्मन के पास भेज देते थे।

दाग़िस्तान के बारे में कहा जाता था–"यह देश पत्थर के सन्दूक़ में एक ऐसे गीत की तरह पड़ा हुआ है जिसको न लिखित रूप दिया गया है और न गाया गया है। कौन इसे निकालेगा, कौन इसके बारे में गायेगा और लिखेगा?"

अक्षर, शब्द, पुस्तकें–यही उस ताले की चाबी हैं जो उस सन्दूक़ पर लगा हुआ है। दाग़िस्तान के भारी और सदियों पुराने तालों की चाबियां किनके हाथों में हैं?

विभिन्न लोग इन तालों के पास आये और कभी-कभी तो उन्होंने सन्दूक़ के भीतर झांकने के लिये उसका ढक्कन भी ऊपर उठाया। दाग़िस्तान के लोग जब खुद तो क़लम हाथ में लेना भी नहीं जानते थे, उस वक़्त भी अनेक मेहमानों, यात्रियों और विद्वानों-अनुसन्धानकों ने दूसरी भाषाओं–अरबी, फ़ारसी, तुर्की, यूनानी, जार्जियाई, आर्मीनी, फ़ांसीसी और रूसी में दाग़िस्तान के बारे में लिखा था...

दाग़िस्तान, मैं पुराने पुस्तकालयों में तुम्हारा नाम खोजता हूं और उसे विभिन्न भाषाओं में लिखा पाता हूं। देर्बेन्त, कुबाची, चिरक और खूंजह का उल्लेख मिलता है। यात्रियों को धन्यवाद।

वे तुम्हारी पूरी गहराई और जटिलता की तह तक नहीं जा सके, फिर भी उन्होंने सबसे पहले तुम्हारे नाम को हमारे पर्वतों की सीमाओं से बाहर पहुंचाया।

इसके बाद पुश्किन और लेर्मोन्तोव ने अपने शब्द कहे –

तब जलती दोपहरी में मैं दाग़िस्तानी घाटी में
पड़ा हुआ था निश्चल, सीने में अपने गोली लेकर...

अद्भुत पंक्तियां हैं ये! और बेस्तूजेव-मारलीन्स्की ने अपनी 'अम्मालात-बेक' रचना लिखी। दर्बेन्त... क़ब्रिस्तान में अभी तक मारलीन्स्की द्वारा उसकी मंगेतर की क़ब्र पर लगाया गया पत्थर क़ायम है।

अलेक्सान्द्र द्यूमा दाग़िस्तान में आये थे। पोलेजायेव ने अपनी लम्बी कवितायें 'एरपेली' और 'चीर-यूर्त' रचीं। हर किसी ने तुम्हारे बारे में भिन्न-भिन्न ढंग से लिखा है, लेकिन किसी ने भी तुम्हें इतनी गहराई में जाकर और इतनी अच्छी तरह से नहीं समझा जितनी अच्छी तरह से जवान लेर्मोन्तोव और बुज़ुर्ग तोलस्तोय ने। तुम्हारे इन गायकों के सामने मैं अपना पके बालोंवाला सिर झुकाता हूं, ये किताबें मैं वैसे ही पढ़ता हूं जैसे मुसलमान क़ुरान को।

बेटे के नामकरण-संस्कार का दिन – बड़ी खुशी का दिन होता है। ऐसा दिन तो वही दिन होना चाहिये, जब दाग़िस्तान के बेटों ने पहली बार अपनी मातृभाषाओं में उसके बारे में लिखा। मुझे याद है कि जब मेरी पहली अध्यापिका वेरा वसील्येव्ना ने मुझे ब्लैक बोर्ड के पास बुलाकर तुम्हारा नाम लिखने को कहा था तो मैंने कौन-सी ग़लती की थी। मैंने 'द' को बड़े अक्षर के रूप में लिखे बिना दाग़िस्तान लिख दिया था। वेरा वसील्येव्ना ने मुझे समझाया कि दाग़िस्तान एक व्यक्तिवाचक नाम है और इसलिये इसका पहला अक्षर बड़ा होना चाहिये। तब मैंने बड़ा 'द' लिखकर उसके आगे दाग़िस्तान यानी 'ददाग़िस्तान' लिख दिया। मुझे लगा कि बड़ा और छोटा, दोनों 'द' लिखने चाहिये। ऐसा

करना भी ग़लत था। इसके बाद तीसरी बार मैंने सही लिखा।

क्या तुम्हें भी इसी तरह से तुम्हारा नाम लिखना नहीं सिखाया गया, दाग़िस्तान? क्या तुम्हें भी इसी तरह से अपने बारे में बताना नहीं सिखाया गया है? वर्णमाला चुनी। तुमने अरबी, लातीनी, रूसी अक्षरों में लिखा। बहुत-सी ग़लतियां हुईं। क्योंकि जो कुछ बड़े अक्षर से लिखा जाना चाहिये था, उसे छोटे अक्षर से लिखा गया। क्योंकि जो कुछ छोटे अक्षर से लिखा जाना चाहिये था, वह बड़े अक्षर से लिखा गया। केवल तीसरी बार ही तुम सही ढंग से लिखना सीख पाये, मेरे दाग़िस्तान। दाग़िस्तान की कुछ पहली पुस्तकों, पत्रिकाओं और समाचारपत्रों के नाम प्रस्तुत हैं–'भोर का तारा', 'नयी किरण', 'लाल पहाड़िया', 'पहाड़ी हिरन', 'पहाड़ी कहावतें', 'कुमिक लोक-कथायें', 'लाक-जाति की धुनें', 'दारगीन दास्तानें', 'लेज़्गीन कवितायें', 'सोवियत दाग़िस्तान'। ये सभी दाग़िस्तान की मातृभाषाओं में हैं और केवल नाम ही नहीं, बल्कि पंख हैं।

१९२१ में दाग़िस्तान के प्रतिनिधिमण्डल के साथ बातचीत करने के बाद लेनिन ने हमारे पहाड़ी प्रदेश को तीन सर्वाधिक अनिवार्य वस्तुएं भेजीं–अनाज, कपड़ा और छापेखाने के टाइप। घोड़ा और खंजर दाग़िस्तान के पास थे। लेनिन ने अनाज के साथ उसे पुस्तक दी। अक्तूबर क्रान्ति ने दाग़िस्तानी शिशु के पालने की चिन्ता की। दाग़िस्तान ने सागर, खुद अपने को देखा, अपने अतीत और भविष्य को देखा और उसने अपने बारे में खुद लिखना शुरू किया।

सुलेमान स्ताल्स्की ने मक्सिम गोर्की से कहा–"हम दोनों बूढ़े हो चुके हैं। अपनी जिन्दगी जी चुके हैं, दुनिया देख चुके हैं। हम दोनों की किताबें हैं। लेकिन तुम काग़ज़ पर लिखते हो, तुम पढ़े-लिखे हो। मैं गाता हूं। कारण कि मुझे लिखना नहीं आता। हम रूस और दाग़िस्तान के साकार रूप हैं। रूस पढ़ा-लिखा है। दाग़िस्तान में अधिकांश लोग अभी तक अपना नाम तक लिखना नहीं जानते। वे हस्ताक्षर करने के बजाय अंगूठा लगाते हैं। क्या

तुम ऐसे पढ़े-लिखे लेखकों का दल यहां नहीं भेज सकते ताकि वे सारे सोवियत देश, सारी दुनिया को हम दाग़िस्तानियों के बारे में बता सकें ? "

सुलेमान स्ताल्स्की और गोर्की की बातचीत का एफ़्फ़ंदी कापीयेव अनुवाद कर रहा था। गोर्की ने सुलेमान का अनुरोध पूरा करने का वचन दिया, किन्तु कापीयेव की ओर इशारा करते हुए यह भी कहा कि अब दाग़िस्तान में पढ़े-लिखे और प्रतिभाशाली युवजन की पीढ़ी तैयार हो गयी है और यह कहीं ज़्यादा अच्छा होगा कि इस जनतन्त्र की सभी भाषाओं में अपनी धरती के बारे में खुद दाग़िस्तानी ही लिखें। कारण कि, जैसा कि आपके यहां कहा जाता है, "घर की हालत के बारे में उसकी दीवारें ही सबसे ज़्यादा अच्छी तरह जानती हैं।"

गोर्की ने जिन युवजन का उल्लेख किया था, वे अब बड़े और बूढ़े भी हो चुके हैं। वे दाग़िस्तान के बारे में पुस्तकें लिख चुके हैं, और भी लिखेंगे। पहले वक़्तों में पिता अपने बेटों के लिये विरासत में तलवार और पन्दूरा छोड़ते थे। अब–लेखनी और पुस्तक। दाग़िस्तान में ऐसा दिन नहीं होता, जब किसी के यहां बेटे का जन्म न होता हो। यहां ऐसा दिन भी नहीं होता जब कोई नयी पुस्तक प्रकाशित न हो। हर कोई अपने ही दाग़िस्तान के बारे में लिखता है। पचास से अधिक सालों तक मेरे पिता जी लिखते रहे। पूरी ज़िन्दगी ही काफ़ी नहीं रही। अब मैं लिखता हूं। लेकिन मैं भी वह सब नहीं लिख पाऊंगा जो लिखना चाहता हूं। इसलिये मैं बच्चों के सिरहाने खंजर के बजाय लेखनी और कोरी कापी रखता हूं। मेरे पिता जी का और मेरा एक ही दाग़िस्तान है। लेकिन हमारी लेखनियों की भाषाओं में वह कितना भिन्न है। हमारी अपनी-अपनी लिखावट, अपने-अपने अक्षर, अपना-अपना ढंग और अपना तराना है। अपने लम्बे रास्ते पर बोझ ढोनेवालों को बदलते हुए यह बैलगाड़ी इसी तरह से चलती जा रही है।

पिता जी कहा करते थे–"वही लिखो जो जानते हो और

लिख सकते हो। और जो नहीं जानते, उसे दूसरों की किताबों में पढ़ो।"

किताब

प्यार करो तुम तो पुस्तक को जिसके पृष्ठ उदार बड़े
इन्तज़ार है उसको तेरा, कभी न जो धोखा देती,
चाहे तुम हो धनी खान या चाहे हो निर्धन, कंगले
हर हालत में वफ़ादार वह, नज़र न कभी फेर लेती।

बड़े जतन से, बड़ी लगन से, पुस्तक के पन्ने पलटो
उसकी तो प्रत्येक पंक्ति में सूझ-बूझ का शहद भरा,
ज्ञान-पिपासा तीव्र रहे चिर, बेटे, तुम इतना जानो
पाओगे सन्तोष उसी से, ज्ञान उसी में जो बिखरा।

यह तो है वह अस्त्र, हाथ से नहीं गंवाना तुम जिसको
वार न बेशक करो, रहेगा, साथी यह फिर भी सच्चा,
बुरा न मानेगा यदि फेंको, इससे यदि तुम मुंह मोड़ो
इतना बढ़िया मीत यही है, दोस्त यही इतना अच्छा।

करो दोस्ती सदा ज्ञान से, उसके घर में सब कुछ है
उसके फल हैं मीठे-मीठे, हरे-भरे उसके उपवन,
स्वागत वहां सदा ही होगा, तुम वांछित मेहमान वहां
जाओ, वहां बटोरो तुम फल, जितने चाहो, आजीवन।

तुम जीवन, अपने सपनों का, पुस्तक से नाता जोड़ो
और समझ लो, अनजाने ही, कवि अन्तर में छायेगा,
जो मन में, कह दो कविता से, उसकी ही मुस्कान मधुर
देगी सब प्रश्नों के उत्तर, हृदय सान्त्वना पायेगा।

जब जवान कवि अपनी कवितायें लेकर पिता जी के पास आते तो सबसे पहले तो वह उनकी लिखावट की तरफ़ ध्यान देते। क्योंकि "जैसी

हलरेखा, वैसा ही खेत का मालिक"। इसके बाद वह ग़लतियां ठीक करते, विरामचिह्न लगाते। अफ़सोस से अपना सिर हिलाते हुए वह मानो कहते – सही ढंग से लिखना सीखो। कुछ जवान लोग दबी ज़बान से यह ख़्याल ज़ाहिर करते – "२०वीं शताब्दी के होमर" अनपढ़ थे। "मुझे तो यह मालूम नहीं था!" पिता जी जवान 'होमर' को जवाब देते। दाग़िस्तान में अभी भी ऐसे अनेक 'होमर' हैं। कविता में व्याकरण की ग़लती से भी पिता जी को बड़ी झुंझलाहट होती थी। जब पिता जी की एक कविता छापे की अनेक भूलों के साथ समाचारपत्र में छपी थी तो उन्होंने यह कविता लिखी थी –

अचानक गीत पर मेरे
मुसीबत आज आई है,
उसे अख़बार में भेजा
छपाने को, दुहाई है!

बिगाड़ा इस तरह उसको
बुरा यों हाल कर डाला,
कि जैसे बेंत, लाठी से
कहीं उसका पड़ा पाला।

नशे में धुत्त लोगों ने
दबोचा हो उसे जैसे,
पिटाई ख़ूब कसकर की
नज़र आता है कुछ ऐसे।

कि शायद राह में उसपर
पड़े मुक्के, पड़े घूंसे,
न जाने किस तरह निकला
बचाकर जान दुश्मन से?

चौपाई को पकड़कर
इस तरह गर्दन मरोड़ी है,
हुआ है अर्थ ही ग़ायब
कि ऐसे टांग तोड़ी है।

कि दोहों पर पड़े कोड़े
नज़र कुछ इस तरह आता,
भरे आहें, कराहें वे
न उनको चैन मिल पाता।

बिचारी खोपड़ी घायल
न गिनना घाव सम्भव है,
अजब यह बात है सचमुच
भयानक खेल यह सब है।

न अन्तड़ियां दिखाई दें
नज़र है गीत की धुंधली,
पियक्कड़ की सिपाही ने
कि जैसे हो पिटाई की।

अगर हर अंक में हों
ग़लतियां इस ढंग की दसियों,
तुम्हारी ख्याति फैलेगी
अरे हीरो, दूर कोसों।

करें आलोचना अपनी
सुधरती भूल है तब ही,
कि यह आलोचना छापो
यही अनुरोध है अब भी।

मेरे पिता जी... उन्हें जाननेवाला हर व्यक्ति शायद अपने ही ढंग से उनकी कल्पना करता था।

ज़ाहिर है कि वह ज़मीन जोतते थे, घास काटते थे, बैल-गाड़ी पर घास लादते थे, घोड़े को घास खिलाते थे और उसपर सवारी करते थे। लेकिन मैं उन्हें हाथ में किताब लिये हुए ही देखता हूं। वह किताब को हमेशा इस तरह से हाथ में लिये रहते थे मानो वह हाथों से निकलकर किसी भी क्षण उड़ सकती

हो। मेहमानों को बहुत चाहते हुए भी वह उस वक़्त बेचैनी और घबराहट अनुभव करते थे, जब कोई अचानक आकर उनके अध्ययन में बाधा डाल देता था, मानो कोई उनकी महत्त्वपूर्ण प्रार्थना को भंग कर देता हो। पिता जी जब कुछ पढ़ते होते तो मां दबे पांव चलतीं, होंठों पर लगातार उंगली रखे हुए सबको चुप रहने का संकेत करतीं और हमें फुसफुसाकर बात करने को विवश करतीं –

"शोर नहीं करो, तुम्हारे पिता जी काम कर रहे हैं।"

वह ठीक ही समझती थीं कि लेखक के लिये किताबें पढ़ना – यह उसका काम ही है।

खुद वह कभी-कभी हिम्मत बटोरकर यह जानने के लिये उनके कमरे में चली जाती थीं कि उन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं, उनकी दवात में स्याही तो ख़त्म नहीं हो रही। पिता जी की दवात पर मां कड़ी नज़र रखती थीं और उसमें कभी भी स्याही नहीं सूखने देती थीं।

पिता जी के जीवन में अगर खुशी के दो दिन भी आये तो उन्हें ये किताबों की बदौलत ही नसीब हुए थे।

पिता जी के जीवन में अगर ग़म के दो दिन भी आये थे तो ये भी उन्हें किताबों ने ही दिये।

उन किताबों ने, जिन्हें वह पढ़ते थे और जिन्हें वह लिखते थे।

लोग उनसे जो कुछ भी मांगते, वह उन्हें उसे देने से कभी को इन्कार नहीं कर सकते थे। किसी चीज़ के अपने पास होते हुए उससे इन्कार करने को पिता जी सबसे बड़ा झूठ और सबसे बड़ा पाप मानते थे। जब कोई उनसे उनकी कोई प्यारी पुस्तक मांगता था, तब तो उनकी हालत सचमुच दयनीय हो जाती थी। पुस्तक दे दी गयी थी, वह पराये हाथों में थी, लेकिन पिता जी के हाथ अभी भी उसकी तरफ़ फैले हुए थे।

जब पुस्तक मांगकर ले जानेवाला व्यक्ति बहुत देर तक उसे नहीं लौटाता था तो पिता जी उसे लिखते थे – "मैं अपने उस

दोस्त के लिये बहुत उदास हो रहा हूं जिसे तुम पिछली बार अपने साथ ले गये थे। क्या तुम उसे लौटाने की नहीं सोच रहे हो?"

मेरे पिता जी सात बहनों के एकमात्र भाई थे (परिवार में एकमात्र पुरुष) और ये सभी छोटी उम्र में ही यतीम हो गये थे। पिता जी ने अपना जन्म-गांव भी जल्द ही छोड़ दिया था। यतीमों की सरपरस्ती करनेवाले चाचा ने यह कहकर उन्हें दूसरे गांव के मदरसे में पढ़ने भेज दिया कि बड़े गांव में अक़्ल भी बड़ी होती है। तब से पिता जी कंधे पर खुरजी रखे या झोला लटकाये एक गांव से दूसरे गांव में जाते रहे–उनके एक थैले में किताबें होती थीं और दूसरे में भुना हुआ आटा। कहना चाहिये कि वह धनी होकर वहां से लौटे। गांव-गांव भटकने के सालों में उनका ज्ञान बहुत समृद्ध हो गया। गांव-पंचायत में उस वक़्त उनसे कहा गया कि अगर तुम अपने ज्ञान और प्रतिभा को एक बैलगाड़ी में जोत दोगे तो बहुत लम्बी यात्रा करोगे।

पंचायत की भविष्यवाणी ठीक निकली। पिता जी का नाम प्रसिद्ध हो गया। उनकी बहुत-सी कवितायें तो लोकोक्तियां बन गयीं।

पिता जी ने बड़ों और बच्चों के लिये, जो इस दुनिया में आते और इस दुनिया से जाते हैं, उन सभी के लिये बहुत कुछ लिखा। उन्होंने कवितायें, खण्ड-काव्य, नाटक, गल्पें और कथायें लिखीं। उनकी लिखावट सीधी और अच्छी थी। उनकी भाषा भी ऐसी ही थी। हमज़ात की अच्छी लिखावट के कारण ही उनकी जवानी के दिनों में उनसे महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ों–निर्णयों और जनता के नाम अपीलों–की नक़ल करने का अनुरोध किया जाता था। वह विभिन्न लिपियों–अरबी, लातीनी और रूसी–का उपयोग करते थे। वह दायें से बायें और बायें से दायें लिखते थे।

उनसे यह पूछा जाता–

"बायें से दायें क्यों लिखते हो?"

"क्योंकि बायीं ओर दिल है, प्रेरणा है। हम जिस चीज को

भी बहुत ज्यादा प्यार करते हैं, उसे अपनी छाती के बायीं ओर चिपका लेते हैं।"

"दायें से बायें क्यों लिखते हो?"

"क्योंकि आदमी में दायीं ओर ताक़त होती है, दायां हाथ है। हम दायीं आंख से ही निशाना साधते हैं।"

ज़ाहिर है कि ये शब्द मज़ाक़ से कहे गये थे, किन्तु विभिन्न लिपियां सीखना कुछ मज़ाक़ नहीं था। हां, यह सही है कि कवितायें तो वह लगभग सदा ही अपनी मातृभाषा यानी अवार भाषा में लिखते थे।

पिता जी ने कुछ कवितायें अरबी में भी रचीं। मुख्यतः अन्तरंग कवितायें। परिवार का कोई भी सदस्य उन्हें नहीं पढ़ सकता था। किन्तु ऐसी कवितायें बहुत कम हैं। हमज़ात तो सिद्धान्त के रूप में ही ऐसी कविताओं के विरोधी थे। वह कहा करते थे–

"कवितायें ऐसी नहीं होनी चाहिये कि मां, बेटी या बहन उसे न पढ़ सके। मुझे वे फ़िल्में बिल्कुल पसन्द नहीं हैं जिन्हें सोलह साल तक के बच्चों को देखने की इजाज़त न हो।"

पिता जी अक्सर अरबी लिपि का उपयोग करते थे। उन्हें उसके अक्षर, उनकी बनावट बहुत पसन्द थी, उन्हें उनमें सुन्दरता दिखाई देती थी। घसीटवाली और भद्दी लिखावट तो उन्हें फूटी आंखों नहीं सुहाती थी। एक बार उन्हें अपने एक पुराने साथी का अरबी में लापरवाही से लिखा हुआ ख़त मिला और उन्होंने एक कविता में उसका इस प्रकार मज़ाक़ उड़ाया–

एक तुम्हारा अक्षर ऐसे, जैसे फटी हुई खंजड़ी
बिन्दु बनाया ऐसे, जैसे भारी, गोल-गोल पत्थर
छत गिर जाये ज्यों छप्पर की, लगे दूसरा यों अक्षर,
नज़र आ रहे केवल खम्भे, हैं अवशेष टिके जिनपर।
इस बदक़िस्मत अक्षर पर तो, शिला-खण्ड मानो रक्खा
कैसे इसे दबाया तुमने, कैसे ऐसा ग़ज़ब किया?
चौथे अक्षर की भौंहों तक, टोपी को नीचे खींचा

पूरा-पूरा पृष्ठ पंक्ति में, तुमने है मानो भींचा।
शायद नहीं क़लम से, बिल्ली के पंजे से लिखते हो?
हर अक्षर है पेड़ कि झाड़ी, बिखरी जिसकी शाखायें
जंगल-सा हर पृष्ठ कि जिसमें प्रबल बवंडर आ जायें,
जिसमें चारों ओर कुल्हाड़े, ज़ोर-ज़ोर से चल जायें,
सीखा कहां इस तरह लिखना, समझ न हम तो यह पायें?

इस कविता ने अपने वक़्त में बहुत-से लोगों को नाराज़ किया। कुछ इसलिये नाराज़ हो गये कि उन्होंने इस कविता को ठीक ढंग से नहीं समझा था और दूसरे इस कारण कि इसे बहुत ही अच्छी तरह समझ गये थे। कुछ लोगों ने ऐसा माना कि हमज़ात भद्दे ढंग से लिखे गये अरबी के अक्षरों का नहीं, बल्कि अरबी लिपि का मज़ाक़ उड़ाते हैं।

लेकिन पिता जी के दिमाग़ में पूरी लिपि की आलोचना करने का तो ख़्याल तक नहीं आया था। उन्होंने तो उनपर चोट की थी जो अपनी लापरवाही के कारण इस लिपि को बिगाड़ते थे, इसका इस्तेमाल करना नहीं जानते थे। पिता जी ने कभी किसी लिपि की बुराई नहीं की थी। जो लोग किसी भी लिपि को बिगाड़ते थे, वह उनको तिरस्कार की नज़र से देखते थे।

"यह सही है कि अरबों ने दाग़िस्तान पर हमला किया था," पिता जी कहा करते थे, "लेकिन इसके लिये अरबी लिपि और अरबी भाषा की किताबों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।"

दोपहर के भोजन के बाद गांव के लोग हमारे घर की छत पर जमा हो जाते थे। पिता जी उन्हें अद्भुत उपन्यासिकायें, कहानियां और कवितायें पढ़कर सुनाते थे। अरबी की कविताओं के अनेक छन्दों का लयबद्ध संगीत गूंजता रहता था।

पिता जी रूसी भाषा नहीं जानते थे। उन्हें अरबी भाषा में ही चेख़ोव, तोलस्तोय और रोमेन रोलां को पढ़ना पड़ा। उस समय इनमें से किसी के बारे में भी पहाड़ी लोग कुछ नहीं जानते थे। दूसरे लेखकों की तुलना में पिता जी को चेख़ोव ज़्यादा पसन्द थे, चेख़ोव की 'गिरगिट' कहानी तो उन्हें ख़ास तौर पर बहुत

अच्छी लगती थी और उन्होंने उसे कई बार पढ़ा था।

कुल मिलाकर अरबी भाषा का काफ़ी चलन था। कुछ लेखक तो इसलिये अरबी में लिखते थे कि दाग़िस्तान की कोई अपनी लिपि नहीं थी, कुछ इसलिये कि उन्हें दाग़िस्तानी भाषाओं की तुलना में अरबी अधिक समृद्ध और सुन्दर प्रतीत होती थी। सभी सरकारी काग़ज़ात और दस्तावेज़ अरबी में ही लिखे जाते थे। सब मक़बरों पर अरबी में ही सारे आलेख अंकित किये जाते थे। पिता जी इन आलेखों को बहुत अच्छी तरह पढ़ और समझ सकते थे।

बाद में ऐसे साल आये, जब अरबी भाषा को बुर्जुआ अवशेष घोषित कर दिया गया। अरबी में लिखने और पढ़नेवाले लोगों को बहुत हानि पहुंची, पुस्तकों को भी बहुत हानि पहुंची। दाग़िस्तान के प्रबोधकों, ज्ञान-प्रचारकों अलीबेक ताखो-गोदी और जलाल कोर्कमासोव द्वारा बड़ी मेहनत से जमा किये गये पूरे के पूरे पुस्तकालयों को नष्ट कर दिया गया। जलाल ने सोर्बोना में शिक्षा प्राप्त की थी, वह बारह भाषायें जानते थे और अनातोल फ़्रांस से उनकी मित्रता थी। पहाड़ी गांवों में वह पुरानी किताबें जमा करते थे, उनके बदले में हथियार, घोड़ा और गाय तथा बाद में मुट्ठी भर आटा और कपड़े का टुकड़ा देते थे। बहुत-सी पाण्डुलिपियां भी गुम हो गयीं। यह ऐसी अक्षम्य हानि थी जिसकी कभी क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती।

बहुत दुख-दर्दों से भरी हुई हो तुम, दाग़िस्तान की किताब, तुम्हें विभिन्न लिखावटों, विभिन्न लिपियों में लिखा गया है। इसलिये लिखा गया है कि लेखक ऐसा किये बिना रह नहीं सकते थे, उन्होंने इसे निस्स्वार्थ भावना से लिखा है, बदले में किसी प्रकार के पारिश्रमिक की मांग नहीं की। क्रान्ति ने इस पुस्तक का प्रकाशन किया है।

'लाल पर्वत' समाचारपत्र निकलने लगा जिसे बाद में 'पहाड़िया' और फिर 'बोल्शेविक पहाड़िया' नाम दिया गया। इसी अखबार में सबसे पहले मेरे पिता जी की कवितायें छपी थीं। उन्होंने इस समाचारपत्र के साथ अनेक वर्षों तक न केवल सहयोग

ही किया, बल्कि वह इसके सेक्रेटरी के रूप में भी काम करते रहे। तब मुझे इस बात से हैरानी हुआ करती थी कि अख़बार इतनी जल्दी कवितायें छाप देता था। सचमुच मैं हैरान हुए बिना रह भी नहीं सकता था। कारण कि पिता जी ने एक दिन पहले जो कविता मेरे सामने लिखी होती थी, अगले दिन उसे अख़बार में पढ़ा जा सकता था। बाद में ये कवितायें पुस्तक का रूप ले लेती थीं। मोटे-मोटे चार खण्डों में पिता जी का सारा जीवन, उनका पूरा सृजन संग्रहीत है।

पिता जी का उनके अध्ययन-कक्ष में, उनकी पुस्तकों, क़लमों, पेंसिलों, लिखे हुए और बिना लिखे काग़ज़ों के क़रीब ही, जिन्हें वह लिख नहीं पाये, देहान्त हुआ। ख़ैर, कोई बात नहीं, कुछ दूसरे लोग उन काग़ज़ों को लिख देंगे। दाग़िस्तान अब शिक्षा प्राप्त कर रहा है, दाग़िस्तान पढ़ता है, दाग़िस्तान लिखता है।

अब मैं आपको यह बताता हूं कि ख़ुद मैंने कैसे पढ़ना-लिखना सीखा। यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि कैसे मुझे पढ़ना-लिखना सीखने के लिये मजबूर किया गया।

मैं तब पांच साल का था। सारा दाग़िस्तान ही पढ़ने-लिखने लगा था। एक के बाद एक स्कूल, कालेज और तकनीकी कालेज खुलते जा रहे थे। बच्चे और बूढ़े, औरतें और मर्द—सभी पढ़ते थे। निरक्षरता-उन्मूलन-केन्द्र और शिक्षा-अभियान आयोजित किये जाते थे। मुझे पहला ककहरा, पहली कापी भी याद है जो पिता जी ने मुझे ख़रीद कर दी थी। वह ख़ुद गांव-गांव जाकर लोगों से पढ़ने की अपील करते थे।

नयी लिपि सामने आई। पिता जी ने बड़े उत्साह से उसका स्वागत किया। उन्हें हमेशा इस बात का अफ़सोस होता रहता था कि लिपि के अभाव के कारण दाग़िस्तान महान रूसी संस्कृति से कटा हुआ है। वह कहा करते थे—"दाग़िस्तान हमारे महान देश का अंग है। उसके लिये उसे जानना, पूरी मानवजाति को जानना, उसके जीवन की पुस्तक पढ़ना, उसकी लिखावट को समझना-पहचानना जरूरी है।"

"नया पथ", "नूतन प्रकाश", "नये लोग"–ये थे उन दिनों के नारे। वक़्त की इस पुकार पर पिता जी ने अपने बच्चों को भी आगे भेजा। नये जीवन के लिये अपना मार्ग प्रशस्त करना आसान नहीं था। नये जीवन के मार्ग पर पत्थर फेंकनेवालों की संख्या बहुत थी। पहले स्कूलों की बहुत-सी खिड़कियां तोड़ी गयीं। शिक्षा और ज्ञान-प्रचार के शत्रु कहते थे–"यह भला कैसी दुनिया है जिसमें चरवाहा किताब पढ़ता है और आटे की चक्की का मालिक पाठ तैयार करता है? उन्हें तो भेड़ें चराना और आटा पीसना चाहिये।" यों तो और भी ज़्यादा बुरी बातें होती थीं। मुझे याद है कि कैसे अध्यापक को मारने के लिये चलाई गयी गोली स्कूल की दीवार पर लटकनेवाले नक़्शे पर जा लगी थी और कैसे इस सम्बन्ध में पिता जी ने ये शब्द कहे थे–"इस बदमाश ने एक ही गोली से लगभग सारी दुनिया को ही छलनी नहीं कर दिया।"

उन प्रारम्भिक वर्षों में अनेक गांवों में नयी शिक्षा का पुरानी, धार्मिक शिक्षा के साथ ताल-मेल बैठाने की कोशिश की गयी थी। ऐसा भी हुआ कि ये दोनों आपस में घुल-मिल गयीं। यह जान पाना मुश्किल था कि कहां दुकान है और कहां बाज़ार, कहां अली है और कहां ओमार। मेरे बड़े भाई युवजन के स्कूल में पढ़ने जाते थे। मुझे उनसे बड़ी ईर्ष्या होती थी, लेकिन कुछ भी नहीं कर सकता था और हर दिन बड़ी बेचैनी से उनका इन्तज़ार करता था। मैं पढ़ने को बहुत उत्सुक था। मगर तब मैं सात साल का नहीं हुआ था।

इसी वक़्त हमारे गांव में उनके लिये स्कूल खुल गया जो अपने बच्चों को खूंजह के दुर्ग में पढ़ने के लिये नहीं भेजना चाहते थे। यह अर्ध-धार्मिक स्कूल था। इसे "हसन का स्कूल" कहा जाता था।

१. हसन और क़ैदी

छापेमारों ने एक प्रतिक्रान्तिकारी सैनिक को बन्दी बना लिया। उसे रक्षक की निगरानी में मुसलिम अतायेव के मुख्य सैनिक कार्यालय में पहुंचाना था। यह काम हसन को सौंपा गया। शुरू में तो सब कुछ ठीक रहा। लेकिन आखिर नमाज़ अदा करने का वक़्त आ गया। हसन एक छोटी-सी नदी के पास रुककर नमाज़ पढ़ने लगा और क़ैदी को उसने अपने नज़दीक पत्थर पर बिठा दिया। क़ैदी ने उससे विनती की कि वह उसके हाथ खोल दे, ताकि वह भी नमाज़ अदा कर ले। हसन ने आश्चर्य से पूछा –

"तुम किसलिये इबादत करना चाहते हो? तुम तो सफ़ेद गार्डों का साथ दे रहे हो। तुम तो बेशक कितनी ही इबादत क्यों न करो, हर हालत में जहन्नुम में जाओगे।"

"फिर भी मैं हूं तो मुसलमान। मुसलिम अतायेव तो मुझपर रहम नहीं करेगा, फ़ौरन दूसरी दुनिया को रवाना कर देगा। इसलिये मुझे आखिरी बार अल्लाह की इबादत कर लेनी चाहिये।"

हसन ने यह कहते हुए उसके हाथ खोल दिये –

"तुम तो सोवियत सत्ता को कोसते थे, यह कहते थे कि वह मुसलमानों को अल्लाह पर यक़ीन करने से मना करती है। अब तुम जितनी भी चाहो, जी भरकर इबादत कर सकते हो।"

इसके बाद हसन इबादत में इतना खो गया कि जब उसने मुड़कर देखा तो क़ैदी ग़ायब था, वह भाग गया था। तब ग़ुस्से से लाल-पीला होता हुआ हसन चिल्लाया –

"अल्लाह और इन्कलाब की क़सम खाकर कहता हूं कि मैं तुम्हें ज़रूर ही ढूंढ़कर पकड़ लूंगा!"

और उसने सचमुच ही उसे एक गांव में जा पकड़ा तथा वहां पहुंचा दिया, जहां पहुंचाना था।

२. इबादत और गाना

सोवियत सत्ता के शुरू के सालों में हसन ग्राम-सोवियत का सेक्रेटरी था। इन सालों के दौरान ग्राम-सोवियत की मुहर पूरी तरह से घिस गयी और एकदम सपाट हो गयी, क्योंकि हसन उसपर ज़रा भी रहम नहीं करता था और हर तरह के काग़ज़ या दस्तावेज़ पर मुहर लगा देता था।

अगर कोई कठिन और महत्त्वपूर्ण सवाल सामने आ जाता तो वह कहता –

"सलाह-मशविरा करना होगा।"

प्रसंगवश यह भी बता दूं कि उसने इतवार की जगह शुक्रवार को यानी रमज़ान के दिन को छुट्टी का दिन बनाने की भी कोशिश की थी। वह सोवियत सत्ता की हिदायतों और निर्णयों का अथक रूप से लोगों में प्रचार करता, उन्हें समझाता और अमली शक्ल देता। इसके साथ ही उसने उस मसजिद की मरम्मत भी करवाई जो गृह-युद्ध के दिनों में टूट-फूट गयी थी।

मसजिद की मरम्मत हो जाने पर उसके समारोही उद्घाटन का दिन नियत किया गया। इसी वक़्त इस क्षेत्र में संस्कृति-कर्मियां – लेखकों, चित्रकारों, कलाकारों, गायकों और स्वरकारों-संगीतज्ञों का एक बड़ा दल आ गया। क्षेत्रीय केन्द्र से इस पूरे दल को उस गांव में भेज दिया गया, जहां हसन ने मसजिद के समारोही उद्घाटन की तैयारी की थी।

गांव में मेहमानों का ज़ोरदार स्वागत किया गया। उन्हें घुड़दौड़ें, कुश्तियां और मुर्ग़ों की लड़ाई दिखाई गयी। मेहमान भी पीछे नहीं रहे – उनमें से किसी ने भाषण दिया, निकट भविष्य के आर्थिक कार्यभारों की चर्चा की और फिर उन्होंने कन्सर्ट पेश किया।

कन्सर्ट जब अपने पूरे रंग पर था तो मुअज्ज़िन ने मसजिद की मीनार पर चढ़कर बांग दी और इस तरह सच्चे मुसलमानों को शाम की नमाज़ के लिये बुलाया। तब हसन उठकर खड़ा हुआ

और उसने अतिथियों को सम्बोधित करते हुए कहा –

"बहुत शुक्रिया कि आपने हमें यह इज्जत बख़्शी और ऐसे महत्वपूर्ण दिन पर, हमारी मसजिद के उद्घाटन के दिन यहां तशरीफ़ लाये। कन्सर्ट के लिये भी शुक्रिया। अब हम नमाज़ पढ़ने जाते हैं। आप चाहें तो कन्सर्ट जारी रख सकते हैं, चाहें तो हमारे लौटने तक इन्तज़ार कर सकते हैं, चाहें तो हमारे साथ चल सकते हैं।"

गांव के कुछ लोग मसजिद में चले गये, कुछ मेहमानों के गाने सुनने को रुके रहे, कुछ दुविधा में पड़कर खड़े रह गये, उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें। मेहमान भी उलझन में पड़ गये। लेकिन बाद में छत पर, जो एक तरह से रंगमंच का काम दे रही थी, प्रसिद्ध गायक अराशील, ओमार, ग़ाज़ी-मुहम्मद और केगेर की गायिका पातीमात सामने आये। दो मर्दाना समूरी टोपियां, एक दुपट्टा, दो पन्दूरे और एक खंजड़ी। और पर्वतों के ऊपर एक नया गाना गूंज उठा। यह लेनिन, लाल सितारे और दाग़िस्तान के बारे में गाना था। वे कभी तो पन्दूरों और खंजड़ी को सिर के ऊपर ऊंचा उठाकर तथा कभी उनको छाती से लगाकर गाते थे।

इस गाने को सुनकर नमाज़ पढ़नेवाले कुछ लोग मसजिद से बाहर आ गये और कुछ, इसके विपरीत, मसजिद में चले गये।

यह दिलचस्प घटना हसन के गांव में आज तक सुनायी जाती है।

संस्कृति-कर्मियों के दल में मेरे पिता हमज़ात त्सादासा भी थे और उनके आगे घोड़े पर मैं बैठा हुआ था जो उस वक़्त कुछ भी नहीं समझता था।

गांव से विदा लेने के समय मेहमानों ने ग्रामोफ़ोन और लाउडस्पीकर भेंट किया।

३. लाउडस्पीकर और हसन

मुझे यह मालूम नहीं कि किसने ऐसा करने का आदेश दिया, शायद खुद हसन ने ही, लेकिन मेहमानों द्वारा भेंट किये गये लाउडस्पीकर को मसजिद के क़रीब टेलीफ़ोन के खम्भे पर लटका दिया गया। गांव में अब सुबह से शाम तक रेडियो का प्रोग्राम चलता रहता। यह आस-पास के पहाड़ों पर कभी तो पायोनियरों के बिगुलों की आवाज़, कभी कोई गाना, कभी संगीत गुंजाता रहता, कभी कोई वार्ता सुनाता रहता और कभी सिर्फ़ खड़-खड़, गड़-गड़ करता रहता।

कभी-कभी मसजिद की मीनार से मुअज़्ज़िन की बांग और रेडियो की आवाज़ आपस में घुल-मिल जातीं और उस वक़्त कुछ भी समझ पाना असम्भव होता।

एक दिन क्या हुआ कि मुअज़्ज़िन के बांग देने के लिये मीनार पर जाने के कुछ ही पहले लाउडस्पीकर खामोश हो गया। किसी ने चालाकी से खम्भे पर तार काट दिया। धर्म-ईमान को माननेवाले मुसलमानों के नमाज़ अदा कर लेने के फ़ौरन बाद हसन ने खम्भे पर चढ़कर तार जोड़ दिया और लाउडस्पीकर फिर से काम करने लगा।

अगले दिन भी नमाज़ के पहले लाउडस्पीकर फिर से चुप हो गया। नमाज़ खत्म हो जाने के बाद हसन को फिर से खम्भे पर चढ़ना पड़ा।

यह क़िस्सा कई दिनों तक चलता रहा। सभी हैरान होते थे कि हसन इस मामले की तरफ़ क्यों ध्यान नहीं देता और "तोड़-फोड़" की ऐसी हरकत करनेवाले का पता क्यों नहीं लगाता।

जब यह मालूम हुआ कि खुद हसन ही रेडियो को हर दिन खराब कर देता था तो गांव के सभी लोगों की हैरानी का कोई ठिकाना न रहा।

हसन के मन में दो शक्तियों—इबादत और गाने—के बीच

संघर्ष होता रहता था। वह इन दोनों में समझौता करवाने की कोशिश करता था। वह नवदम्पति का मसजिद में विवाह करवाता और इसके बाद उन्हें ग्राम-सोवियत में रजिस्ट्री कराने ले जाता।

प्रकृति के अध्ययन का भी उसका अपना ही तरीक़ा था। वह खड़ा होकर किसी तारे या चट्टान को ताकता रहता। घण्टे बीत जाते और हसन वहीं खड़ा रहता। अगर उसे किसी काम-काज से कहीं जाना होता तो वह अपनी बीवी या कभी-कभी हम छोकरों से वहां खड़े अनुरोध करता।

स्कूल में वह हमें नक्षत्रों की गति के नियम समझाता। वह हमें भूकम्पों, चांद और सूर्यग्रहण, ज्वार और भाटों के बारे में बहुत कुछ बताता। यह सब कुछ वह मानो दिलचस्प, मगर कुछ ऐसे अजीब ढंग से बताता कि अब उसकी बातों में से मेरे दिमाग़ में कुछ भी बाक़ी नहीं रहा।

उसके शिक्षाक्रम में सभी कुछ–अरबी, रूसी और लातीनी–गड्डमड्ड हो गया था।

वह प्लाईवुड के बहुत बड़े टुकड़े पर अरबी में अक्षर लिखता और कहता–

"इन अक्षरों को लिखना सीखो। तुम्हारे पिता जिन्दगी भर इन्हीं अक्षरों को लिखते और पढ़ते रहे।"

इसके बाद वह रूसी भाषा के इतने ही बड़े-बड़े अक्षर लिखता और कहता–

"इन्हें सीखो। तुम्हारे पिता ने उस उम्र में, जब चश्मा लगाया जाता है, इन अक्षरों को सीख लिया था। ये तुम्हारे काम आयेंगे।"

कभी-कभी वह हमें कुछ याद करने का काम देकर खुद मसजिद में नमाज़ पढ़ने चला जाता।

जब वह हमें अरबी लिपि सिखाता तो उसके हाथ में डंडा होता और ग़लतियों या लापरवाही के लिये उसी से हमारी पिटाई करता।

जब रूसी वर्णमाला सिखाने का वक़्त आता तो वह अपने हाथ में लकीरें खींचने का रूल ले लेता। इस तरह कभी तो डंडे और कभी रूल से हमारी पिटाई होती।

मेरी पिटाई का कारण यह था। हमारा घर मसजिद के बिल्कुल क़रीब था। इन दोनों के बीच एक क़दम से ज़्यादा का फ़ासला नहीं था। मुझे एक छत से दूसरी छत पर कूदने की आदत पड़ गयी थी। इसके लिये हसन ने मेरी कसकर पिटाई की। इसके बाद मसजिद बन्द करके वहां एक तरह का ग्राम-क्लब बना दिया गया। मैंने पहले की तरह ही अपनी छलांगें लगाना जारी रखा। हसन ने इसके लिये फिर से मुझे सज़ा दी।

पिता जी ने हसन का पक्ष लिया और मुझसे कहा –

"तुम टिड्डे तो नहीं हो कि कूदते-फांदते रहो। धरती पर चलना सीखो।"

कुछ समय बाद मेरी उम्र सात साल की हो गयी और मेरी उछल-कूद, मेरी छलांगें अपने आप ही खत्म हो गयीं। मैं खूंज़ह दुर्ग के स्कूल में पढ़ने लगा।

हसन के स्कूल की पढ़ाई कोई भी खत्म नहीं कर सका, उसे बन्द कर दिया गया। हसन सामूहिक फ़ार्म में काम करने लगा, उसे अखिल संघीय कृषि प्रदर्शनी में भेजा गया और वहां से वह तमग़ा लेकर लौटा। दो अन्य पदक उसे मोरचे पर मिले। युद्ध के बाद वह कहता रहता था –

"मैं बेशक किसी भी जगह पर क्यों न रहा, हर हालत में, यहां तक कि पूरे युद्ध के दौरान नियमित रूप से नमाज़ पढ़ता रहा। अगर मैं ऐसा न करता तो क्या ज़िन्दा और पूरी तरह से सही-सलामत घर लौट सकता था?"

थोड़े में यह कि हसन जैसा था, अब भी वैसा ही है। अब वह अवार खान सुराकात के बारे में सामग्री जमा कर रहा है। वह पहले की तरह ही खुशमिज़ाज, बेहद ईमानदार, बेशक कुछ सनकी आदमी है।

जब कभी मैं अपने गांव जाता हूं तो उससे जरूर मिलता हूं,

क्योंकि उसे अपना पहला अध्यापक मानता हूं।

मुझे सामान्य स्कूल में अपना दूसरा अध्यापक भी याद है। वह हमें हर दिन अपने बारे में ही क़िस्से-कहानियां सुनाता रहता था। अब तो मैं इस बात को अच्छी तरह समझता हूं कि वह असली अवार म्यूनखगाउज़न* था। वह अपना हर पाठ इन सामान्य शब्दों से ही शुरू करता –

"तो बच्चो, तुम्हें अपने जीवन की एक घटना सुनाऊं?"

"सुनाइये!" हम सब मिलकर चिल्लाते।

"एक बार मैं अवार कोइसू के ऊपर रज्जु-मार्ग से जा रहा था। सामने से एक विशालकाय भालू आ रहा था। हमारे लिये अलग-अलग दिशाओं में जाना किसी तरह भी सम्भव नहीं था। भालू भी पीछे नहीं हटना चाहता था और मैं भी। रज्जु-मार्ग के मध्य में हम गुत्थमगुत्था हो गये। यह भालू उन सभी भालुओं से कहीं ज़्यादा ताक़तवर था जिनसे मेरा पहले वास्ता पड़ा था। फिर भी मैंने बड़ी फुरती दिखायी, उसे अयाल से पकड़कर नदी में फेंक दिया।"

हम मुंह बाये हुए अपने अध्यापक की गप्पें सुना करते थे।

"पिछले सप्ताह मैं अपने खेत में जाकर बड़े इतमीनान से वहां हल चलाने लगा। मेरे बैल बहुत अच्छे हैं, तगड़े हैं। लेकिन वे अचानक रुक गये और उन्होंने हल आगे बढ़ाना बन्द कर दिया। क्या बात हो गयी? मैंने ग़ौर से देखा तो यह पाया कि बांह जितने मोटे-मोटे नौ सांप मेरे हल के साथ लिपटे हुए हैं। उनमें से दो मेरे हाथों की तरफ़ रेंग रहे थे। अपने होश-हवास ठिकाने रखते हुए मैंने पिस्तौल निकाली और सारे के सारे सांपों को गोलियों से उड़ा दिया। इतना अधिक खून बहा कि पूरे खेत की सिंचाई हो गयी। मैं चैन से हल चलाकर घर चला गया।

---

* बैरन म्यूनखगाउज़न – जर्मन साहित्य की अनेक रचनाओं का विश्व-विख्यात शेखीखोर और झूठ बोलनेवाला पात्र। – सं०

कभी-कभी यह चिन्ता जरूर होती है कि खेत में अनाज की जगह सांप ही न पैदा हो जायें?

"तुम्हें यह बताऊं कि कैसे मैं अपने लिये बीवी भगाकर लाया था? उन दिनों मैं त्सूनती के जंगलों में डाकुओं को पकड़ा करता था। एक दिन मैं सबसे ज्यादा ख़तरनाक एक डाकू के घर पहुंचा। वह ख़ुद तो भागने में कामयाब हो गया, लेकिन उसकी चांद जैसी बेटी पीछे घर में ही रह गयी थी। हम दोनों की आंखें चार हुईं और हमें फ़ौरन ही एक-दूसरे से मुहब्बत हो गयी। मैंने उसे गोद में उठाकर घोड़े के ज़ीन पर बिठाया और सरपट घोड़ा दौड़ा ले चला। अचानक मैंने क्या देखा कि बहुत ही ख़तरनाक चालीस डाकू मेरा पीछा कर रहे हैं। उनमें से प्रत्येक दांतों तले ख़ंजर दबाये था, प्रत्येक के एक हाथ में तलवार और दूसरे में पिस्तौल थी। मैंने मुड़कर देखा और बड़े सधे हुए निशानों से गोलियां चलाकर सभी को दूसरी दुनिया में पहुंचा दिया। यह क़िस्सा तो दाग़िस्तान में हर कोई जानता है।"

एक दिन पाठ के वक़्त मैं डेस्क पर अपने साथ बैठनेवाले बसीर से बातें कर रहा था। अध्यापक ने मुझे अपने पास बुलाकर बड़ी कड़ाई से पूछा—

"तुम पढ़ाई के वक़्त बातें क्यों कर रहे हो? बसीर के साथ तुम घण्टे भर से क्या बक-बक कर रहे हो?"

"हमारे बीच बहस हो रही थी। बसीर कह रहा था कि उस दिन खेत में हल चलाते वक़्त आपने आठ सांप मारे थे, लेकिन मैं कह रहा था कि अठारह।"

"तुम बसीर से कह दो कि उसकी नहीं, तुम्हारी बात सही है।"

उस दिन के बाद से मेरे माता-पिता हमेशा ही इस बात से हैरान होते रहते थे कि मैं कुछ भी पढ़े-लिखे बिना स्कूल में अच्छे अंक कैसे पा लेता हूं।

बड़ा दयालु व्यक्ति था वह, किन्तु एक ही जगह पर देर तक टिककर नहीं रहता था। उसे बहुत दूर-दूर के सुनसान गांवों में

भेजा जाता था—कभी सीलूख तो कभी अरादेरीख में, लेकिन वहां भी वह कुछ अधिक समय तक नहीं रुकता था।

कुछ ही समय पहले वह लेखक-संघ के कार्यालय में मेरे पास आया और बोला कि मैं उसे कोई काम दे दूं।

"तुम क्या काम करना चाहोगे?"

"मैं युद्ध के बारे में संस्मरण लिख सकता हूं। बात यह है कि सभी मार्शल मेरे दोस्त थे। उनमें से कुछ को तो मैंने मौत के मुंह से भी बचाया।"

मेरे कई अध्यापक रहे, पहला, दूसरा, तीसरा। लेकिन अपना असली पहला अध्यापक मैं दयालु रूसी अध्यापिका वेरा वसील्येव्ना को ही मानता हूं। उन्होंने मुझे रूसी भाषा के सौन्दर्य और रूसी साहित्य की महानता से अवगत किया।

अवार अध्यापक-प्रशिक्षण कालेज के प्राध्यापक और मास्को के साहित्य-संस्थान के प्रोफ़ेसरगण!

मनसूर हैदरबेकोव और पोस्पेलोव, मुहम्मद हैदारोव और गालीत्स्की, शाम्बीनागो, रादत्सीग, असमूस, फ़ोख़्त, बोंदी, रेफ़ोरमात्स्की, वसीली सेम्योनोविच सिदोरीन... बेशक यह सही है कि परीक्षाओं के समय मैंने आपके प्रश्नों के अच्छी तरह से उत्तर नहीं दिये, क्योंकि तब रूसी भाषा भी अच्छी तरह से नहीं जानता था। किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि मेरी परीक्षायें अभी तक समाप्त नहीं हुईं। कभी-कभी मुझे लगता है कि मानो मैं अपने लिये अभी भी कठिन परीक्षायें दे रहा हूं, उनमें असफल हो रहा हूं और फिर से पहले वर्ष का ही विद्यार्थी बना हुआ हूं।

वास्तव में तो जब कभी मेरी कोई नई पुस्तक निकलती है तो मैं कामना करता रहता हूं कि शायद वह मेरे अध्यापकों के हाथों में पहुंच जाये और वे उसे पढ़ें। उस समय मैं भाषाशास्त्र या प्राचीन यूनानी साहित्य की परीक्षाओं की तुलना में भी अपने दिल में कहीं ज़्यादा घबराहट महसूस करता हूं। हो सकता है कि मेरे किन्हीं अध्यापकों को मेरी वह पुस्तक पसन्द न आये, उसे अन्त तक पढ़े बिना ही वे उसे एक तरफ़ रख दें और यह

कहें–"रसूल ने अच्छी किताब नहीं लिखी, लगता है कि जल्दबाजी की है।" यही तो मेरी सबसे कठिन परीक्षा है।

दाग़िस्तान! तुम्हारे भी भिन्न-भिन्न अध्यापक थे। तुम्हारे भी हसन और म्यूनखगाउज़न थे। उनमें से कुछ तो उसमें विश्वास नहीं रखते थे जिसकी शिक्षा देते थे, कुछ धोखा देते थे, कुछ मार्ग से भटक जाते थे। लेकिन बाद में एक महान और न्यायप्रिय, साहसी और दयालु अध्यापक आया। यह अध्यापक था–रूस, सोवियत संघ, अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति। नयी ज़िन्दगी, नया स्कूल, नयी किताब।

पहले तो पूरे गांव में केवल एक मुल्ला ही खत या किताब पढ़ सकता था। अब मुल्ला को छोड़कर बाक़ी सभी किताबें पढ़ते हैं।

छोटी जाति का बड़ा भाग्य निकला। दाग़िस्तान के बारे में अभी भी किताब लिखी जा रही है। उसका न तो अन्त हुआ है और न कभी होगा ही। अगर इस स्वर्णिम और शाश्वत पुस्तक में मेरे द्वारा लिखा हुआ एक पृष्ठ भी होगा तो मैं अपने को सौभाग्यशाली मानूंगा। मैं अपना गीत गा रहा हूं, तुम इसे स्वीकार करो, दाग़िस्तान!

मिला मुझे जो कुछ लोगों से, दाग़िस्तान!
है समान अधिकार तुम्हारा भी उसपर,
अपने सारे पदक, सभी तमग़े अपने
मीत, सजाऊं तुमपर, चमकें शृंग-शिखर।
स्तुति-गान मैं तुमको, अपने भेंट करूं
मैं अपने शब्दों से कवितायें बुनकर,
मुझे वनों का सिर्फ़ लबादा अपना दो
हिम से ढकी चोटियों की टोपी सुन्दर।

तो बस, अब लेखनी रखता हूं। हमारी जुदाई का समय आ गया। अगर अल्लाह ने चाहा तो फिर मिलेंगे।

दूसरा खण्ड समाप्त

यह भिन्न स्थानों पर–त्सादा गांव में, मास्को, मखाचकला, दिलीजान और अनेक अन्य नगरों में लिखा गया। मैंने इसे कब लिखना शुरू किया, याद नहीं। हां, समाप्त २५ सितम्बर, १९७० को किया।

वाससलाम, वाकलाम।

पाठकों से

रादुगा प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। हमें आशा है कि आपकी भाषा में प्रकाशित रूसी और सोवियत साहित्य से आपको हमारे देश की संस्कृति और इसके लोगों की जीवन-पद्धति को अधिक अच्छी तरह जानने-समझने में मदद मिलेगी। हमारा पता है:

रादुगा प्रकाशन,
१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ

प्रकाशित हो चुकी है :

बीसवीं शताब्दी का साहित्य

खण्ड ४

ज़मीन के लिए, आज़ादी के लिए संघर्ष हमारा

इस खण्ड में 1922-1926 के काल में प्रकाशित ऐसी चार रचनाएं संकलित हैं जिनके बिना क्लासिकी रूसी सोवियत साहित्य की कल्पना करना असंभव है। ये हैं: अलेक्सांद्र फ़देयेव का उपन्यास 'पराजय' (1926), बोरिस लाव्रेन्योव और व्सेवोलोद इवानोव के लघु-उपन्यास 'इकतालीसवां' (1924) और 'बख़्तरबंद रेल 14-69' (1922) तथा इसाक बाबेल की रचना 'अश्वसेना' (1926)।

प्रकाशित हो चुकी है :

बीसवीं शताब्दी का साहित्य
खण्ड ५
देश मेरा

सोवियत साहित्य माला के इस खण्ड में रूसी गीतात्मक गद्य के दो मूर्द्धन्य लेखकों – कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्स्की और मिख़ाइल प्रीश्विन की रचनाएं प्रस्तुत हैं।

'यायावरी के दिन' पाउस्तोव्स्की की 'जीवन गाथा' का अंतिम – छठा भाग है। इसमें उन्होंने अपने जीवन के उस काल का वर्णन किया है, जब उन्होंने अपनी पहली बड़ी रचनाएं लिखीं और लेखक कहलाने का अधिकार पाया।

'जिन्सेंग' और 'सूरज का ख़ज़ाना' प्रीश्विन की कहानियां हैं। प्रीश्विन सारे विश्व साहित्य में अपने ढंग के बेजोड़ लेखक थे। पृथ्वी, लोगों और सभी पार्थिव बातों के प्रति उनके दृष्टिकोण में लगभग बालसुलभ स्पष्टता थी।



"कविगण इसलिये पुस्तकें लिखते हैं कि लोगों को युग और अपने बारे में, आत्मा की हलचल के सम्बन्ध में बता सकें, उनको अपनी भावनाओं और विचारों से अवगत करा सकें। सम्भवतः कविगण ही संसार में सर्वाधिक उदार व्यक्ति हैं। वे लोगों को सबसे ज्यादा मूल्यवान और वांछित चीज़ भेंट करते हैं। पुश्किन से लेकर त्वार्दोव्स्की तक रूसी कवियों ने मुझे रूस, उसका इतिहास, उसका भाग्य और उसकी आत्मा भेंट की। शेव्चेन्को और रील्स्की ने सभी सुखों-दुखों के साथ मुझे उक्रइना भेंट किया। रुस्तावेली और लिओनीदज़े ने सभी कोमल भावनाओं तथा साहस की छवि के साथ मुझे जार्जिया के दर्शन कराये। मैं इसाक्यान का आभारी हूं कि उन्होंने मुझको, अवार जाति के व्यक्ति को, सेवान झील और अरारात के हिम-मंडित शिखर की छटा दिखाई। विभिन्न देशों, युगों, राष्ट्रों और जनगण के कवि स्पेन की धरती और आकाश, इटली की मधुर धुनें तथा रंग, भारत की प्रार्थनायें और प्रेम, फ्रांस का सौन्दर्य एवं सत्य मेरे पहाड़ी घर में लाये... मेरे पूर्वजों, मेरी धरती के प्रबोधकों-गायकों की महान थाती के रूप में मुझे बहुत बड़ा ख़ज़ाना – मेरा दागिस्तान – मिला है।"

ये शब्द हैं सन् १९२३ में दूर-दराज के त्सादा गांव में जन्म लेनेवाले दागिस्तान के पहाड़ी जन-कवि रसूल हमज़ातोव के, जिन्होंने वहां की जनता की सारी सांस्कृतिक निधि को समाहित किया है।

'मेरा दागिस्तान' का यह दूसरा खण्ड पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। यह कवि द्वारा गद्य में लिखी गयी पुस्तक है। यह आत्मकथात्मक रचना है, सरल शैली में लिखी गयी है। यह लोगों के प्रति भलाई, उनके और मातृभूमि के प्रति प्यार की भावनाओं से ओत-प्रोत है।